अलका सरावगी का रचना संसार व नारी चेतना
(कहानी एवं उपन्यासों के सन्दर्भ में)

Alka Saraogika Rachna Sansaar va Nari Chetna
(KahanievamUpanaysonkesandarbhmein)

हिंदी विषय में पीएच.डी. उपाधि हेतु आंशिक पूर्ती के रूप में नागालैंड विश्वविद्यालय के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

Thesis submitted to Nagaland University in partial fulfillment of requirements for award of Ph.D. Degree in Hindi

द्वारा/ By
मोनमी गायन/ MonmeeGayan
पंजीकरण संख्या/ Registration No. : Ph.D./HIN/00203

शोध-निर्देशक / Under the Supervision of
डॉ. अनुज कुमार / Dr. Anuj Kumar

हिंदी विभाग
मानविकी एवं शिक्षा संकाय
नागालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा परिसर, मेरिएमा
Department of Hindi
School of Humanities and Education
Nagaland University, Kohima Campus, Meriema

नागालैण्ड विश्वविद्यालय
NAGALAND UNIVERSITY
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1989, क्रमांक 35 के अन्तर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
(A Central University established by an Act of Parliament No. 35 of 1989)
मुख्यालय : लुमामी, कोहिमा परिसर (मेरिएमा), पिन कोड – 797004
Hqrs : Lumami, Kohima Campus (Meriema), Pin Code – 797004
: 0369-2268270 फैक्स / Fax : 0369-2268248
हिन्दी विभाग/Department of Hindi

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis titled **'Alka Saraogi ka Rachna Sansaar va Nari Chetna (Kahani evam Upanayson ke sandarbh mein)' (अलका सरावगी का रचना संसार व नारी चेतना (कहानी एवं उपन्यासों के सन्दर्भ में))** is the bonafide record of research work done by Monmee Gayan, Registration No.- **Ph.D./HIN/00203** (w.e.f. 24/08/2018), Department of Hindi, Nagaland University, Kohima Campus, Meriema during 2018-2024, submitted to the Nagaland University in partial fulfilment of the requirements for award of the degree of Doctor of Philosophy in Hindi. This thesis has not previously formed the basis for the award of any degree, diploma, associate ship, fellowship or other title and that the thesis represents independent and original work on the part of the scholar under my supervision. This is again certified that the research has been undertaken as per UGC Regulations May 2016 (amended) and the scholar has fulfilled the criteria mentioned in the University Ordinances for submission of the thesis. Plagiarism test of the thesis has been conducted and 7 % of similarity has been detected which is permissible under the UGC regulations 2018.

Dated – the...5th...... Nov' 2024

Kohima

SUPERVISOR

Dr. Anuj Kumar
Department of Hindi
N.U., Kohima Campus, Meriema
Kohima-797004, Nagaland,
Mob-+917903367410
Email- anuj@nagalanduniversity.ac.in

Anuj Kumar
Assistant Professor
Department of Hindi
Nagaland University
Kohima Campus, Meriema

DECLARATION

I, Monmee Gayan, hereby declare that the subject matter of my thesis **'Alka Saraogi ka Rachna Sansaar va Nari Chetna (Kahani evam Upanayson ke sandarbh mein)'** **(अलका सरावगी का रचना संसार व नारी चेतना (कहानी एवं उपन्यासों के सन्दर्भ में))** is the bonafide record of work done by me under the supervision of Dr. Anuj Kumar and that the content of the thesis did not form the basis of the award of any previous degree to me or to the best of my knowledge to anybody else, and that the thesis or any part of it, has not been submitted by me for any other research degree, fellowship, associateship etc. in any other university or institute. This is being submitted to the Nagaland University for the degree of Doctor of Philosophy in Hindi.

Dated- 5/11/24

Monmee Gayan
Registration. No.-Ph.D./HIN/00203
(w.e.f. 24/08/2018)

Countersigned by :

Supervisor
Dr. Anuj Kumar
Assistant Professor
Nagaland University
Department of Hindi
Kohima Campus, Meriema

Dr. Anuj Kumar
Assistant Professor
Department of Hindi
Nagaland University
Kohima Campus, Meriema

Head of Department
Dr. Munni Chaudhary
Associate Professor
Nagaland University
Department of Hindi
Kohima Campus, Meriema

Head
Department of Hindi
Nagaland University
Kohima Campus, Meriema

नागालैण्ड विश्वविद्यालय
NAGALAND UNIVERSITY
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1989, क्रमांक 35 के अन्तर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
(A Central University established by an Act of Parliament No. 35 of 1989)
मुख्यालय : लुमामी, कोहिमा परिसर (मेरिएमा), पिन कोड – 797004
Hqrs : Lumami, Kohima Campus (Meriema), Pin Code – 797004
☎ : 0369-2268270 फैक्स / Fax : 0369-2268248
हिन्दी विभाग/Department of Hindi

PLAGIARISM FREE UNDERTAKING
साहित्यिक चोरी मुक्त शपथ-पत्र

Name of Research Scholar/Student शोधार्थी/विद्यार्थी का नाम	**Monmee Gayan**
Ph.D/M.Phil. Registration Number पीएच.डी/एम.फिल. पंजीयन संख्या	**Ph.D/HIN/00203**
Title of Ph.D thesis /M.Phil. Dissertation पीएच.डी थीसिस/एम.फिल. शोध-प्रबंध का शीर्षक	**Alka Saraogi ka Rachna Sansaar va Nari Chetna (Kahani evam Upanayson ke sandarbh mein)** **अलका सरावगी का रचना संसार व नारी चेतना (कहानी एवं उपन्यासों के सन्दर्भ में)**
Name & Institutional Address of the Supervisor/Joint Supervisor शोध-निर्देशक/सह शोध-निर्देशक का नाम व संस्थानिक पता	**Dr. Anuj Kumar** **Department of Hindi, Nagaland University**
Name of the Department/School विभाग/संकाय का नाम	**Department of Hindi**
Date of Submission प्रस्तुत करने की तिथि	**05.11.24**
Date of Plagiarism Check साहित्यिक चोरी की जांच की तारीख	**03.11.24**
Percentage of similarity detected by the DrillBit software ड्रिलबिट सॉफ्टवेर द्वारा खोजी गई समानता का प्रतिशत	**7%**

I hereby declare/certify that the Ph.D Thesis/M.Phil. Dissertation submitted by me is complete in all respect, as per the guidelines of Nagaland University (NU) for this purpose. I also certify that the Thesis/Dissertation (soft copy) has been checked for plagiarism using **DrillBit** similarity check software. It is also certified that the contents of the electronic version of the thesis/dissertation are the same as the final hardcopy of the thesis/dissertation. Copy of the Report generated by the **DrillBit** software is also enclosed.

मैं एतद् द्वारा घोषित/प्रमाणित करता/करती हूं कि पीएच.डी. थीसिस/एम.फिल. इस उद्देश्य के लिए नागालैंड विश्वविद्यालय (एनयू) के दिशा-निर्देशों के अनुसार मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबंध सभी प्रकार से पूर्ण है। मैं यह भी प्रमाणित करता/करती हूँ कि थीसिस/शोध-प्रबंध (सॉफ्ट कॉपी) को **ड्रिलबिट** समानता जाँच सॉफ़्टवेयर का उपयोग करके साहित्यिक चोरी के लिए जाँचा गया है। यह भी प्रमाणित किया जाता है कि थीसिस / शोध-प्रबंध के इलेक्ट्रॉनिक संस्करण की सामग्री थीसिस / शोध-प्रबंध की अंतिम हार्डकॉपी के समान है। **ड्रिलबिट** सॉफ्टवेयर द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट की प्रति भी संलग्न है।

Gayan
(Name & Signature of the Scholar)
(शोधार्थी का नाम व हस्ताक्षर)

Date/दिनांक : 5/11/24
Place/स्थान : Kohima

अनुज कुमार
Name & Signature of the Supervisor (With Seal) :
शोध-निर्देशक का नाम व हस्ताक्षर (मुहर सहित)

Dr. Anuj Kumar
Assistant Professor
Department of Hindi
Nagaland University
Kohima Campus, Meriema

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
	भूमिका	**i-ii**
प्रथम अध्याय-1	**अलका सरावगीः व्यक्तित्व एवं कृतित्व**	**1-30**
	1.1 जन्म एवं शिक्षा	
	1.2 कृतित्वः संक्षिप्त परिचय	
द्वितीय अध्याय-2	**हिन्दी के महिला रचनाकार एवं अलका सरावगी**	**31-75**
	2.1 भूमिका	
	2.2 हिन्दी की महिला कहानीकार एवं अलका सरावगी	
	2.2.1 हिन्दी की महिला कहानीकारों की परंपरा	
	2.3 हिन्दी की महिला उपन्यासकार एवं अलका सरावगी	
	2.3.1 हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की परंपरा	
तृतीय अध्याय-3	**अलका सरावगी की रचनाओं में तात्विक विवेचन**	**76-148**
	3.1 भूमिका	
	3.2 कहानी संग्रहों का तात्विक विवेचन	
	3.2.1 कथ्य, संवाद, देश-काल-वातावरण, भाषा-शैली के आधार पर	
	3.3 उपन्यासों का तात्विक विवेचन	
	3.3.1 कथ्य, संवाद, देश-काल-वातावरण, भाषा-शैली के आधार पर	
चतुर्थ अध्याय-4	**अलका सरावगी की रचनाओं में चरित्र-चित्रण**	**149-200**
	4.1 स्त्री-पात्र	
	4.1.1 कहानियों में व्यक्त स्त्री-पात्र	
	4.1.2 उपन्यासों में व्यक्त स्त्री-पात्र	
	4.2 पुरुष-पात्र	
	4.2.1 कहानियों में व्यक्त पुरुष-पात्र	
	4.2.2 उपन्यासों में व्यक्त पुरुष-पात्र	
पंचम अध्याय-5	**अलका सरावगी की रचनाओं में नारी-चेतना**	**201-266**
	5.1 नारी चेतना : सामान्य परिचय	
	5.1.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	
	5.1.2 वर्तमान परिदृश्य	
	5.1.3 हिंदी साहित्य में नारी चेतना	
	5.2 कहानी संग्रहों में नारी चेतना	
	5.2.1 'कहानी की तलाश में' में नारी- चेतना	
	5.2.2 'दूसरी कहानी' में नारी-चेतना	
	5.3 उपन्यासों में नारी चेतना	
	5.3.1 'कलि कथाः वाया बाइपास' में नारी चेतना	
	5.3.2 'शेष कादम्बरी' में नारी-चेतना	
	5.3.3 'कोई बात नहीं' में नारी-चेतना	
	5.3.4 'एक ब्रेक के बाद' में नारी-चेतना	
	5.3.5 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' में नारी-	

चेतना
5.3.6 'एक सच्ची-झूठी गाथा' में नारी-चेतना
5.3.7 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' में नारी-चेतना

उपसंहार **i-v**
परिशिष्ट साक्षात्कार **vi-xiii**
सन्दर्भ ग्रथ सूची **xiv-xviii**

शोध-सार

अलका सरावगी का रचना संसार व नारी चेतना (कहानी एवं उपन्यासों के सन्दर्भ में)

शोध-निर्देशक

डॉ. अनुज कुमार

(सहायक प्रोफेसर)

शोधार्थी

मोनमी गायन

Registration No.: Ph.D./HIN/00203

हिन्दी विभाग

नागालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा

शोध-सार

बीसवीं सदी के नवें दशक में भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण बदलाव नारी-विमर्श के कारण आया, जिसके कारण नारी ने साहित्य के केन्द्र बिन्दु से होकर मुख्य धारा में अपनी जगह बनायी। हिन्दी कथा साहित्य जगत में स्त्री लेखिकाओं का आगमन सर्वोपरि तथा युगान्तकारी रहा है। वर्तमान दौर में स्त्री-चेतन से जुड़ी स्त्री-मुक्ति तथा अस्मिता के संकट व पहचान के संघर्ष को व्यक्त करने वाली अनेकानेक कथा लेखिकाएँ है जिनमें मुख्य रूप से **मन्नू भण्डारी**, **उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, ममता कालिया**, **मैत्रेयीपुष्पा, प्रभा खेतान, मृदुला गर्ग, मालती जोशी, अलका सरावगी, नासिरा शर्मा, कुसुम अंसल, सुमिता जैन, क्षमा शर्मा** आदि मुख्य नाम हमारे समक्ष उभर कर आते हैं।

समकालीन स्त्री लेखिकाओं में जिनका नाम विशेष रूप से ध्यान आकर्षित कर रहा है और जो विशेष चर्चा में है वे हैं – **प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा और अलका सरावगी।** प्रभा खेतान ने विभिन्न संदर्भों, विभिन्न पृष्ठभूमियों, विभिन्न परिवेशों और विभिन्न संस्कृतियों में नारी-नियति का चित्रण **'छिन्नमस्ता'** में किया है। **मैत्रेयी पुष्पा** के उपन्यास **'इदन्नमम'** की मंदाकिनी स्त्रियों के लिए निर्मित पारिवारिक व सामाजिक बंधनो को तोड़ती है और अत्याचारियों के विरूद्ध खड़ी होती है। **अलका सरावगी** के उपन्यास चमत्कारिक शिल्प के कारण हमारा ध्यान आकृष्ट करते है। उपन्यास और कहानी साहित्य में उन्होंने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। उनका पहला उपन्यास **'कलि-कथाःवाया बाइपास'** सन् 1998 में प्रकाशित हुआ। उनके अन्य उपन्यास हैं **– शेष कादम्बरी, कोई बात नहीं, एक ब्रेक के बाद, जानकीदास तेजपाल मैनशन, एक सच्ची-झूठी गाथा** और **कूलभूषण का नाम दर्ज कीजिए। 'कहानी की तलाश में'** और **'दूसरी कहानी'** उनके कहानी-संग्रह हैं।

अलका सरावगी के उपन्यासों में नारी-सम्बन्धी जिस नवीन दृष्टि और मूल्यबोध का परिचय मिलता है, वह सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था का परिणाम है। अपने पहले उपन्यास 'कलि-कथाःवाया बाइपास' में लेखिका ने डेढ़ सौ साल के मारवाढ़ी समाज का चित्रण कर समाज में स्त्री की स्थिति को दर्शाया है। इसमें मारवाड़ी समाज में औरतों की स्थिति के बारे में जहाँ किशोर बाबू सोचते हैं, **''कैसी जिन्दगी है हमारे घरों में**

औरतों की। सारे दिन घर में बंद रहती है। कभी बाहर निकलना हुआ, तो जरीदार ओढ़नी ओढ़कर गरदन तक घूंघट डालकर।''[1] उसी मारवाड़ी समाज में विधवा स्त्री को बिना किनारी की सफेद साड़ियाँ पहनने के सिवा कुछ और पहनने का अधिकार नहीं था।

अलका सरावगी का **'एक ब्रेक के बाद'** उपन्यास में कार्पोरेट दुनिया के स्त्री चरित्रों का चित्रण अपने आप में स्त्री-विमर्श को नई दिशा देता है। इस उपन्यास में भट्ट और उसकी पत्नी के माध्यम से अलका सरावगी स्त्री के सहने की शक्ति पर प्रकाश डालती है – **''भट्ट जानता था कि उसकी पत्नी उससे वह सवाल नहीं पूछेगी जो हर घड़ी पूछना चाहती थी – और कितना दुख दोगे मुझे? या फिर और कितना भटकोगे और भटकाओगे इस तरह?**'' [2] इसीलिए भट्ट सोचता है कि **–''सचमुच, मेरा भारत महान है क्योंकि यहाँ ऐसी पत्नियाँ मिलती हैं।''** [3]

अलका सरावगी के नारी पात्र सामाजिक विमर्श को नया आयाम देते हुए नयी चेतना, नयी उमंग, नयी उर्जा और जीवन में कुछ कर गुरजने की आकांक्षा से युक्त है। उनके उपन्यास 'शेष कादम्बरी' में लेखिका जहाँ एक ओर स्त्री मन के कोमल भावनाओं को अभिव्यक्ति करती है, वहीं पूर्ण संवेदना तथा साहस से स्त्री शोषण की विभीषिका को भी उद्‌घाटित करती है। **'शेष कादम्बरी'** के माध्यम से अलका सरावगी ने तीन पीढ़ियों के द्वारा स्त्री जीवन की विविध समस्याओं का यथार्थ रूप ही सामने नहीं रखा, अबला कही जाने वाली औरत के सशक्त व जुझारू व्यक्तित्व को भी दर्शाया है। इस उपन्यास की मुख्य पात्र ''रूबी दी'' की स्मृतियों, सपनों, कादम्बरी से फोन पर की गई बातचीत, उसके पात्रों आदि के माध्यम से नारी उत्पीड़न को दर्शाया है।

'रूबी दी' उपन्यास में एक ऐसे पात्र के रूप में उपस्थित है जो न पुरूष शासन से शोषित है, न किसी से दमित जीवन जीती है, वह स्वतंत्र और आत्मनिर्भर जीवन जीती है। रूबी दी के माध्यम से अलका सरावगी ने स्त्री से जुड़े प्रश्नों को उभारा है, स्त्री के जीवन की नियति की ओर संकेत करते हुए लिखा है **– ''ऐ औरत तूने जब भी किसी कोने में पुरूष से अलग अपना कुछ बनाया है तो तुझे इसकी कीमत देनी पड़ी है।''**[4]

---

[1] सरावगी, अलका. 2015. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन. छठा संस्करण. पृ. 60

[2] सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल पेपरबैक्स. पृ. 75

[3] सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल पेपरबैक्स. पृ. 76

[4] सरावगी, अलका. 2016. शेष कादम्बरी. राजकमल पेपरबैक्स. पृ. 78

अलका सरावगी की विशेषता यह है कि वे स्त्री की प्रचारित और प्रचलित छवि को तोड़ती है। अलका सरावगी अपने उपन्यासों के माध्यम से पुरूषों के द्वारा स्त्री पर किए गये शोषण के साथ स्त्री जीवन के अन्य पक्षों पर भी सोचने के लिए मजबूर करती है जिससे उनके उपन्यास स्त्री जीवन की समस्याओं को उकेरने वाले महत्वपूर्ण दस्तावेज बन जाते हैं। उनके उपन्यास नारी-चेतना के नए प्रश्न हमारे सामने रखते हैं।

समकालीन महिला साहित्यकारों में अलका सरावगी एक गंभीर कथा चिन्तक के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है। उपन्यास और कहानी-साहित्य में उनका योगदान स्वीकार किया जा चुका है। अलका सरावगी का सम्पूर्ण कथा लेखन सामाजिक परिस्थितियों को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इनका रचना संसार अश्लीलता से परे है, क्योंकि लेखिका का मानना है कि, भारतीय संरचना में मर्यादाओं का महत्वपुर्ण स्थान है। इनके नारी पात्र कम बोलते हैं लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे कमजोर हैं। इनके नारी पात्र सामाजिक विमर्श को नया आयाम देते हुए नयी चेतना, नयी उमंग, उर्जा और जीवन में कुछ कर गुजरने की आकांक्षा से युक्त है।

अल्का सरावगी के बहुमुखी व्यक्तित्व में ईश्वर के प्रति आस्था, गाँधीवादी विचारधारा, प्रकृति प्रेम, नारी मुक्ति की आकांक्षा आदि गुण मिलते हैं, जिनका परिचय उनकी रचनाओं में स्पष्टतया मिलता है। अलका जी चरित्रों और देशकाल को प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने वाली कथाकार हैं। उनका उपन्यास 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' देश की जवान पीढ़ी पर लिखा हुआ उपन्यास है। आज का नवयुवक देश और विदेश के उलझनों में फँसा है। **'अमेरिका' इस उपन्यास में एक 'मोटिफ' की तरह हैं जिसमें विस्थापन के कई स्तर हैं - वहाँ कुछ साल बिताकर जयदीप लौटा है, जो न इधर का है न उधर का। उसके एन. आर. आई. मित्र है जो इंफेक्शन के डर से इंडिया नहीं आते, वे हैं जो लौटने के लिए तड़प रहे हैं। उसका बेटा रोहित है, जो इंडिया को चिड़ियाघर कहता है।** [5]

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में अलका सरावागी मानवीय मूल्यों को शाश्वत रूप देने वाली, प्रखर चेतना की संवाहिका तथा नारी की पीड़ा, उसके दर्द को अपने साहित्य के माध्यम से समाज के सामने रखने वाली बहुचर्चित लेखिका के रूप में विद्यमान है। उनका लेखन वैचारिकी के स्तर पर तमाम ज्वलन्त मुद्दों को चुनौती देता है और आज के स्त्री-चिन्तन को एक नया आयाम प्रदान करता है।

---

[5] सरावगी, अलका. 2015. जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल पेपरबैक्स. आवरण पृष्ठ

अलका सरावगी के कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श का जो रूप सामने उभर कर आया है वह एकदम अनोखा है। इनका लेखन स्त्री की मानसिक दशा व उसके जीवन में ऐसे पहलू को प्रस्तुत करता है जिनके लिए देश की राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्मशास्त्र, कानून व्यवस्था, समाज, परिवार इत्यादि जवाबदेह है। विकास और उन्नति पर प्रश्नचिन्ह लगाती हुई समय और समाज का वह चेहरा सामने लाती है जिसमें स्त्री पूरी तरह लहू-लुहान नजर आती है। स्त्री विमर्श के प्रति अलका सरावगी ने जो दृष्टिकोण अपनाया है वह स्त्री विमर्श की परम्परा से हटकर नये रास्तों की खोज करता है। बड़ी कुशलता के साथ लेखिका सीमित मध्यवर्गीय परिवेश में साँस लेती नारी का चित्रण करती है, जो कभी झुंझलाती है, बौखलाती है और कभी अपने प्रश्नों के अभावों से जूझती है तो कभी समझौता भी करती है।

अलका सरावगी की रचनाओं पर अब तक हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में अलग-अलग दिशाओं में अनेक शोध कार्य हो चुके हैं और अनेक ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी रचनाएँ स्त्री-अस्मिता से जुड़े प्रश्न उठाने और साथ ही स्त्री के यथार्थ की आवाज बुलन्द करने में सक्षम है। समय के साथ स्त्री सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति में आए बदलाव को लेखिका ने बारीकी से पकड़ा है।

काफी अध्ययन व चिंतन तथा अपने शोध निर्देशक डॉ. अनुज कुमार जी के परामर्श के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंची कि मुझे **'अलका सरावगी का रचना संसार व नारी चेतना (कहानी एवं उपन्यासों के संदर्भ में)'** विषय पर शोध कार्य करना चाहिए। विषय चयन के बाद विस्तार से इसकी रूपरेखा तैयार की। प्रस्तुत शोध प्रबंध इसी रूपरेखा के आधार पर लिखी गई है।

प्रस्तुत शोध-संबंधी तथ्य प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्त्रोतों से प्राप्त किए गए हैं। सत्यापित विधि को आधार बनाकर प्राप्त स्त्रोतों पर विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया गया है। सामान्यतः निगमनात्मक व वर्णनात्मक विधि का प्रयोग इस शोध में किया गया है। इस विधि के माध्यम से हिन्दी की समकालीन महिला कथाकार **'अलका सरावगी का रचना संसार व नारी चेतना (कहानी एवं उपन्यासों के संदर्भ में)'** का सापेक्ष अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में **प्राथमिक स्त्रोत** के रूप में हिन्दी की समकालीन महिला कथाकार अलका सरावगी की कहानियों और उपन्यासों का उपयोग किया गया है।

द्वितीयक स्त्रोत के अंतर्गत हिन्दी के समकालीन कवि, कथाकार, आलोचक और इतिहासकारों द्वारा लिखित पुस्तकें, संबंधित विषय पर पूर्व प्रकाशित शोध-ग्रंथ तथा विभिन्न शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध-पत्र शामिल गया है। इसके अलावा इंटरनेट पर प्रकाशित लेख तथा अन्य सामग्रियों का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। इस शोध प्रबंध में अलका सरावगी के साथ लिए गए साक्षात्कार का भी उल्लेख किया गया है। ।

शोध प्रबंध को अध्ययन की सुविधा हेतु पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय **'अलका सरावगी : व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व'** से संबंधित है। इस अध्याय में अलका सरावगी के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व के बारे में विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया गया है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक की प्रसिद्ध महिला उपन्यासकार श्रीमती अलका सरावगी का जन्म स्वतंत्र भारत के बंगाल प्रान्त के कोलकाता शहर में एक मध्यम वर्गीय मारवाड़ी व्यापारी परिवार में नवम्बर, सन् 1960 को हुआ था। इसमें कोई दो राय नहीं है कि अलका जी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है। उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास से ही इस बात को प्रमाणित कर दिया था। 'कलि कथा: वाया बाइपास' उपन्यास को साहित्य अकादमी और श्रीकांत वर्मा पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके बाद आए अपने दूसरे उपन्यास 'शेष कादम्बरी' को भी के.के. बिरला फाउन्डेशन के बिहारी पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् 1998 से लेकर आज तक 20 वर्षों में उनके दो कहानी संग्रह, आठ उपन्यास और अन्य कई लेख लिखे हैं। अपनी विशिष्ट लेखन शैली की वजह से अलका जी ने अपनी एक अलग पहचान हिन्दी साहित्य में बना ली है। अलका जी के व्यक्तित्व में गाँधीवादी विचारों का प्रभाव, ईश्वर के प्रति आस्था, प्रकृति प्रेम, नारी मुक्ति की आकांक्षा, सामाजिक दायित्वता आदि और भी गुण मिलते हैं, जिनका परिचय उनकी समग्र रचनाओं में मिलता है। अलका जी में विविध प्रकार के गुण होकर भी वे अपने जीवन को साधारण और सार्वजनिक मानती है।

द्वितीय अध्याय में **'हिन्दी के महिला रचनाकार एवं अलका सरावगी'** के बारे में विस्तृत रूप में वर्णित है। महिला उपन्यासकारों की रचनाओं के मूल में वे जीवन मूल्य हैं जो नारी समेत पूरी मानव जाति के हित में है। उनका लेखन एक उदार संवेदनशील और संतुलित बुद्धि से अपने चारों ओर के उस परिवेश का जायजा

लेगा जो उसे प्रगति की राह की ओर ले जाता है। महिला उपन्यासकारों ने सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक बिम्ब में चित्रगुण की प्रधानता होने के कारण चित्रात्मकता अनिवार्य होती है। मानस को झकझोर देने वाला बिम्ब विधान महिला उपन्यासकारों ने प्रयुक्त किया है जो महत्त्वपूर्ण उद्देश्य के रूप में रेखांकित योग्य है।

महिला कथाकारों की कहानियाँ स्त्री विमर्श में निहित 'निजानुभव के वैशिष्ट्य' पर जोर देकर तमाम सार्वकालिक विमर्शों को चुनौती देना चाहती हैं। बदलते युग के बदलते संदर्भो की दृष्टि से आज कथा साहित्य में एक नया कथ्य जुड़ा है। आज कहानी का केन्द्र बिन्दु नारी है। इन कहानियों के सन्दर्भ स्त्री आन्दोलनों से प्रेरित विभिन्न स्तरों पर किये जाने वाले संघर्षों के बीच उठती हुई आज की नारी के इर्द-गिर्द घूमती है। मुक्ति अस्मिता की तलाश के साथ-साथ नारी जीवन की अनेक समस्याओं को विभिन्न कोणों से उठाती है। विद्रोह शब्द को बड़ी बारीकी से समझती है तथा विद्रोह, त्याग, विश्वास, जैसी मान्यताओं को विशिष्टता प्रदान करती हैं।

हिन्दी साहित्य में जब महिला लेखन का प्रचलन हुआ तो लेखन दो खेमों अर्थात महिला और पुरुष में बँट गया। महिलाओं की अनुभूतियाँ भी पुरुषों के समान ही है इसलिए उनके लेखन को भिन्न न मानकर साहित्य में देखा परखा जाना उचित है। आज महिला लेखिकाएँ पुरुषों के घेरे बन्दी को नकार कर साहित्य में अपना स्थान बना चुकी है। आज की कहानी साहित्य में उनका उतना ही योगदान है जितना कि पुरुष लेखकों का है।

शोध के तृतीय अध्याय में **'अलका सरावगी की रचनाएँ - तात्त्विक विवेचन'** के बारे में उल्लेख किया गया है। वर्तमान समय में कहानी की बदलती प्रवृति और नयेपन के संदर्भ में बड़ी गंभीरता से विश्लेषण किया जा रहा है। यह नयापन व्यक्ति की बदलती चेतना और परिस्थितियों के दबाव से आया है। परिणामस्वरूप रचनाकार की एक नई जीवन-दृष्टि और विचाराधारा विकसित हुई जो कहानी में कथ्य और शिल्प के विविध स्तर पर दिखाई देती है। युवा पीढ़ी की बहुचर्चित लेखिका अलका सरावगी की कहानियों में बदलाव का यह नयापन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस उत्तर-आधुनिक समय में बदलते सामाजिक मूल्य व अछूते यथार्थ को उद्घाटित करने के लिए वे अपनी रचना-धर्मिता में कथ्य एवं शिल्प के अनके नवीन प्रयोग किए हैं।

अलका सरावगी की कहानियों का कथ्य वैविध्य से भरपूर और व्यापक फलक वाला है, जिसमें उन्होंने वर्तमान समय की नई संवेदना व मानवीय चेतना को अनेक रूपों में रूपायित किया है। अपने कहानी-कथ्य में लेखिका अछूते यथार्थ, नये मानव मूल्य, नये परिवेश तथा नैतिक प्रतिमानों की स्थापना करती हैं।

अलका सरावगी की कहानियों में समकालीन जीवन की विसंगतियों और अछूते सामाजिक यथार्थ का चित्रण सफलता के साथ हुआ है। अपनी कहानियों में लेखिका ने सामाजिक जीवन की स्थूल घटनाओं के साथ वर्तमान समय के अनकहे, अनदेखे क्षणों और पहलुओं को उजागर किया है। 'बहुत दूर है आसमान', 'टिफिन', 'आक एगारसी', 'आपकी हंसी' और 'एक और नमकहराम' आदि कहानियों में अपने समय का सही तथ्यान्वेषी यथार्थपरक अन्वेषण किया है। इन कहानियों में लेखिका ने जो समस्याएँ उठाई हैं उनका संबंध आज की परिस्थितियों से है।

अलका सरावगी अपनी कहानियों की रचना-प्रक्रिया में प्रतीकों का सफल प्रयोग कर जीवन के आंतरिक सत्यों व अछूते यथार्थ को उजागर करती है। अलका सरावगी ने अपने उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया में पारंपरिक कथा-शिल्प को तोड़ते हुए अनेक प्रकार की नवीन शिल्प प्रविधियों का प्रयोग किया है, जिससे उनके उपन्यासों में शिल्पगत वैशिष्ट्य देखने को मिलता है।

शोध की अगली कड़ी में चतुर्थ अध्याय इस प्रकार हैः **'अलका सरावगी की रचनाओं में चरित्र चित्रण'**। अलका सरावगी ने अपनी रचनाओं में पात्रों के चरित्र का चित्रण बखूबी ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अलका सरावगी ने कहानी एवं उपन्यासों में नारी एवं पुरूषों के चरित्र का चित्रण अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। आज औरतों की प्राथमिकताओं में बदलाव आया है। यह बदलाव उनके कार्य क्षेत्र व लेखन में भी देखा जा सकता है। नारी पराधीनता के प्रश्नों को लेकर साहित्यकारों के तेवर बड़े तीखे हैं। समाज को बदलने की प्रक्रिया में वे औरत की भूमिका को सामने रखते हैं। भारतीय समाज की संरचना में मौजूद अर्थ और वर्ण व्यवस्था जैसी तमाम विसंगतियों के चलते पुरुष सत्ता की गुलामी का शिकार स्त्रियों की अंतहीन यातनाएँ जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं। इस समाज में स्त्री का स्थान विशेष तो है लेकिन उसकी सामाजिक हैसियत 'वस्तु' से अधिक कुछ नहीं है इसलिए यह तय करना है कि नारी की आजादी के लिए सामंती सोच को बदलना निहायत

जरूरी है।

शोध का पंचम अध्याय **'अलका सरावगी की रचनाओं में नारी चेतना'** है, जिसमें नारी चेतना के बारे में विस्तार से विवेचना की गई है। हिंदी साहित्य में नारी चेतना के विकास की यात्रा प्राचीन काल से ही निरंतर चल रही है। प्राचीन काल से ही कवियों ने नारी पर आधारित अनेक रचनाएं की हैं। प्राचीन काल से ही भाट और चारण कवि राजाओं को प्रसन्न करने और उनकी उत्तेजक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए नारी के सौंदर्य पर आधारित काव्यों की रचना करते रहे हैं। प्रारंभिक मध्यकाल में नारी का या तो दैवीय रूप देखने को मिलता है या फिर साधना के मार्ग में बाधा के रूप में। भक्ति काल के सगुण कवियों ने नारी के दैवी रूप को ही अधिकतर स्वीकार किया है, जबकि निर्गुण कवियों में किसी ने नारी को साधना मार्ग में बाधक तो किसी ने सहायक माना है। रीतिकाल का सम्पूर्ण साहित्य नारी विषयक विलासपूर्ण रचनाओं से भरा पड़ा है। देव, बिहारी आदि कवियों ने नारी को कामुक ढंग से चित्रित करने में अपना सारा कौशल लगा दिया है, जबकि रीति मुक्त कवियों द्वारा अपने प्रियतम से वियोग का वर्णन प्रमुख है। किन्तु इनमें से किसी भी नायिका का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखाई देता। नारी चेतना की दृष्टि से सबसे समृद्ध काल आधुनिक काल रहा है। इसमें कवियों द्वारा नारी का कामुक ढंग से किया गया चित्रण कतई अश्लील नहीं था। अधिकांश छायावादी कवियों द्वारा नारी का प्रकृति के रूप में किया गया चित्रण प्रमुख रहा है। इस काल की लेखिकाओं ने नारी चेतना से संबंधित रचनाएँ लिखीं और स्वयं महिला कवियों ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करना शुरू किया, जिससे नारी चेतना का प्रारंभ हुआ।

आधुनिक काल नारी चेतना की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण काल है। इस काल में न केवल पुरुष लेखकों ने नारी चेतना पर अनेक रचनाएँ लिखीं, बल्कि इस काल में स्वयं महिला लेखिकाएँ भी आगे आईं। आधुनिक काल में साहित्य की सभी विधाओं में नारियाँ आगे आती देखी गई हैं तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि पुरुष लेखकों ने भी नारी की स्थिति पर लिखा है, लेकिन नारियों के आगे आने से उनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारियों के साथ हो रहे भेदभाव, अत्याचार आदि को सबके सामने लाने का उनका उद्देश्य पूरा हो रहा है।

हिंदी साहित्य की गद्य लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में नारी मन की परतों को खोलने का प्रयास किया है। नारियों ने अब अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने अपने साथ हो रहे शोषण और अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई है। नारियों की भावनाओं को अभिव्यक्ति अब तक पुरुषों ने ही दी है, लेकिन नारियों की भावनाओं को सटीक अभिव्यक्ति स्वयं नारियाँ ही दे सकती हैं।

अलका सरावगी ने अपनी रचनाओं में नारी चेतना को स्पष्ट तौर पर व्याख्या करने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि पहले के समय में तो स्त्रियों को और भी कई तरह की समस्याएँ झेलनी पड़ती थी। अपना सब कुछ बचाए रखने की उसकी सबसे बड़ी चिन्ता जिसके लिए वह दिन-रात प्रयासरत रहती है और डरती रहती है कि उसके हाथों से कुछ छूट न जाए। संयुक्त परिवार में सबको लेकर चलते हुए उसे परम्परागत रूढ़ियों का पालन करना पड़ता है। पहले तो लड़कियों को शिक्षित होने से रोका जाता है, यदि किसी तरह वे शिक्षित हों भी जाए तो विवाहोपरान्त जिम्मेदारियों के नाम पर फिर उसका मानसिक शोषण किया जाता है। कभी वह हिंसा का शिकार होती है तो कभी उसके प्रति समाज द्वारा क्रूरता का व्यवहार किया जाता है। हमारा पुरुष समाज स्वयं एक अलग ही सिद्धांत पर जीता है और स्त्री के लिए कोई दूसरा ही सिद्धांत निर्धारित करता है जैसे यह अधिकार वह जन्म से ही लेकर आया है। एक ओर पुरुषवादी मानसिकता स्त्रियों को सदैव कमतर समझता है, वह स्वयं को श्रेष्ठ और स्त्री को बुद्धिहीन मानता है। प्रायः घरेलू औरतें पुरुषों की इस मानसिकता का शिकार होती है। घर में उन्हें सदैव चुप कराया जाता है, उन्हें विरोध करने की छूट नहीं होती है। उसका त्याग व बलिदान किसी को दिखलाई नहीं देता न ही कोई मूल्य देता है। जबकि उसकी सहनशीलता और अपने स्व को ताक पर रखकर स्वयं को रिश्तों में झोंक देने की तीव्र चेष्टाएँ ही परिवार को बनाए रखने में अहम भूमिका निभाती है जिससे गृहस्थी चल पाए।

उपसंहार में उपरोक्त पांच अध्यायों में प्रस्तुत विचारों के परिपेक्ष में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है और शोध प्रबंध का निचोड़ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावित शोध-प्रबन्ध '**अलका सरावगी का रचना संसार व नारी चेतना (कहानी एवं उपन्यासों के संदर्भ में)**' में नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण के माध्यम से अलका सरावगी के कथा-साहित्य में आई हुई स्त्रियों

के जीवन संघर्षो, आशाओं, आकांक्षाओं, सोच और विचारों को प्रस्तुत किया जाएगा। इस शोध प्रबंध के माध्यम से इस बात को पुष्ट करने का प्रयास किया गया है। स्त्री-विमर्श की कड़ी में यह शोध कार्य भी एक श्रृंखला के रूप में जोड़ी जा सकेगी। यदि इस प्रयास में शोधार्थी के द्वारा कोई त्रुटि की गई है हो तो वह क्षमा प्रार्थी है। इस बात का एक विश्वास भी है कि प्रस्तुत शोध कार्य भविष्य में अलका सरावगी के रचना संसार जैसे विषय पर रुचि रखने वाले शोधार्थियों व विद्यार्थियों के लिए सदुपयोगी साबित होगा।

भूमिका

प्रस्तुत शोध विषय का चयन करते समय सबसे पहली बात मेरे मन में यह आई कि मुझे कथा साहित्य में ही अपना शोध कार्य करना है क्योंकि बचपन से ही मेरी इसमें रुचि रही है। समकालीन महिला कथाकारों में अलका सरावगी मेरी प्रिय रही हैं। मौलिक कथ्य और निर्भीक अभिव्यक्ति के कारण अलका सरावगी का लेखन हमारा ध्यान खींचता है। उनका लेखन वैचारिकी के स्तर पर तमाम ज्वलंत मुद्दों को चुनौती देता है और आज के स्त्री चिंतन को एक नया आयाम प्रदान करता है।

अलका सरावगी के कथा साहित्य में स्त्री-विमर्श का जो रूप सामने उभर कर आया है वह एकदम अनोखा है। इनका लेखन स्त्री की मानसिक दशा व उसके जीवन में ऐसे पहलुओं को प्रस्तुत करता है जिनके लिए देश की राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्मशास्त्र, कानून व्यवस्था, समाज, परिवार इत्यादि जवाबदेह है। विकास और उन्नति पर प्रश्नचिन्ह लगाती हुई समय और समाज का वह चेहरा सामने लाती है जिसमें स्त्री पूरी तरह लहू-लुहान नजर आती है। स्त्री विमर्श के प्रति अलका सरावगी ने जो दृष्टिकोण अपनाया है वह स्त्री विमर्श की परंपरा से हटकर नए रास्तों की खोज करता है। समकालीन हिंदी कथा साहित्य में अलका जी मानवीय मूल्यों को शाश्वत रूप देने वाली, प्रखर चेतना की संवाहिका तथा नारी की पीड़ा, उसके दर्द को अपने साहित्य के माध्यम से समाज के सामने रखने वाली बहुचर्चित लेखिका के रूप में विद्यमान है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय 'अलका सरावगी का रचना संसार व नारी चेतना (कहानी और उपन्यास के संदर्भ में)' है। इस शोध प्रबंध को पांच अध्यायों में बांटा गया है।

प्रथम अध्याय - 'अलका सरावगी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व' है। इस अध्याय में अलका सरावगी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया गया है। 20वीं सदी के अंतिम दशक की प्रसिद्ध महिला उपन्यासकार अलका सरावगी ने अपने प्रथम उपन्यास से इस बात को प्रमाणित कर दिया कि वह प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। उनके लेखन यात्रा में आज तक उनके दो कहानी संग्रह, आठ उपन्यास और अन्य कई लेख प्रकाशित हुए हैं।

द्वितीय अध्याय - 'हिंदी के महिला रचनाकार एवं अलका सरावगी' है। महिला रचनाकारों की रचनाओं में वे जीवन मूल्य है जो नारी समेत पूरी मानव जाति के हित में है। अलका सरावगी का कथा साहित्य भी समाज में व्याप्त विवशता, दीनता, शोषण, अत्याचार और संघर्ष का साहित्य है।

तृतीय अध्याय - 'अलका सरावगी की रचनाएं - तात्विक विवेचन' है। अलका सरावगी का कथा साहित्य कथ्य वैविध्य से भरपूर और व्यापक फलक वाला है जिसमें उन्होंने अपने वर्तमान समय की नई संवेदना व मानवीय चेतना को अनेक रूपों में रुपायित किया है। युवा पीढ़ी की बहुचर्चित लेखिका अलका सरावगी की रचनाओं में बदलाव का नयापन स्पष्ट दिखाई देता है।

चतुर्थ अध्याय - 'अलका सरावगी की रचनाओं में चरित्र चित्रण' है। अलका सरावगी ने अपनी रचनाओं में पात्रों के चरित्र का चित्रण बखूबी ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। समस्या के आधार पर चरित्र का निर्माण करने में अलका जी सिद्धहस्त हैं।

पंचम अध्याय - 'अलका सरावगी की रचनाओं में नारी चेतना' है। नारी की अस्मिता के लिए आधुनिक सामाजिक परिवेश में जो लेखिकाएं अपनी कलम से संघर्ष कर रही है उनमें

अलका सरावगी का नाम अग्रणी है। इस अध्याय में नारी चेतना के विषय में विस्तार से विवेचना की गई है। अलका जी ने अपनी रचनाओं में नारी चेतना को स्पष्ट तौर पर व्याख्या करने का प्रयास किया है।

उपसंहार में उपरोक्त पाँच अध्यायों में प्रस्तुत विचारों के परिप्रेक्ष्य में निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है और शोध प्रबंध का निचोड़ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के माध्यम से समग्रता में इस बात को पुष्ट करने का प्रयास किया गया है कि समकालीन महिला साहित्यकारों में अलका सरावगी ने एक गंभीर कथा चिंतक के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। उपन्यास और कहानी साहित्य में उनका योगदान स्वीकार किया जा चुका है। अलका सरावगी का संपूर्ण कथा लेखन वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों का जीवंत दस्तावेज है। इनके नारी पात्र कम बोलते हैं लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे कमजोर हैं। इनके नारी पात्र सामाजिक विमर्श को नया आयाम देते हुए नई चेतना, नई उमंग, ऊर्जा और जीवन में कुछ कर गुजरने की आकांक्षा से युक्त हैं।

शोध कार्य के अंतिम सोपान तक पहुंचकर जब मैं पीछे देखती हूं तो कई लोग याद आते हैं जिनके प्रति मेरा मस्तक कृतज्ञता से झुक जाता है। इस शोध-प्रबंध को पूरा करने में मेरे शोध निदेशक डॉ. अनुज कुमार का उचित मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। विषय चयन से लेकर शोध प्रस्तुति तक प्रोत्साहन और प्रेरणा मिली है जिसके चलते शोध कार्य पूर्ण करने में किसी तरह की कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई। सर का स्नेह, प्रेरणा और उचित मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। आपके प्रति मैं सदैव हृदय से आभारी रहूंगी।

विभागाध्यक्ष डॉ. मुन्नी चौधरी का भी आभारी रहूंगी, जिनका मार्गदर्शन व सुझाव शोध कार्य पूरा होने तक समय-समय पर प्राप्त हुआ है। विभाग के सदस्य डॉ. बृजेश कुमार के प्रति भी मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

अपने अपने परम पूजनीय पिताजी बुद्धेश्वर गायन और माताजी निजोरा गायन का आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने बचपन से लेकर आज तक सदैव मेरा हौसला बढ़ाया है। मैं अपने पति डॉ. प्रशांत कुमार बोरा, अपने बेटे ऋषभ बोरा और बेटी नैनिका बोरा को भी अपना आभार व्यक्त करती हूं जिनके सहयोग के कारण आज मेरा शोध कार्य पूरा हुआ है।

मैं अपने सह शोधार्थी आशीष कुमार का भी हृदय से आभारी हूं जिनका सहयोग व सुझाव मुझे प्रारंभ से प्राप्त होता रहा है।

अंत में मैं उसे सर्वेश्वर के प्रति भी आभारी हूं जिनकी कृपा से यह काम सही वक्त पर पूरा हुआ।

(मोनमी गायन)

शोधार्थी, हिंदी विभाग

नागालैंड विश्वविद्यालय

प्रथम अध्याय

अलका सरावगी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

अलका सरावगी: व्यक्तित्व एवं कृतित्व

बीसवीं सदी के अंतिम दशक की प्रसिद्ध महिला उपन्यासकार श्रीमती अलका सरावगी जी किसी परिचय की मोहताज नहीं हैं। वे एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न, धीर-गंभीर व सशक्त लेखिका हैं। उन्होंने सामाजिक विद्रूपताओं व विसंगतियों तथा ज्वलंत सवालों को तर्क एवं विचार की कसौटी पर परखते हुए हिन्दी साहित्य जगत में कदम रखा। लेखिका का व्यक्तित्व जितना शांत व सौम्य है, उनके विचार उतने ही संवेदनशील व अंतरंग गहरे हैं। उनकी वाणी में आत्मीयता के भाव निहित हैं, जो मर्मस्पर्शी तथा भ्रष्ट मानसिकता पर गहरा क्षोभ प्रकट करता है। यह एक चेतस साहित्यकार की पहचान है। अलका जी के व्यक्तित्व में परिवर्तन की चेष्टाएँ अधिक दिखलाई पड़ती है। राहों में अनेक बाधाएँ आने के बावजूद भी एक नई ऊर्जा, नई सोच व नई स्फूर्ति के साथ हर दिन जीवन को एक नए सिरे से जीने तथा जीवन में सतत् संघर्ष करते रहने और हार न मानने की जिद व आत्मविश्वास को बनाए रखने की उनमें अद्भुत क्षमता है। स्वतंत्रता और प्रेम उनके जीवन का मूल्य हैं। वे कहती हैं- "यदि स्वतंत्रता और प्रेम हमारे लिए सचमुच मूल्य हैं तो हमारी यह कोशिश होगी कि दूसरों को भी हम इन्हें दें। पर होता अक्सर यह है कि हमारे लिए ये मूल्य नहीं होते, बल्कि सिर्फ अपने लिए बटोरी गई सुविधा मात्र होते हैं।"[1] कठोर परिश्रमी, दृढ़ संकल्पी व निष्ठावान लेखिका का व्यक्तित्व ऊँचाई की उस पराकाष्ठा को छूता है, जहाँ से सृजनात्मकता का जन्म होता है।

1.1 जन्म एवं शिक्षा

अलका सरावगी का जन्म 17 नवम्बर सन् 1960 में कलकत्ता के एक सम्पन्न शुद्ध शाकाहारी मारवाड़ी परिवार में हुआ। उनके पूर्वज कलकत्ता में लगभग चार-पाँच पीढ़ियों से आकर बसे थे। पिता श्री केशव प्रसाद केजरीवाल पेशे से व्यवसायिक थे। माता श्रीमती इन्दु देवी सात्त्विक प्रवृत्ति की कुशल गृहिणी एवं धार्मिक महिला थी। अलका जी कुल मिलाकर एक भाई तथा पाँच बहनें थी, जिनमें वे तीसरे स्थान पर थी। अलका जी का प्रारंभिक जीवन कलकत्ता में बीता। पिता के अनुशासनप्रिय होने के कारण घर का वातावरण अनुशासनबद्ध था और बच्चों को भी अनुशासन में रहना पड़ता था। अनुशासनप्रिय व्यक्ति होने के बावजूद अलका जी के पिता को साहित्य, कला, शायरी, पत्र-लेखन आदि का विशेष शौक था जिसका अलका जी पर गहरा प्रभाव पड़ा।

अलका जी को शिक्षा-दीक्षा हेतु अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा। उनके ये संघर्ष आर्थिक नहीं बल्कि पारिवारिक व सामाजिक था। उनका परिवार रूढ़िवादी पारम्परिक मारवाड़ी परिवार था, जहाँ स्त्रियों की शिक्षा का स्तर काफी नीचे था। वहाँ शिक्षा का अर्थ केवल खानापूर्ति करना था, अर्थात् लड़कियों के लिए शिक्षा की आवश्यकता केवल इतनी समझी जाती थी कि लड़की के लिए सुयोग्य वर मिल सके और सामाजिक तौर पर कोई उन्हें पिछड़ा हुआ न समझे। इसी धारणा के तहत अलका जी की शिक्षा-दीक्षा हुई। उनकी पूरी शिक्षा कलकत्ता में हुई। कलकत्ता के श्री शिक्षायतन स्कूल से सन् 1969 से सन् 1978 तक उन्होंने उच्च माध्यमिक की शिक्षा प्राप्त की। उच्च माध्यमिक तक आते-आते कई चीजें उनके मन में साफ हो गई थी क्योंकि उनकी दो बड़ी बहनों की शादी हो चुकी थी। बड़ी बहन की शादी तो बहुत ही कम उम्र में बस कॉलेज में पैर रखते ही हो गई थी, और दूसरे नम्बर पर जो बहन थी, उसने तो कॉलेज में पाँव ही नहीं रखा और उसकी भी शादी हो गई। पारिवारिक परिस्थितियों के कारण उस समय की अपनी मनोदशा के विषय में वे कहती हैं कि "तब तक ये समझ में आने लग गया था कि जीवन का एक बहुत ही निश्चित ढ़ाँचा है। मैं पढ़ने में बहुत अच्छी थी, हमेशा टॉप करती थी लेकिन तो भी मेरे लिए कोई रास्ता या गुंजाइश हो, ऐसा नजर नहीं आता था।"[2]

उस समय स्त्री की शिक्षा का उद्देश्य केवल विवाह के बाजार में शामिल होना था। समाज में स्त्रियों के प्रति यह मानसिकता वही मानसिकता है जो सदियों से चली आ रही है। आज भी शिक्षा केवल खानापूर्ति भर करने की अनुमति प्रदान की जाती है ताकि सुयोग्य वर मिले। सामाजिक विकास के साथ-साथ इसके मानदण्ड में कुछ वृद्धि अवश्य हुई है, जो कि पहले बी.ए. तक थी, अब एम.ए. तक हो गई है। कहीं-कहीं तो यह भी संभव नहीं हो पाता। जबकि अलका जी की माता के समय यह मानदण्ड छठवीं-सातवीं तक थी। सामाजिक तौर पर कोई उन्हें पिछड़ा न समझे, इसलिए अलका जी का दाखिला कलकत्ता के लॉरेटो कॉलेज में करा दिया गया। यहाँ से उन्होंने सन् 1978 से सन् 1980 तक बी.ए. की शिक्षा प्राप्त की। स्त्रियों के प्रति परिवार की विचारधारा लड़कियों को पढ़ा-लिखा कर आत्मनिर्भर बनाना नहीं था। लड़कियों के प्रति जो सामाजिक मानसिकता थी, अलका जी के लिए बहुत कष्टकारी था। अपने कॉलेज की आइरिश प्रिंसिपल सिस्टर मेव के कटु वाक्य अलका जी को कितने सत्य लगे थे-"तुम लोग यहाँ पढ़ने थोड़े ही आयी हो, शादी की प्रतीक्षा करते हुए शादी के बाजार में अपनी कीमत बढ़ाने आयी हो।"[3] इसके साथ ही लड़कियों की पढ़ाई का अर्थ बायोडाटा में इजाफा करना था। घरेलू कामकाज के अलावा अतिरिक्त क्रियाकलापों को शामिल करना विवाह के बाजार में अपनी कीमत बढ़ाना था। विडम्बना यह कि समाज में इस कीमत की भी एक सीमा तय कर दी गई थी, जो कि अधिकतम

बी.ए. तक थी, वह भी इसलिए कि विवाह में खतरा उत्पन्न न हो जाए क्योंकि उनकी बिरादरी में अधिक पढ़ा-लिखा लड़का मिलना बड़ा मुश्किल था। इस भय से लड़कियों को आगे पढ़ने नहीं दिया जाता था। लड़कियों में चाहे कितनी भी मेधा हो, उनकी पढ़ाई छुड़वाकर विवाह करना अधिक उचित समझा जाता था। ऐसा ही अलका जी और उनकी बहनों के साथ हुआ। उनके व्यावहारिक पिता ने योग्य होने के बावजूद भी अपनी सभी बेटियों का विवाह कर दिया। उनकी मेधा वैवाहिक जीवन में 'एडजस्ट' करते रहने तथा पति और बच्चों की सेवा में ही समाप्त हो गई। वैवाहिक जीवन में उनका अस्तित्व इस प्रकार खो गया जैसे महीनों किसी ने घर पर रोज आने वाले अखबार को नहीं पढ़ा।

जिस परिवार में प्रारम्भ से ही बेटियों के मन में यह डाला जाता है कि उसकी पढ़ाई का उद्देश्य केवल सुयोग्य विवाह है, ऐसी परिस्थिति में किसी का आत्मविकास होना संभव नहीं है। परिवार में केवल अलका जी में ही ऐसी क्षमता व साहस थी, जिन्होंने अपने जीवन को अपने अनुसार जिया। असंभव को संभव बनाने का उनका ये सफर इतना आसान नहीं था। हर मोड़ पर उन्हें उनके अपने ही विपरीत खड़े मिले। विवाह के पश्चात् जब पहली बार उन्होंने पढ़ाई के प्रति अपनी इच्छा व्यक्त की, तो ससुराल वालों से मंजूरी लेने के बावजूद भी उन्हें अपने पिता की अवहेलना सहनी पड़ी। इसी घटना को साझा करते हुए वे लिखती हैं-"एक सहेली के साथ शादी के बाद परिवार की सहमति लेकर लॉ कॉलेज में दाखिला लेने की इच्छा जाहिर करने पर मेरे पिता ने मुझे कहा- यदि वहाँ दाखिला लो, तो मेरे घर में पाँव मत रखना। तुम्हारे घर-परिवार को कौन देखेगा? शादी के बाद अब तुम्हारा यही धर्म है।"[4] प्रतिकूल परिस्थितियों ने अलका जी को कमजोर नहीं वरन और अधिक मजबूत ही बनाया। साफ है अलका जी ने अपने जीवन में कभी भी हार मानकर अपने घुटने नहीं टेके बल्कि सदैव अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती गई। विवाह हो जाने के कारण कई वर्षों तक उनकी पढ़ाई बाधित रही परन्तु अनेक संघर्षों का सामना करते हुए बाल कोश का काम पूरा करते ही उन्होंने पुनः एम.ए. की अपनी पढ़ाई आरम्भ की। प्रथम दिन विश्वविद्यालय जाकर जो उन्होंने अनुभव किया, उन स्मृतियों को साझा करते हुए वे कहती हैं कि "मैं जब विश्वविद्यालय गई और मैंने व्याख्यान सुनें, तो मुझे लगा कि ये तो बिल्कुल एक अद्भुत दुनिया है और मैं कैसे इस दुनिया के बाहर, मतलब कि मेरे इस दुनिया का कोई मतलब ही नहीं था। तो वो एक बहुत ही सुन्दर अनुभव था बिल्कुल ऐसे लग रहा था कि जैसे मैं हवा में उड़ रही हूँ, इस तरह का एक अनुभव था।"[5] सन् 1988 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. पास किया, फिर एम.फिल. किया, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की परीक्षा में बैठी तथा इसमें भी उत्तीर्ण हुई। इसके पश्चात् सन् 1996 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से आलोचक डॉ.

शंभुनाथ जी के निर्देशन में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार अनेक संघर्षों के बाद भी वे सदैव आगे बढ़ती रहीं और अपनी शिक्षा-दीक्षा पूरी की।

अलका सरावगी के जीवन का ढ़ाँचा आम जीवन के ढ़ाँचे जैसा ही था। वह एक रूढ़िवादी मारवाड़ी परिवार की स्त्री थी, जिन्हें घर की चारदीवारी के भीतर अनेक नियम-कायदों में बँधकर रहना पड़ता था। पिता के आज्ञानुसार सवा उन्नीस साल की उम्र में अलका जी की सगाई तथा बी.ए. की पढ़ाई समाप्त करते ही बीस वर्ष की उम्र में सन् 1980 में कलकत्ता के एक बड़े व्यवसायी मारवाड़ी परिवार में उनका विवाह करा दिया गया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उन्हें एक जमीन से दूसरी जमीन पर पटक दिया गया हो। इक्कीस तथा पच्चीस साल की उम्र में दो बच्चे हो गए। ससुराल में सास-ससुर, पति महेश सरावगी, दो देवर, दो देवरानियाँ व उनके बच्चों, तथा स्वयं अपने दो बच्चो मयंक तथा सलोनी के प्रति भारतीय नारी के जीवन की सारी जिम्मेदारियों को निभाते हुए तथा तमाम झमेलों के बावजूद अलका जी साहित्य की सेवा करती रहीं।

साहित्य के प्रति उनके अटूट प्रेम को देखकर ही ससुराल वालों ने उनका पूरा समर्थन किया। विशेषकर उनकी सास ने उन्हें पूर्ण संबल व स्वतंत्रता प्रदान की। लेखन के बरक्स अलका जी को अपना सांसारिक जीवन अर्थात् बच्चे, घर-गृहस्थी बहुत भारी लगने लग गया क्योंकि सबको संग में लेते हुए ही सब कुछ करना था। उनके पति का भी बहुत सहयोग था लेकिन उन्होंने इतना ही कहा कि घर में तो जितना करना है, वो तो करना ही होगा। अलका जी की दोनों देवरानियों विभा और ज्योति की भी शादी हो गई थी। बच्चों की देख-रेख में उनका भी बहुत सहयोग मिला था। अलका जी की उपस्थिति व अनुपस्थिति में उन दोनों ने सदैव पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाया। इस तरह उनका काम चल पड़ा और जो कोश का काम था वो दो-तीन साल तक खींचता रहा। अलका जी का ससुराल, उस समय के परिवारों में स्त्रियों के साथ हो रहे घरेलू हिंसा व अत्याचार के मुँह पर जोरदार तमाचा एवं समाज के समक्ष एक उत्कृष्ट उदाहरण बना। बाद में चलकर अलका जी का वैवाहिक जीवन आपसी प्रेम, सहयोग, संतोष, नई सोच व एकता के स्वस्थ वातावरण से घिरा वर्तमान भारतीय समाज में खुशहाल संयुक्त परिवार का एक उत्तम उदाहरण है।

अलका जी जिस समाज में जी रही थी, वहाँ लोगों की मानसिकता इतनी कुंठित थी कि किसी स्त्री का घर से बाहर जाकर काम करना समाज की नजरों में बुरा समझा जाता था। समाज की इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए साक्षात्कार में अलका सरावगी ने कहा कि "एक स्त्री लेखक

का जो जीवन होता है, उस मामले में पुरुष लेखक के जीवन से थोड़ा अलग होता है, क्योंकि हमारे समाज का जो ढ़ाँचा है, उसमें औरत आर्थिक रूप से उतनी स्वतंत्र नहीं होती है, खास करके हमारे जो बिजनेस कम्युनिटी है-मारवाड़ी कम्युनिटी। उसमें अब हमारे बच्चे तो अपने पैरों पर खड़े हैं, हमारी लड़कियाँ यानी, लेकिन हमारे समय तक तो ऐसा नहीं था। ऐसा बहुत ही दुर्लभ था कि कोई लड़की नौकरी करे या अपना कुछ काम करे। कई लोग जिनको कुछ मजबूरी थी या पति को कुछ समस्या हो कमाने में तो वो औरतें भले ही काम करती होंगी लेकिन, हमारे समय तक तो ऐसा नहीं था।''[6]

अनेक समस्याओं के बाद भी अलका जी ने शिक्षायतन कॉलेज में अनुभव हेतु अंशकालिक रूप से पढ़ाया। पढ़ाने के साथ-साथ घर की जिम्मेदारी, माँ होने की जिम्मेदारी, लिखने की जिम्मेदारी, इन सबको एक साथ लेकर चलना बहुत कठिन हो गया था। जिसके कारण उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी, परन्तु इस बात की टीस उन्हें सदैव थी। उसी विश्वविद्यालय की प्रो. चन्द्रा पांडे ने इस बात पर अलका जी को ढाढ़स दिया, कि उनमें इतनी सृजनात्मकता है कि उन्हें परेशान होने की आवश्यकता ही नहीं है। उन्हें पूरा विश्वास था कि एक दिन बाहर के विश्वविद्यालय वाले अलका जी को पढ़ाने के लिए स्वयं बुलाएँगे और उनकी यह बात सच भी हुई। अपने पहले ही उपन्यास 'कलि-कथा: वाया बाइपास' के प्रकाशन के कुछ समय पश्चात् 'वेनिस विश्वविद्यालय' ने अलका सरावगी को पढ़ाने का निमंत्रण भेजा। वहाँ उन्होंने हिन्दी साहित्य और बांग्ला साहित्य के संबंध के विषय पर करीब एक महीने तक अध्यापन का कार्य किया।

बचपन में ही अलका जी की प्रतिभा एवं क्षमता को उनकी दादी ने भाँप लिया था और उन्हें अलका पर बड़ा भरोसा था कि वह अवश्य ही कुछ अच्छा करेगी। इसके लिए उनकी दादी सदा उन्हें प्रोत्साहित भी करती थी। वे बचपन से ही हमेशा उन्हें कहती थी कि तुमको कुछ और भी करना है, यानी कि शादी, बच्चे, माँ बनना, ये सब तो सभी औरतें करती हैं, लेकिन तुमको इसके अलावा भी कुछ और करना है।

जीवन में अनेक संघर्षों का सामना करते हुए तथा अनेक दुर्गम रास्तों से गुजरते हुए अंततः एक ऐसा मार्ग खुल गया, जहाँ से अलका जी के जीवन को एक नई उम्मीद तथा उनके सपनों को एक नया आकाश मिला, किन्तु इसमें जटिलताओं का कहीं नकार न था। अलका जी जब दूसरी बार गर्भवती थीं, उस समय उनकी उम्र करीब साढ़े चौबीस साल थी। उस समय उनकी जान-पहचान की एक रिश्तेदार, जिन्होंने बच्चों का कोई कोश बनाना शुरू किया था। वे अलका जी की मेधा से परिचित थीं, सो कोश के कार्य हेतु उन्होंने अलका जी को आमंत्रित किया।

अलका जी घर की परिस्थितियाँ जानती थीं। ऊपर से वे दूसरी बार गर्भवती थीं। गर्भ की अपनी परेशानियाँ थी। बावजूद इसके उन्होंने जाने का निश्चय किया और अपने परिवार को हामी भर दी। अलका जी की स्मृति में वह दिन अंकित रहा। वह दिन था पहली जुलाई, सन् 1985। बड़ी मुश्किल से उन्होंने अपने को तैयार किया और इस विषय पर अपनी सास से बात की। उनकी सास को हमेशा इस बात का बहुत फक्र था कि उनकी बहू बहुत पढ़ी-लिखी है। अलका जी ने उनको कहा कि मुझे उनकी मदद करनी है, दो-तीन महीने का काम है तो मैं वो कर देती हूँ। सास ने भी कहा कि हाँ ठीक है कर दो। अलका जी जब वहाँ गई और जो माहौल देखा, तो महसूस किया वह अनुभव अन्यत्र नहीं था। अशोक सेकसरिया जो कि अलका जी के गुरू हैं, उनसे भी वे वहीं उसी दिन पहली बार मिली और सबकी बातें उन्होंने सुनी तो उन्हें एक अद्‌भुत दुनिया का आभास हुआ। वह दुनिया जिसकी अब तक उन्हें तलाश थी। उसके बाद फिर उन्होंने कभी नहीं सोचा कि मैं एक आम गृहिणी की जिन्दगी बिताऊँ। अलका जी ने बहुत सारी किताबें पढ़नी शुरू की और उन विषयों पर अशोक जी से गंभीर बातचीत होने लगी। अशोक जी उनकी स्थिति का विश्लेषण करते हुए उनका मार्गदर्शन किया करते थे, सुनते थे, बोलते थे। इन बातचीतों का असर यह हुआ कि अलका जी का पूरा जीवन बदल गया। बातचीत के दौरान वे अशोक जी को कुछ ऐसे ही किस्से सुनाती रहती थी। मसलन कैसे वो अंग्रेजी लोरेटो कॉलेज में भरती हुई, किस प्रकार की अनुभूति उनको हुई। जो हिन्दी माध्यम की लड़कियाँ थी उनका एक अलग गुट था और अंग्रेजी माध्यम वाली का अलग और वे हम लोगों को एक हेय दृष्टि से देखते थे वगैरह-वगैरह। इस विषय पर अशोक जी ने अलका जी को लिखने हेतु प्रेरित किया। वे कहती हैं कि "अशोक जी ने कहा कि आप इसको लिखती क्यों नहीं हैं? तो मैंने कहा कि इसमें लिखने जैसा क्या है? उन्होंने कहा कि नहीं, आप एक छोटा सा फीचर इस पर लिखिए। तो मैंने वो पहला फीचर लिखा-'अंग्रेजी स्कूल में मेरा पहला दिन।''[7] यह फीचर कलकत्ते से निकलने वाली 'परिवर्तन मैगजीन' में छपा जिसके संपादक राजकिशोर जी हुआ करते थे। राजकिशोर जी उस समय कलकत्ते में थे किन्तु बाद में वो भी दिल्ली चले गए। राजकिशोर जी ने उसको पहले छापा। उसके बाद नवभारत टाइम्स में एक आठवाँ कॉलम निकलता था, जिसमें वे इस तरह के फीचर, आर्टिकल्स ही लिखने लगी। कभी किसी पुस्तक की समीक्षा लिखती, कोई सिनेमा की समीक्षा लिखती या कुछ ऐसी ही परिस्थितियाँ जिनको अपने आस-पास देखती थी। अपने लेखों के लिए वे कहती हैं कि "एक तरह से नैतिक जर्नलिस्टिक आर्टिकल्स थे, मतलब जिन चीजों पर हमें लगता है कि इन्हें बदलना चाहिए और तब मुझे ऐसा लगने लग गया कि मैं जो लिख रही हूँ वो दुनिया को बदलने का एक बहुत ही सही रास्ता है। ऐसा मुझे उस समय महसूस होने लगा और

एक शब्दों के साथ जीना और शब्दों के साथ उठना-बैठना जैसा जीवन था तो वो मुझे बहुत अच्छा लगने लगा।''[8]

आमतौर पर घर की जो एक जिन्दगी होती है, इसके बारे में अलका जी को हमेशा ये लगता है कि कहीं भी जाओ तो एक एक्शन रिप्ले जैसा होता है। अर्थात् कि जो आप पिछली बार शादी में गए थे दस साल पहले या दस साल आप जाते रहे हैं उसमें कोई परिवर्तन नहीं है। ऐसे समाज के पास एक लेखक को देने के लिए बहुत कम बातें हैं इसलिए उनका सम्पर्क एक सामाजिक घेरे में बँधकर कभी नहीं रहा। अपने लेखन के लिए सदैव उन्हें नए लोगों एवं नए अनुभवों की तलाश रहती।

प्रारम्भ में अलका जी कहानियाँ ही लिखा करती थी जो हंस, वागर्थ, पहल, कथादेश आदि पत्रिकाओं में छपी। लेकिन कलिकथा लिखने के बाद उन्होंने कहानियाँ नहीं लिखी। उसके बाद उन्होंने केवल उपन्यास ही लिखे। कहीं-कहीं पत्रिकाओं में उपन्यास का अंश छप जाता था। उनकी प्रथम कहानी 'आपकी हँसी' है। इसकी पृष्ठभूमि कुछ इस प्रकार बनी कि सन् 1991 में जाड़े के दिनों में अलका जी अपने मित्र व परिजनों के साथ कलकत्ते के बाहर किसी के घर में रहने गई जिससे कि वे वहाँ के आस-पास के इलाकों को खोज सके। इसी दौरान उस घर में उन्हें एक ऐसा चरित्र मिला जो बहुत ही विचित्र सा था। उसे देखकर यह समझ नहीं आ रहा था कि वह उस घर का नौकर था या कि मालिक का कोई रिश्तेदार। लेखिका के मन में उसके बारे में जानने की भीषण उत्सुकता बनी थी। वह हर बात पर केवल हँसता रहता था किन्तु जब वे सभी वापस लौट रहे थे, तो वह रो रहा था। बाद में लेखिका को वह चरित्र इतना प्रभावित कर गया कि उन्होंने रघुवीर सहाय की कविता 'आपकी हँसी' के नाम पर इस पात्र को केन्द्रित कर एक कहानी लिख दी। अशोक जी के सलाह पर अलका जी ने यह कहानी 'वर्तमान साहित्य' का जो महाविशेषांक निकल रहा था, उसमें भेज दी। रवीन्द्र कालिया जो इसके संपादक थें, उन्होंने प्रथम रचना के रूप में इसे अंकित कर छाप दी जिसकी साहित्य जगत में काफी चर्चा हुई।

अशोक सेकसरिया एक प्रेरणा स्तम्भ, मार्गदर्शक व गुरू जिनके सानिध्य से अलका जी को जीवन के कई नए अनुभव मिले, जिसने उन्हें लिखने की प्रेरणा प्रदान की तथा उनके ज्ञान क्षेत्र को समृद्ध बनाया। अशोक जी के विषय में अलका जी कहती हैं कि "अशोक जी का ऐसा साथ था कि, मतलब की लगता था कि एक बहुत ही सच्चा, खरा, ईमानदार और एक निस्पृह, किसी भी तरह का कोई महत्वाकांक्षा नहीं रखने वाला कोई ऐसा शख्स, जैसा कि दुनिया में और कोई दिखता ही नहीं। तो हुआ ये कि फिर बराबर मैं उनके पास जाती रही, जो कुछ भी सोचती

रही। तो वो एक तरह के साउंडिंग बोर्ड जैसे थे। उनका घर जो था उसमें बहुत तरह-तरह के लोग आते थे। नक्सलवादी आते थे, राजनीतिक कर्मी, राजनीतिक विचारक, कई तरह के आन्दोलनों से जुड़े हुए लोग, उत्तर बंगाल का आन्दोलन था, तो इस तरह से बहुत सारे लागों से भी एक राजनीतिक संस्कार जो मेरे लेखन में तुम देखोगी, तो इसका कारण ये था कि मुझे एक बहुत बड़ा प्रकट करने वाला मिला।''[9]

अलका जी को सदैव पढ़ाई-लिखाई के प्रति विशेष रूचि थी। विवाह के पश्चात् भी उनकी ये रूचि हमेशा वैसी ही बनी रही क्योंकि उन्हें लगता था कि जीवन में परिवार व बच्चों के अतिरिक्त भी कुछ और होना चाहिए। पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ उन्हें कविता तथा कहानियाँ पढ़ने का भी बहुत शौक था। विश्वविद्यालय में पढ़ने के दौरान जब भी प्रश्न-उत्तर जैसे कुछ आयोजन होते थे तो उसमें वह भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती। भ्रष्ट मानसिकता एवं रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रति क्षोभ से भरा हुआ उनका हृदय, अपने स्वच्छंद विचारों से समाज का कल्याणकारी एवं नवीनता का पक्षधर रहा।

अलका सरावगी की प्रवृत्ति में विद्रोह का स्वर है, जो स्वतंत्रता की माँग करता है। स्कूल में शिक्षा प्राप्ति के प्रारम्भ से ही उनका यह विद्रोह दिखलाई पड़ता है। साक्षात्कार के दौरान इस विद्रोह के कारण को अलका जी ने स्पष्ट करते हुए कहा कि "जब 'सारा आकाश' हमने पढ़ी तो हम सभी काफी विद्रोही थे। वो प्रायः मारवाड़ी लड़कियों का स्कूल था जहाँ सभी की एक जैसी नैतिक स्थिति थी। हम सभी के अंदर एक विद्रोह का अंकुर था, हम सब काफी चर्चा करते थें। हमने एक छोटी सी बुकलेट भी उन दिनों लिखी थी कि आगे पढ़ने का क्या फायदा है और इतनी मेहनत करने का क्या फायदा है? क्योंकि मैं अपनी बहनों को देख रही हूँ और मुझे अगर वैसी ही जिन्दगी बितानी है तो कोई अर्थ नहीं है मेरे इतने मेहनत करने का।''[10] रूढ़िगत संस्कार सदैव व्यक्ति को पीछे की ओर खींचता है किन्तु अलका जी ने इसे अपने जीवन पर कभी हावी नहीं होने दिया।

अलका सरावगी को उनके समृद्ध साहित्यिक सृजनात्मकता के लिए कई कृतियों पर विभिन्न पुरस्कारों से अलंकृत किया गया है जो निम्न है-

i. 'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास पर सन् 1998 में श्रीकांत वर्मा पुरस्कार
ii. 'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास पर सन् 2001 में साहित्य अकादमी पुरस्कार
iii. 'शेष कादम्बरी' उपन्यास पर सन् 2006 में के.के. बिरला फाउंडेशन का बिहारी परस्कार
iv. 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास पर अंतर्राष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान

v. तीन उपन्यासों के इतालवी भाषा में प्रकाशित होने पर इटली सरकार द्वारा 'आर्डर ऑफ द स्टार ऑफ इटली-कैवेलियर' सम्मान

vi. 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास पर सन् 2021 में कलिंग साहित्य महोत्सव द्वारा सर्वश्रेष्ठ हिन्दी किताब का बुक ऑफ द ईयर अवॉर्ड

vii. 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास पर सन् 2021 में वैली ऑफ वर्ड्ज़, देहरादून का हिन्दी फिक्शन का पुरस्कार

1.2 कृतित्व: संक्षिप्त परिचय

अलका सरावगी का कृतित्व समकालीन लेखकों के बने-बनाए ढ़र्रे से बिल्कुल अलग जमीन पर खड़ी है, जहाँ व्यष्टि को समझे बिना समष्टि तक नहीं पहुँचा जा सकता है। इसलिए उनकी रचनाओं में मानव मन को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। वे कहती हैं- "बिना 'व्यष्टिवादी' हुए कोई भला समष्टि को क्या समझेगा? यदि एक व्यक्ति का आर्त्त अनुभव, उसका कष्ट, उसका पल-पल उद्वेलन, उसकी असहाय छटपटाहट-कुल मिलाकर उसकी असाधरणता ही साहित्य में नहीं आती, तो हम किस साधारण आदमी के साहित्य की बात करते हैं?"[11] साहित्य जगत में उनका लेखन एक नवीन प्रयोग है, जो एक आम आदमी के बहुत से अनुभवों को लेकर आता है। यह एक संवेदनशील मुद्दा है, जिसका विश्लेषण किसी भी खाँचे में बाँधकर नहीं किया जा सकता है।

अलका सरावगी के कहानियों की रचनाधर्मिता आम आदमी की छटपटाहट, अस्पष्ट पीड़ा, प्रेम, स्वतंत्रता व अस्मिता जैसे शब्दों के अर्थ को तलाशती है। जीवन के अनेक झमेलों और उलझनों के पश्चात् व्यक्ति मन की गहरी पड़ताल करती 'कहानी की तलाश में' संग्रह की कहानियाँ संघर्षों से झंझोर खाती हुई मनुष्य की जिजीविषा को बनाए रखने की जद्दोजहद में लगी है। आधुनिकतावादी जीवन की संवेदनहीनता एवं विसंगतियों के बीच एक सुंदर और परिपूर्ण जीवन की तलाश ही अलका जी की कहानियों एवं उनके पात्रों को नई प्रायोगिक दिशा प्रदान करती है। उनके इस तलाश की प्रतिपूर्ति उनके 'दूसरी कहानी' संग्रह की कहानियों में जाकर होती है, जहाँ जीवन की अपूर्णता ही जीवन की सार्थकता है। अपनी कहानी कला के विषय में अलका जी कहती हैं कि "मेरी जो एक संवेदना बनी कि कहानी क्या है और कहानी को क्या नहीं होना चाहिए या कहानी कुछ भी हो सकती है, तो इस संवेदनशीलता को बनाने में रघुवीर सहाय पर जो मेरा शोध था उसका और अशोक जी का काफी बड़ा प्रभाव था।"[12]

कहानी

अलका जी के दो कहानी-संग्रह 'कहानी की तलाश में' तथा 'दूसरी कहानी' प्रकाशित है, जिनमें कुल मिलाकर पैंतीस कहानियाँ हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न है-

1. कहानी की तलाश में

अलका सरावगी का पहला कहानी संग्रह 'कहानी की तलाश में' वर्ष 1996 में प्रकाशित हुआ है जिसमें सत्रह कहानियाँ संग्रहित हैं। इस संग्रह की कहानियों की कला दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। यह समकालीन ढ़र्रे से अलग की कहानियाँ हैं, जो जैनेन्द्र एवं रघुवीर सहाय की कहानियों की याद दिलाती है। सभी कहानियों में एक तलाश है उन आम लोगों के जीवन के छोटे-से-छोटे अनुभवों की, जो वर्तमान जीवन की अस्त-व्यस्त जीवन शैली में फँसकर अनछुआ रह गया है। फिर भी जीवन को एक नई दृष्टि से देखने और जीने की बेचैनी में ही कहानियों का मर्म अन्तर्निहित है।

'कहानी की तलाश में' कहानी जीवन को अपने तरीके से जीने के बाद भी एक आम आदमी की छटपटाहट व उधेड़बुन, चाय की दुकान पर अपना बचपन घिस रहे बच्चे, रिक्शेवाले जिन्हें उम्र के किसी पड़ाव की कोई चिन्ता नहीं, घंटों लोहे के दरवाजे को खोल-बंद करनेवाले लिफ्टमैन के दुःख को दर्शाता है जो कि एक आम आदमी का दुःख है। 'हर शै बदलती है' कहानी रोजमर्रा की जिन्दगी को एक नई ऊर्जा लिए जीवन को फिर से नए सिरे से जीने की चाहत और सोच के साथ उन परिस्थितियों को जीवंत करने की है, जो कहीं बुझ चुकी हैं। यही जिजीविषा मनुष्य को आत्महत्या से बचाए रखती है। वहीं 'बीज' कहानी स्त्री के मनोवैज्ञानिक विचारों को उद्घाटित करता है, जो बीज रूप में उसके दिमाग में बनी रहकर उसे विचलित करती रहती हैं। इस कहानी के विषय में लेखिका स्पष्ट करती है कि "मुझे अपनी शक्ति को जानने के लिए पुरुष-विरोधी होने की कभी जरूरत नहीं हुई। बल्कि मैंने यह जाना कि एक स्वस्थ, विकसित संवेदना वाले समाज में ही स्त्री पूरे आत्मविश्वास, स्वतंत्रता और सम्मान के साथ जी सकती है। इसलिए जरूरत उस समाज को ही बनाने की है।"[13]

आत्मिक संबंधों की कहानियों में 'मिसेज डिसूजा के नाम' और 'टिफिन' कहानी है। 'मिसेज डिसूजा के नाम' कहानी एक माँ का उसकी संतान के प्रति निश्छल भावनाओं की कहानी है, जहाँ बालक की सारी कमी का दोषारोपण माँ पर किया जाता है। यह दोष और अधिक हो जाता है, जब एक स्त्री माँ हाने के साथ ही अपने अस्तित्व की भूमि को उर्वर बनाने में लगी हो। 'टिफिन' कहानी दादी और किशोरावस्था में पहुँची उसकी पोती के आत्मिक प्रेम को दर्शाता है,

जहाँ वह अपनी दादी से अपने मन की सभी बातों व समस्याओं को बताती है। उसकी बातें उसके भोलेपन को दर्शाता है किन्तु इसे समझने के लिए आवश्यक है एक कोमल हृदय की जो उसके प्रति अत्यन्त संवेदनशील हो।

स्त्री को केन्द्र में रखकर कुछ कहानियाँ लिखी गई हैं, जिनमें 'बहुत दूर है आसमान', 'एक व्रत की कथा' तथा 'लाल मिट्टी की सड़क' है। 'बहुत दूर है आसमान' कहानी स्त्री-विमर्श पर केन्द्रित है जिसमें आठ वर्षीय बालिका गुल्लू के माध्यम से बलात्कार, अपहरण तथा शोषण के तहत असुरक्षित होती लड़कियों को दिखाया गया है तथा कहानी 21 वी. सदी में निरंतर आगे बढ़ते समाज में स्त्री की सुरक्षा पर प्रश्नचिह्न खड़ा करती है। 'एक व्रत की कथा' कहानी में पूजा-पाठ, व्रत-त्यौहार जैसे मुद्दों पर नई एवं पुरानी पीढ़ी के मानसिक टकराव को दिखाया गया है। 'लाल मिट्टी की सड़क' कहानी है, जो पुरुषवादी समाज और उसकी मानसिकता पर गहरा क्षोभ प्रकट करते हुए भारतीय नारी के जीवन की समस्याओं, उसकी अस्मिता के प्रश्नों, समाज में स्त्री-पुरुष के बीच के संबंधों एवं असमानताओं तथा स्त्री संबंधी रूढ़िगत धारणाओं पर सवाल खड़ा करता है।

आधुनिकतावादी जीवन की विसंगतियों को प्रस्तुत करती कहानियों में 'सम्भ्रम', 'ख़िजाब', 'महँगी किताब' तथा 'आपकी हँसी' हैं। 'सम्भ्रम' कहानी में कनक मौसी के माध्यम से आधुनिकतावादी जीवन में व्यक्ति की बढ़ती अतिरंजना की प्रवृत्ति को दर्शाया गया है, जहाँ प्रेम जैसे शब्द केवल अपने स्वार्थ तक ही सीमित हैं। 'ख़िजाब' कहानी एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो बंधनमुक्त स्वतंत्र जीवन जीती है। उसने प्रेम और स्वतंत्रता में से स्वतंत्रता का चुनाव किया है क्योंकि उसके विचार से प्रेम चाहे कितनी ही सुरक्षा क्यों न दे परन्तु स्वतंत्रता छीन लेता है, परन्तु यही स्वतंत्रता वह अपनी बेटी को नहीं दे पाती। 'महँगी किताब' कहानी समाज के उन लोगों का प्रतिनिधित्व करता है, जिनकी प्रतिभा को जब समाज में उचित स्थान नहीं मिलता, तब किस प्रकार वह व्यक्ति भटकाव की स्थिति में आ जाता है। 'आपकी हँसी' कहानी एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो लेखिका के अंदर अपने चरित्र की बराबर उत्सुकता बनाए रखता है। वह हर वक्त हँसता ही रहता है लेकिन उसके पीछे की उसकी मनोदशा के विषय में लेखिका जान नहीं पाती है। तो दूसरी ओर 'प्रतिक्षा के बाद' कहानी में डॉक्टर के चेम्बर में घंटो बैठे अपनी बारी का इंतजार करते कथानायक को दिखाया है। प्रतीक्षा में उसकी छटपटाहट कुछ क्षण पश्चात यथास्थिति के अनुरूप ढल जाती है जैसे जीवन में हम परिस्थितियों से थककर या कुछ न कर पाने के कारण अंततः उसके अभ्यस्त हो जाते हैं।

ह्रास होती वर्तमान शिक्षा व्यवस्था एवं उसकी राजनीति तथा प्रतिभा सम्पन्न लेखकों की समस्याओं को 'जोड़-घटाव', 'पिस्सू और कलमघिस्सू' कहानियों में दर्शाया गया है। 'जोड़-घटाव' कहानी वर्तमान उच्चतर शिक्षा व्यवस्था के स्तर पर जिस प्रकार की राजनीति छात्रों एवं प्रोफेसरों में होती है, उसे चित्रित करता है। 'पिस्सू और कलमघिस्सू' कहानी में हिन्दी के साहित्यकारों का संकट तथा अर्थ के बढ़ते वर्चस्व को दिखाया गया है जिसमें प्रतिभाशाली व्यक्ति सम्मान से वंचित रह जाता है और यह अर्थ सम्पन्न व्यक्ति की झोली में चली जाती है। यहाँ बड़ी-से-बड़ी डॉक्टरेट जैसी डिग्रीयाँ भी बिकाऊ है। अंग्रेजी भाषा आधुनिकता का परिचायक बन गया है, जिसका विरोध सुमित्रा जैसे लोग कर रहे हैं।

भ्रष्ट होते जीवन मूल्य की कहानियों में 'उद्विग्नता का एक दिन' कहानी है, जो एक सीधे-साधे व्यक्ति की आर्थिक तंगी एवं उसकी पत्नी के चारित्रिक पतन को दर्शाता है। इन्हीं परिस्थितियों को देख वह अपनी बेटी का विवाह अन्तर्जातीय किन्तु पैसेवाले लड़के से तय करके संतुष्ट है। वहीं जीवन की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता को व्यक्त करती कुछ दार्शनिक तरह की कहानियाँ भी हैं जिनमें 'मौत का एक दिन मुअय्यन है, नींद क्यों रात भर नहीं आती' कहानी है जिसमें मृत्यु की कल्पना है। अपने को सुंदर बनाने में व्यक्ति के सारे जतन, उसकी सारी साज-सज्जा मरने पर एक झटके में भस्म हो जाती है।

2. दूसरी कहानी

'दूसरी कहानी' अलका सरावगी का दूसरा कहानी-संग्रह है, जिसका प्रकाशन सन् 2000 में हुआ है। इस संग्रह में कुल अट्ठारह कहानियाँ हैं जो पहले से बनी-बनाई रचनापद्धति की परिपाटी को तोड़ती हुई प्रचलित बंधनों से मुक्त स्वतंत्र रूप में प्रस्तुत होती है। 'ये रहगुजर न होती', 'पार्टनर', 'एक पेड़ की मौत', 'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर', 'दूसरे किले में औरत', तथा 'कनफेशन' जैसी कहानियाँ एक साधारण व्यक्ति के सुख-दुःख को इंगित करती हुई जीवन की परिपूर्णता को तलाशती है। 'ये रहगुजर न होती' पारिवारिक जीवन के तनाव व उतार-चढ़ाव की कहानी है। 'पार्टनर' कहानी में प्रकृति को केन्द्र में रखा गया है, जिसमें वह व्यक्ति की चिरसहचरी के रूप में है। वह मनुष्य को नित् नवीन संदर्भों से जीवन का नया पाठ व यथार्थ जगत से उसका सामना कराती है। 'एक पेड़ की मौत' में जगन्नाथ बाबू का एक अनाम पेड़ के साथ अगाध प्रेम की कथा है, जिसकी मृत्यु जगन्नाथ बाबू को दफ्तर से निकाले जाने के साथ ही हो जाती है। 'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर' कहानी में एक आम जिन्दगी की पीड़ा है, जो कुछ बिसरी यादों और उससे जुड़े कुछ सवालों को लिए उस व्यक्ति विशेष के वर्षों बाद पुनः सामने आ जाने पर फिर

से मस्तिष्क में कौंध जाती है। 'दूसरे किले में औरत' कहानी बाजारवाद के यथार्थ को चित्रित करता है। जिसमें ड्रीम हाउस एसोसियेट्स जैसी कंपनियों का जिक्र है, जो लोगों को उनके सपनों का घर बनाकर उनके सपने बेचता है।

'कनफेशन' एक यथार्थबोध की कहानी है जिसमें मीरा अपने कॉलेज मैगजीन में शोषित सविता का उसके द्वारा दिए कनफेशन को सीधे तौर पर लिखना चाहती है किन्तु अंततः कर नहीं पाती क्योंकि इसके लिए वैसे उपयुक्त शब्द और वाक्यों की कमी है।

'दूसरी कहानी' तथा 'आक एगारसी' कहानियाँ सामाजिक समस्याओं को केन्द्र में रखकर लिखी कहानियां हैं। 'दूसरी कहानी' समाज में शारीरिक रूप से अक्षम लोगों की गंभीर समस्याओं को प्रस्तुत करता है जिसमें एक माँ का अपने बेटे की अक्षमता को लेकर किया गया संघर्ष है। 'आक एगारसी' में विभिन्न सामाजिक समस्याओं को वर्तमान और भविष्य की तुलना करते हुए प्रस्तुत किया गया है।

'अँधेरी खोह में' तथा 'इन लोगों ने धावा बोल दिया' कहानी स्त्री लेखिकाओं की चुनौतीपूर्ण स्थिति को दर्शाता है, जहाँ लेखिकाओं को अपने स्वत्व की रक्षा हेतु दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ती है। 'अँधेरी खोह में' एक स्त्री लेखिका का रचनात्मक संघर्ष निहित है, जिसमें लिंग भेद अर्थात् स्त्री होने के कारण पुरुष लेखकों के बरक्स स्त्री लेखिकाओं की रचनाओं को घिसा-पिटा और कमतर समझा जाता है। 'इन लोगों ने धावा बोल दिया' कहानी में अर्थशास्त्र की वरिष्ठ प्राध्यापिका को गृहस्थ जीवन के अनेक झमेलों के कारण लेखन कार्य में बाधा आती रहती है। विभिन्न पारिवारिक जिम्मेदारियों का वहन करते हुए लेखन कार्य के लिए निष्ठापूर्वक कर्म करना उनके लिए अत्यन्त संघर्षपूर्ण हो जाता है।

'कब्ज-हर' कहानी व्यक्तिगत मनोविज्ञान को उद्घाटित करती है तो 'यह भी सही है वह भी सही है' कहानी जीवन में यथार्थ और आदर्श के बीच झूलते व्यक्ति की मनोदशा को प्रस्तुत करती है। वहीं 'वाइल्ड फ्लावर हॉल' यात्रा-वृत्तांत के रूप में लिखी गई कहानी है, जिसमें दाम्पत्य जीवन की अनेक अपूर्ण महत्वाकांक्षाओं एवं समस्याओं को उकेरा गया है। 'एक और नमकहराम' कहानी स्त्री की वर्तमान स्थिति पर केन्द्रित है, जहाँ उसके अपने इच्छानुसार जीने पर समाज का अंकुश लगा दिया गया है। स्वयं अपने जीवन पर उसका काई अधिकार नहीं।

'मन्नत' कहानी में मावनतावाद की चरम पराकाष्ठा समाहित है। यह आस्तिक अथवा नास्तिक विचारों से परे एक ऐसी कामना रखती है, जो पूरी कायनात को प्रेम के एक सूत्र में पिरो दे। वहीं दूसरी ओर 'न्यू ईयर्स ईव' आधुनिकतावादी जीवन की विसंगति एवं जीवनशैली को

उजागर करता है जिसमें पार्टी और इस दौरान स्त्री-पुरुषों का नशा करने की प्रवृत्ति को दर्शाया गया है।

'कलम-तंत्र की कथाएँ' कहानी में गुरू का शिष्य को दो कथाओं के माध्यम से साहित्य का प्रति रचनाकार का कर्म, निष्ठा, समर्पण, प्रेम तथा उसका मर्म समझाया गया है। तो 'निर्वाण' कहानी में मुक्त जीवन की तलाश है अर्थात् जीवन को जीने का सही तरीका जान लेना ही मोक्ष अर्थात् निर्वाण प्राप्त कर लेना है।

अलका सरावगी की कहानियाँ एक ऐसे संसार में ले जाती है, जो आम व्यक्ति की छोटी-छोटी परेशानियों से छटपटाते व्यक्तित्व की यात्रा कराता है। कभी ये कहानियाँ पाठकों को गैर दिलचस्प या अरोचक सी लगती हैं क्योंकि इन कहानियों का कोई अंत नहीं होता। आमतौर पर एक बनी-बनाई लेखन-शैली, जिसके हम आदी हो चुके हैं, ऐसी लेखन-शैली का अलका जी के यहाँ अभाव है। एक नए परिप्रेक्ष्य से जीवन को देखना ही कहानियों के मूल में है।

उपन्यास

अलका सरावगी के सभी उपन्यास विभिन्न दृष्टिकोण के मद्देनज़र लिखे गए हिन्दी साहित्य जगत में ऐसी नवीन शैलीबद्ध रचना है, जिसने कथा साहित्य की विधा को नया आयाम दिया है। उपन्यास की बुनावट इस प्रकार की गई है कि अतीत, वर्तमान एवं भविष्य एक साथ मिलकर व्यक्ति एवं समाज की गहरी पड़ताल करते नजर आते हैं। लेखिका के उपन्यास साहित्य का केन्द्र केवल एक खास समुदाय नहीं, बल्कि यह सम्पूर्ण समाज का दर्पण है जिसमें व्यष्टि से समष्टि तक की चर्चा है। अलका जी के उपन्यासों के पात्र अपनी एक पूरी पीढ़ी को साथ लिए प्रस्तुत होता है, अर्थात् परम्परागत जीवन मूल्यों से लेकर आधुनिकतावाद तक की विकास परम्परा को उपन्यासों के विकास क्रम में देखा जा सकता है। इसी के तहत हम यहाँ अलका जी के सभी उपन्यासों की संक्षिप्त विवरण निम्न है:

1. कलि-कथा: वाया बाइपास

अलका सरावगी का पहला उपन्यास 'कलि-कथा:वाया बाइपास' सन् 1998 में आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा से प्रकाशित हुआ। एक नये प्रयोगात्मक संदर्भ में लिखा गया उपन्यास 'कलि-कथा:वाया बाइपास' को उसके प्रकाशन से पहले उसकी पहली रिडिंग पर कई विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों ने अनगढ़ कहकर खारिज कर दिया था, जिससे अलका जी काफी निराश हुई थी, किन्तु 'परमानंद श्रीवास्तव' जी के मार्गदर्शन पर उन्होंने इसे उसी रूप में प्रकाशित

कराया। हिन्दी साहित्य जगत में आते ही अपने प्रयोगात्मक शिल्प विधान एवं गंभीर समसामयिक दृष्टि से इसने अपनी ख्याति बिखेर दी जिसके परिणामस्वरूप सन् 1998 में इस रचना को 'श्रीकांत वर्मा' पुरस्कार जो कि एक युवा पुरस्कार था तथा सन् 2001 में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। तदुपरांत विश्व की अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद किया गया। वर्तमान में यह उपन्यास हिन्दी के अतिरिक्त बंगाली, मराठी, गुजराती, उर्दू, उड़िया, तमिल जैसी भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी, इतालवी तथा स्पेनिश जैसी विदेशी भाषाओं में भी उपलब्ध है।

'कलि-कथा: वाया बाइपास' सन् 1925 में जन्में किशोर बाबू के जीवन की कथा है। सत्तर वर्ष की उम्र में भी उनकी असाधारण सतर्कता के कारण, उपन्यास में उनकी तुलना बंगाल के अस्सी पार मुख्यमंत्री ज्याति बसु से की गई है। दिल की बाइपास सर्जरी के बाद स्ट्रेचर में लेटाते वक्त किसी लोहे की वस्तु से उनके सर के पिछले हिस्से में चोट लग जाने के कारण वे विचित्र सा व्यवहार करने लगते हैं। किशोर बाबू के चरित्र के विषय में डॉ. रामचन्द्र तिवारी कहते हैं- "वे प्रायः कलकत्ता की सड़कों पर पैदल घूमते रहते हैं। कभी-कभी किसी अलक्षित व्यक्ति से बात करते रहते हैं। बातों में संगति नहीं होती। उनमें पागलपन, आत्मविस्मृति, बदहवासी, और व्यक्तित्वारोपण के लक्षण एक साथ दिखाई देते हैं। इसी मनोदशा में वे कथा कहते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसा व्यक्ति अतीत की चर्चा करते-करते वर्तमान पर आ जायगा। वर्तमान की बात के साथ अतीत को जोड़ देगा। पात्र-विशेष के संदर्भ के साथ किसी दूसरे पात्र का संदर्भ संग्रथित कर देगा। इस प्रकार कथा-लेखिका ने यथार्थ और फैंटसी को जोड़कर नये शिल्प का आविष्कार कर लिया है और किशोर बाबू की एक जिन्दगी के भीतर तीन जिन्दगियों की कथा कहने तथा कलकत्ता की कथा को कलियुग की कथा बना देने की छूट ले ली है।"[14]

किशोर बाबू अपने जीवन के किशोरावस्था में चले जाते हैं, जहाँ उनके मित्र शांतनु व अमोलक हैं। वह समय सन् 1940-47 का है अर्थात् सामाजिक और राजनीतिक रूप से भीषण उथल-पुथल का दौर। अपनी पिछली जिन्दगी के जिन यादों को किशोर बाबू बाइपास कर अपने जीवन में अब तक आगे बढ़ रहे थे, इसी बाइपास सर्जरी के दौरान वे वापस उसी जगह पहुँच जाते हैं जहाँ से कभी उन्होंने अपने जीवन की शुरूआत की थी।

उपन्यास कुल सोलह शीर्षकों में बँटा है जो कई बार अतीत की यात्रा करवाकर वापस वर्तमान में लाकर छोड़ देता है। सड़क पर पैदल चलनेवालों को तुच्छ दृष्टि से देखनेवाले किशोर बाबू बाइपास सर्जरी के बाद घंटों सड़कों पर अकेले घूमते रहते हैं और सड़क पर घटने वाली छोटी से छोटी बात पर सोचने लगते हैं। यहाँ वे अपने दादा रामविलास बाबू की दुनिया में चले

जाते हैं, जहाँ से उनके मारवाड़ी परिवार के विस्थापन की कहानी जुड़ी है। किशोर के पूर्वज दूर देश से आए पक्षियों के समान सुदूर रेगिस्तान से आकर कलकत्ता में बसे थे। किशोर बाबू के जीवन के माध्यम से राजनीति, इतिहास व समाज को उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। इसमें सन् 1943 का बंगाल का अकाल, सन् 1946 की द ग्रेट कैलकटा किलिंग, सन् 1947 का विभाजन व उसका परिणाम, आजादी के बाद जनता के टूटते सपने तथा सत्ता से मोहभंग तथा पिछले डेढ़ सौ सालों के मारवाड़ी समाज में स्त्रियों की स्थिति, विधवा-विवाह की समस्या व पाश्चात्यकरण की समस्या है। आज समाज में कितनी ही ऐसी समस्याएँ हैं, जिन्हें बाइपास किया जा रहा है।

आधुनिकीकरण के चकाचौंध व अंधानुकरण में नई पीढ़ी इतना रम चुकी है कि किशोर बाबू अपने बच्चों के बेहिसाब खर्चों से परेशान हैं कि जो पैसे वे कल कमाएँगे, उसे आज ही उधार लेकर खर्च कर दे रहे हैं। बढ़ते बाजारवाद के इस संक्रमणकाल में अमीर और अमीर होते जा रहें हैं तथा गरीब और गरीब। इसी दौर ने लोगों में दूसरों का भी अहित कर आगे बढ़ने की दौड़ व ईर्ष्या की भावना की विकृति पैदा कर दी है। उपन्यास में कई गौण पात्र माधुरी दीक्षित वाला घाघरा-चोली, सालगिरह पर ताज बंगाल में सेलीब्रेशन तथा नए फर्नीचर और गहने न मिलने के कारण आत्महत्या कर ले रही हैं। वहीं भूमंडलीकरण के दौर में पश्चिम की संस्कृति ने हमारे परखचे उड़ा दिए हैं, जिसमें डॉलर की तुलना में रुपये का दाम मात्र एक चौथाई रह गया है। अपने देश का कच्चा माल सस्ते मूल्यों में दूसरे देशों को बेचकर उन्हीं से उन तैयार मालों को ऊँचे मूल्यों में खरीदकर लोग अपनी शान समझते हैं कि वे फलाँ ब्रांड इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार की वर्तमान समस्याओं को आज बाइपास किया जा रहा है।

"'बाइपास' शब्द उपन्यास का शायद बीज शब्द है और वह इंगित करता है आज के 'युगधर्म' की ओर- जो मूल समस्याओं से बचकर बगल से सुविधाजनक रास्ते निकालने का है। उपन्यास इस युगधर्म की विडंबना को किशोर बाबू के बाइपास आपरेशन के माध्यम से उजागर करता है, जो अन्ततः उन्हें उन्हीं चीजों की ओर ले जाता है जिन्हें उन्होंने अब तक बाइपास कर रखा था। एक साथ कई शैलियों में लिखा गया यह उपन्यास अलग-अलग देश-काल में आगे-पीछे चलता पाठकों को ऐसी यात्रा के लिए आमंत्रित करता है, जिसमें वे चौंकने, रास्ता खोने और फिर उसे खोज पाने के आनंद का अनुभव करें।"[15] अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य में चक्कर लगाते किशोर बाबू अपनी कहानी लिखवाते हुए अपने समय के समाज तथा परिवार के इतिहास को पुनः टटोलते हैं जिसे उन्होंने वर्तमान जीवन से बाइपास कर रखा था।

2. शेष कादम्बरी

"अलका सरावगी का यह दूसरा उपन्यास एक सदी से दूसरी सदी तक के समय और स्मृतियों के इतिहास के तनाव से नई उत्सुकता जगाता है और साथ ही उपन्यास के परिचित ढ़ाँचे को एक बार फिर से तोड़ने की नई चुनौती भी पैदा करता है। आज के उपभोक्तावादी मूल्यों के बरक्स यह उपन्यास बीती सदी के उदारवादी मूल्यों और जीवन-संस्कृति (जिनके एक उत्स का सम्भवतः आंग्ल शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता से सम्पर्क रहा है) को रखता है, जहाँ वस्तुओं से जीवन में सौन्दर्य और लालित्य का प्रवेश था, महज लालसा का नहीं। एक भिन्न स्तर पर रूबी गुप्ता के अपने जीवन की कादम्बरी ढूँढने की प्रचेष्टा होने के कारण शेष कादम्बरी एक ऐसी औपन्यासिक कृति है जिसमें जीवन और उपन्यास आपस में गड्ड-मड्ड हो जाते हैं।''[16]

'शेष कादम्बरी' उपन्यास सन् 2004 में प्रकाशित हुआ जो कई शीर्षकों के माध्यम से कथा को जोड़े रखता है। उपन्यास की मुख्य पात्र रूबी गुप्ता उर्फ रूबी दी, अपने माता-पिता की अपने मामा-मामी से गोद ली हुई इकलौती संतान जिसे गोद लिए जाने की वजह से सदैव उपेक्षित व अपमानित किया जाता रहा तथा कभी माँ का प्यार नहीं मिलता। मुसलमान होने के कारण उसका प्रेम आदिल उसे नहीं मिला, कलकत्ता यूनिवर्सिटी से अंग्रेजी में गोल्डमेडलिस्ट, उम्र के सत्तर साल में आकर भी अपने जीने की वजह खोज रही है। सुधीर से विवाह पश्चात् जब उसने भी रूबी को नहीं समझा तो रूबी दी ने अपना जीवन बतौर सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में वासुमणि के 'गुड फ्रेंड्स सोसायटी' से शुरू कि जिसका पहला अभियान नशाखोरी को समाप्त कर समाज को नशामुक्त बनाना था। वासुमणि से उसकी पहली मुलाकात अपनी समस्या के कारण हुई थी जिसे वासुमणि ने तुरंत समझ लिया था अर्थात् 'कोई न होने की समस्या'-'आइडैनटिटी क्राइसिस'। पच्चीस साल पहले पति की मृत्यु के बाद से उसका अकेलापन छब्बीस वर्षों से 'परामर्श' जैसी संस्था के जरिए आज भी अपने अस्तित्व को तलाशने में लगा है। यहाँ वे दुनिया की सताई स्त्रियों, भटके लोगों को परामर्श देकर उन्हें उम्मीद व आत्मबल प्रदान करती है। लेकिन समाज को परामर्श देने वाली रूबी दी की दोनों बेटियों ने कभी उन्हें अपने जीवन में परामर्श देने लायक नहीं समझा।

उपन्यास कुल छब्बीस शीर्षकों में बँटा है जो अतीत और वर्तमान को जोड़े रखता है जिसमें रूबी दी प्रायः दूसरों के दुःखों को सुनते-सुनते अपने अतीत में चली जाती है और उपन्यास की कथा फ्लैश-बैक के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत होती है। इस अतीत में रूबी गुप्ता का बचपन है जिसमें वह रॉल्स-रॉयस गाड़ी में बैठकर स्कूल जाती थी। उसके कानपुर के मामा-

मामी का घर जो राजनैतिक गतिविधियों का प्रांगण था। मामाजी गाँधीजी के बहुत बड़े भक्त थे तथा आजादी की लड़ाई में कई बार जेल गए हैं, बड़े-बड़े नेता व कांग्रेस कमेटी की बैठक भी अक्सर घर पर होती थी तथा एक बार चन्द्रशेखर आजाद इसी घर में छिपे हुए थे।

मिस्टर वियेना रूबी दी के बचपन के इतिहास शिक्षक हैं जो सन् 1893 में बीस वर्ष की उम्र में 'सिविल एंड मिलिटरी गजट' में पत्रकार बनकर आए थे तथा भारत पर एक 'इंडियन पीप शो' नामक किताब लिख रहे थे। जिसमें उन्होंने अपने विभिन्न देशों व प्रांतों की यात्रा, दिल्ली के दरबारों का इतिहास, जो सन् 1830 के बाद बंगाल में बढ़ता अफीम का कारोबार, सन् 1857 का गदर, चीन में अफीम के कारण हुई दो बड़ी लड़ाईयाँ आदि की चर्चा की है।

कादम्बरी, 24 वर्षीय, कलकत्ता की हिन्दी भाषी माँ और आधे अंग्रेज तथा आधे भारतीय पिता की संतान व रूबी दी की नातिन है। वह अखबार-टी.वी. में काम करती है तथा बिना शादी के एक पत्रकार गौतम के साथ दिल्ली में अकेली रहती है और अपने को रिफ्यूजी कहती है। वह रूबी गुप्ता को नानी न कहकर रूबी दी कहती है क्योंकि नानी कहने को वह ओल्ड फैशन मानती है। वह रूबी दी को समझती है तथा चाहती है कि रूबी दी अपने जीवन पर कथा लिखे। फोन के माध्यम से बीच-बीच में कलकत्ता में रहने वाली रूबी दी की बातचीत कादम्बरी से होती रहती है जिसमें वह अपने काम की तथा दिल्ली की वर्तमान गतिविधियों के बारे में बताती है। कभी वह बाड़मेर के सूखाग्रस्त इलाके में जाती है और वहाँ की ओबिचुअरी लिखती है, तो कभी नेपाल से बम्बई आनेवाली वेश्याओं की डाक्यूमेंटरी बनाती है।

उपन्यास का पात्र गौतम वेश्याओं के अधिकारों के लिए पार्लियामेंट के सामने धरना देता हुआ दिखता है। वह सोशल वर्क नहीं बल्कि सोशल जस्टिस में विश्वास करने वाला है जो सिर्फ लिखकर छुट्टी पा लेने वालों में से नहीं बल्कि 'सोशल जस्टिस' के लिए न्याय के लिए लड़नेवालों में है।

कादम्बरी की बातें रूबी दी को अपने मामा देवीदत्त की याद दिलाती है जो इमरजेंसी के दिनों में कलकत्ता में प्रकट हुए थे। कादम्बरी देवीदत्त पर एक रपट लिख रही है जिसपर प्रेमचंद भी कोई कथा लिखना चाहते थे। उपन्यास में देवीदत्त के माध्यम से विगत सौ वर्षों के राजनीतिक इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। देवीदत्त सन् 1900 में पैदा हुए थे। दूसरी आजादी के समय उन्होंने कह दिया था कि देश को एक तीसरी आजादी की भी जरूरत पड़ेगी, फिरोज गाँधी के परिवार और गोडसे की परम्परा से मुक्त होना होगा जैसा कि अब समय आ गया है। कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशनों व गाँधीजी के विभिन्न आन्दोलनों में वे उनके साथ रहे। देश की

राजनीति को वे रंडी का मंडी कहते हैं। जिसके माध्यम से उपन्यास में इमरजेंसी की बात, अपने भूतपूर्व गुरु एम. एन. रॉय के कांग्रेस और उसका नवजात फासीवाद, मार्क्सवाद, रौलेट ऐक्ट, सन् 1919 का जालियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, यंग इंडिया के संपादन में सहायता, सन् 1965 का भारत-पाक युद्ध जैसी गतिविधियों की रूपरेखा प्रस्तुत की तथा पूर्ण आदर्श की तलाश ने उन्हें अंततः महात्मा गाँधी से वापस महात्मा गाँधी तक ला दिया।

रूबी दी की भूत और वर्तमान की स्मृतियों को जोड़ता यह उपन्यास 'छपनिया का अकाल', बंगाल का राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक परिवेश जिसमें हिन्दू-मुसलमान दंगे व विभाजन की त्रासदी, कलकत्ता शहर का अपना इतिहास, नोबल पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता किपलिंग, अपने घर पर अपनों द्वारा बलात्कार होती स्त्रियाँ, अकेलेपन के कारण आत्महत्या करता पढ़ा-लिखा वर्ग, सोशलिस्ट शीला परेरा की भारत में रहस्यमय मौत व श्रीलंका की नागरिक होने के कारण उसके लाश की दुर्गति, माया बोस के माध्यम से वेश्याओं की समस्या, लोभ के कारण अंधविश्वास की समस्या, ससुराल में शोषित होती स्त्रियाँ, मर्दों का विवाह पश्चात् अवैध संबंध, शेयर बाजार, टी.वी., विज्ञापन, नेट-सर्फिंग, मल्टीनेशनल कंपनियाँ, नई पीढ़ी में ड्रग की नशाखोरी का फैशन आदि समाज की हर समस्याओं को प्रस्तुत करता है।

सविता इस उपन्यास की एक ऐसी दुखियारी पात्र है जो अपने दुःखों को लिए 'परामर्श' में रूबी दी के पास आती है। उसके लिए रूबी दी सदैव बेचैन रहती है क्योंकि कहीं न कहीं उसका दुःख रूबी दी को अपने समान लगता जिस तिरस्कार को उन्होंने सबसे पाया था उसकी अनुभूति सविता में उन्हें होती है। इसी कारण वह सविता की देखभाल हेतु अपने घर ले आती है किन्तु परिस्थितिवश उसका पूरा साथ नहीं दे पाती जिसकी टीस उसके अंदर सदैव रहती है। उपन्यास के अंतिम अध्याय में वह अंततः अपने पुराने वसीयतनामें को खारिज कर नया वसीयतनामा लिखती है जिसमें वह कादम्बरी को समस्त संपत्ति का वारिस बनाने के साथ-साथ सविता तथा घर पर काम करनेवाली सायरा को वसीयत के पैसों का कुछ हिस्सा लिख देती है और अंततः कादम्बरी से प्रार्थना करती है कि उसकी नानी की शेष कथा वह खुद लिखे जैसा चाहे वैसा।

3. कोई बात नहीं

'कोई बात नहीं' उपन्यास अलका सरावगी का तीसरा महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसका प्रकाशन, सन् 2001 में हुआ। यह उपन्यास एक माँ के हार न मानने की जिद को लिए उसके शारीरिक रूप से कुछ अक्षम बेटे शशांक के जीवन की कदम-कदम पर दुःख की साझेदारी की

संघर्ष गाथा है। यह उपन्यास ऐसे बच्चों के प्रति दया नहीं बल्कि सम्मानपूर्वक जीवन जीने तथा समाज से अपने हक की माँग करता है जो मनुष्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है।

शशांक सत्रह साल का एक लड़का है जो अपनी शारीरिक अक्षमता के कारण दूसरों की तरह चल और बोल नहीं सकता। अपनी माँ के अथक प्रयास और अपने आप से लड़ता हुआ वह इस काबिल बनता है कि उसका दाखिला कलकत्ता शहर के सबसे पुरानी और नामी क्रिश्चियन स्कूल में होता है जहाँ दाखिला पाना कैथोलिक धर्म के बच्चों को छोड़कर बाकी धर्म के बच्चों के लिए स्वर्ग में दाखिला पाने के समान है। इस स्कूल में उसका दाखिला उसके जीवन की एक मुहर थी कि वह 'मेंटली चैलेंज्ड' नहीं है। किन्तु समाज इस मुहर को स्वीकार कर पाने में अक्षम था। शशांक को कदम-कदम पर अपने स्कूल के सहपाठियों व समाज की नजरों में मजाक का पात्र बनना पड़ता है। लाख कोशिशों के बावजूद भी उससे समानता का व्यवहार नहीं होता। इतना ही नहीं अन्य मारवाड़ी लड़के शर्मिंदगी महसूस करते कि शशांक उनकी ही तरह बंगाल में बसे प्रवासी मारवाड़ी जाति का है। भारतीय शिक्षा प्रणाली पर व्यंग्य करता यह उपन्यास कक्षा में लड़को की वर्तमान स्थिति को भी दर्शाता है कि किस प्रकार वह सम्प्रदायों व मुहल्लों की तरह बँटा है अर्थात् कक्षा में हर बच्चा अपने ही समान धर्म व जाति वाले बच्चों के साथ बैठता हुआ दिखता है पहले सारे क्रिश्चियन, फिर बंगाली और फिर मारवाड़ी।

आर्थर सरकार शशांक का एकमात्र दोस्त है वह भी इसलिए क्योंकि वह भी एंग्लो-इंडियन होने के कारण कक्षा में अन्य लड़कों से अलग है। मित्र के अतिरिक्त शशांक के जीवन में उसकी दादी, माँ, सुच्चा बाबा, जतीन दा, आरती मौसी जैसे लोग हैं जिनसे वह उनके जीवन की कुछ आत्मकथात्मक व अनात्मकथात्मक कहानियाँ सुनता है। वे कहानियाँ जो दादी के अपने जीवन के संघर्ष की हैं, आरती मौसी द्वारा दूसरों के जीवन पर लिखी कहानियाँ है, जतिन दा की कहानियाँ हैं जो कि आतंक, हिंसा और संघर्ष से घिरे लोगों के जीवन से जुड़ी हैं जिसे जानने में शशांक की बहुत दिलचस्पी है।

उपन्यास में समाज के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते पात्र हैं जो अपने जीवन में संघर्ष कर रहे हैं। शशांक अपनी अक्षमता को सामान्य करने के लिए संघर्षरत है, उसकी माँ शशांक को एक बेहतर जीवन देने में संघर्षरत है, शशांक की दादी की विगत अठ्ठाईस वर्षों की दुःख भरी कहानी है जिसका एक भी शब्द गलती से भी इधर का उधर नहीं होता और इसी दुःख में वे अपने जीवन की परिपूर्णता मानती है, उसकी आरती मौसी का जीवन संघर्ष है जिनकी कहानियाँ हमेंशा छपने से पहले वापस लौटा दी जाती हैं, जतीन दा जिनसे मिलने वह छुपकर हर रोज विक्टोरिया

मेमोरियल आता है और जिनका व्यवहार शशांक के प्रति बहुत आत्मीयता का है, वे अपने जीवन की सार्थकता अपने मन के गाँव में कहीं ढ़ूढ़ते रहते हैं।

जतीन दा की शशांक से समाज के सामान्य लोगों से अलग लोगों जैसे- वर्णसंकर जातियों, मिश्रित नस्ल के लोगों के विषय में चर्चा होती है जो समाज में अपने अस्तित्व के कारण बहुत सारी यातनाएँ झेल रहे हैं। उनके पास भी शशांक के लिए बहुत सी ऐसी कहानियाँ व पात्र हैं जिन्होंने जीवन के भयावह कष्टों को सहने के बाद भी जीवन को बचाए रखा। वह शशांक को शीर्षेन्दु के सुखमय दाम्पत्य जीवन का अपार कष्टमय जीवन में बदलने की कहानी बताता है कि एक पुलिसवाले की गलतफहमी के कारण, जो कि शीर्षेन्दु को उग्रवादी ग्रुप से जुड़ा मानकर उसके न मिलने पर उसकी पत्नी को उठा ले गया, उसे जेल में इतना मारा कि उसके शरीर का निचला हिस्सा लकवा मार गया और शीर्षेन्दु न्याय के लिए कोट-कचहरी ही करता रह गया। बीस वर्ष बाद उस पुलिसवाले को सजा भी मिली तो केवल तीन महीने की जेल। जतीन दा कहते हैं कि तुम्हारी ऐसी स्थिति का कारण बुखार का एक वायरस है लेकिन यदि तुम्हें पता चले कि इसके पीछे किसी व्यक्ति का हाथ है तो यह तुम्हारे लिए असहनीय हो जाएगा। जतिन दा की कहानियाँ शशांक के जीवन को हर बार एक नई ऊर्जा से भर देती है।

दूसरी तरफ शशांक की दादी के पास न जाने कैसी-कैसी मॉडर्न कहानियाँ और विचार हैं जिसे वे शशांक को सुनाती रहती हैं। शशांक यह महसूस करता है कि उसकी दादी और माँ की जीवनशैली में एक पीढ़ी का अंतराल होने के कारण काफी भिन्नता है। दादी को उनकी सास ने बहुत सताया था जबकि शादी और बच्चें हो जाने के बाद माँ ने वकालत की पढ़ाई शुरू की और आज लॉ फर्म में प्रमुख वकील हैं। दादी हमेशा चाहती थी कि माँ वो सब करे जो वे कभी सपने में भी नहीं देख सकती थी। लेकिन समाज में सारी स्त्रियों के जीवन में इतना बदलाव नहीं आ पाया शायद इसका कारण दादी और उसके पिता दोनों थे।

शशांक की माँ अपने बच्चे के लिए जीवन की हर परिस्थिति से लड़ती है। अकेले में उसे उस ईश्वर जैसे किसी सर्वशक्तिमान से बहुत सी शिकायतें हैं लेकिन अपने कष्टों से न खुद कमजोर पड़ती है न ही अपने बच्चे को पड़ने देती है। उसके अन्तर्मन में चलनेवाली बातों को जानने के लिए ही वह जतीन दा को उसके पास भेजती है ताकि जो बातें वह तकलीफ समझकर अपनी माँ को न बता पाता हो, वह जतिन दा से बता पाए तथा जतिन दा उसे जीवन में तमाम संघर्ष करते लोगों के विषय में बताकर जीवन को बेहतर बनाने के क्षेत्र में उसका मनोबल बढ़ाए तथा

उसके आत्मविकास में उसकी मदद करे, उसके उन सभी प्रश्नों का उत्तर दे जो वह किसी से नहीं पूछ पाता, लेकिन शशांक को इस बात का पता उपन्यास के अंत में जाकर होता है।

"'कोई बात नहीं' में अलका सरावगी ने आज के अर्थ केन्द्रित क्षयशील मूल्यों का प्रत्याख्यान करके पुनः मानवीय मूल्यों की सार्थकता पर बल दिया है। शशांक को केन्द्र में रखकर उन्होंने प्रमाणित किया है कि आज भी सरल, निश्छल, प्रेम, सहयोग और सौहार्द्र जैसे मूल्य प्रासंगिक और सार्थक हैं।"[17] अंततः आरती मौसी की कथा की समाप्ति होती है जो उन्होंने शशांक के जीवन के केवल एक हिस्से पर लिखी है तथा अपने इस अधूरेपन में परिपूर्णता को लिए हुए है। जीवन में तमाम लोगों के पास अपने-अपने दुःख हैं, केवल उसकी श्रेणियाँ ही अलग हैं, तब भी यह जीवन है जो कि बहुत अनमोल है और इसे सबको अच्छे से जीना चाहिए, इसी में जीवन की सार्थकता है।

4. एक ब्रेक के बाद

कॉरपोरेट जगत पर आधारित यह उपन्यास बाजारवाद, उपभोक्तावाद, भूमंडलीकरण तथा हमारे समाज के कम्युनिटी, कास्ट और क्लास की समस्याओं को लेकर सन् 2008 में प्रस्तुत होता है जो तीन भागों में बँटा है। एक तरफ धोखे से भरा कॉरपोरेट जगत का विशाल साम्राज्य फैल रहा है तो दूसरी ओर देश की तीस करोड़ जनता है जो सड़कों पर कुत्तों जैसा जीवन व्यतीत कर रही है। ऐसे गरीब लोगों के लिए कॉरपोरेट ठेकेदारों का यह तर्क है कि 'ट्रिकल-डाऊन इफेक्ट' का फायदा तो उनको भी अवश्य ही मिलेगा क्योंकि गंगा नीचे उतर कर समुद्र तक तो आती ही है।

उपन्यास मुख्यतः तीन पात्रों के माध्यम से कॉरपोरेट जगत का हिस्सा बने समाज के लोगों का प्रतिनिधत्व करता है। पहले 'के.वी. शंकर अय्यर' हैं जो खुद एक पूरे कॉरपोरेट जगत का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरा मल्टीनेशनल कंपनी का एक्जीक्यूटिव 'गुरुचरण राय' है जो एक सुंदर दुनिया की कल्पना करता है और प्रकृतिवादी है। तीसरे 'उपमन्यु भट्ट' हैं जो कॉरपोरेट जगत में सफलता प्राप्त करने का सपना देख रहे हैं तथा इसके पीछे भाग रहे हैं।

के.वी. शंकर अय्यर, रिटायर हो जाने के बाद भी जिनके पास नौकरियों की कोई कमी नहीं है, मानते हैं कि इंडिया के इकोनॉमिक 'बूम' अर्थात् आर्थिक छलाँग में देश की एक अरब जनता के पास खुशहाली के सपने हैं जिन्हें ये मल्टीनेशनल कम्पनियाँ भुनाकर दुनिया पर अपना शासन कर रही है। कॉरपोरेट जगत का सच को झूठ और झूठ को सच बनाने का जो मूल सिद्धांत है, के.वी. उसमें निपुण है और मानते हैं कि यही दुनिया की असली चाभी है। दुनिया के साथ

चलनेवाले के. वी. ने अपने ब्राह्मण धर्म, जनेऊ तथा पिता जैसे झमेलों से पीछा छुड़ाकर एक शूद्र बंगाली लड़की से विवाह कर लिया था।

गुरुचरण राय आजीवन विवाह नहीं करता लेकिन उसने सभी से प्रेम किया है और प्रेम पाया है। कॉरपोरेट जगत का हिस्सा होते हुए भी वह प्रकृति से जुड़ा हुआ है तथा बीच-बीच में पहाड़ों की सैर करने जाया करता है। वह आदिवासियों के जीवन में बसे सामूहिक सुख-दुःख की सुंदरता को अपने जीवन में उतारना चाहता था इसलिए भट्ट के साथ आदिवासी इलाके में संथालों के चित्र खरीदने जाता है। वहाँ वह प्रकृति की गोद में उगलते जहरीले धुएँ को देखता है जो कि सिगरेट की फैक्टरी है। उसे चिंता होती है कि रोजगार के नाम पर हमें एक कम बुरी दुनिया की ओर धक्का दिया जा रहा है।

उपमन्यु भट्ट उर्फ 'भट्ट' अच्छी नौकरी के लिए एक शहर से दूसरे शहर भटक रहे हैं उसकी इस घुमक्कड़ी से उसके घर वाले बहुत परेशान हैं। कभी-कभी वह भी गुरु के साथ सैर पर जाया करता था। बाद में जाकर अपने जीवन को स्थिर करता है और अंततः आर्ट गैलरी खोल लेता है।

दुनिया भर में रिलायंस, सत्यम, इन्फोसिस जैसे बड़े-बड़े उद्योग तथा मॉल्स जैसे बाजार खुल गए हैं जहाँ जरूरत की सभी चीजें एक ही जगह उपलब्ध है। इस प्रकार के बाजारीकरण ने छोटे-छोटे दुकानदारों तथा देश के कुटीर उद्योगों को बहुत क्षति पहुँचाई हैं। बड़े-बड़े शहरों विशेषकर दक्षिण भारत में मल्टीप्लेक्स व मल्टीनेशनल कम्पनियों की भरमार है जिनमें गाड़ियाँ, इलेक्ट्रॉनिक का पूरा बाजार खुला है। आधुनिकीकरण के दौर में 'दिल माँगे मोर' के कारण हर व्यक्ति के सपने इतने बड़े हो गए हैं कि संयुक्त परिवार का विघटन होता जा रहा है। अधिक पैसे व सुख संसाधन की प्रबल इच्छा समाज को उसके मानवीय मूल्यों से काट रही है।

उपन्यास के अंत में सबको प्रेम के एक सूत्र में बाँधने का सपना लिए 'गुरु' का झूठी और खोखली दुनिया से तंग आकर फूलों की घाटी में जाकर आत्महत्या करना भूमंडलीकरण के जाल में फँसते जा रहे पूरे समाज के भविष्य की झलक प्रस्तुत कर देता है। आत्महत्या के पश्चात् भट्ट को उसकी लिखी डायरी मिलती है जिसमें लिखा होता है कि वह खुले आसमान के नीचे प्रकृति का पूरा वैभव देखते हुए मरना चाहता है और कहता है कि यहाँ से मेरी दूसरी जीवन-यात्रा शुरू होती है जिसमें हम सब साथ रहेंगे, धरती को नष्ट होने से बचाएँगे, नफरत को खत्म कर देंगे इत्यादि।

5. जानकीदास तेजपाल मैनशन

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास सन् 2015 में प्रकाशित हुआ तथा आठ शीर्षकों के अन्तर्गत इसका विस्तार है। कलकत्ता के सेंट्रल एवेन्यू पर स्थित अस्सी परिवारों वाली 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' एक ऐसी इमारत है जो समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जिसका ढहाया जाना तय है। वह जो दुर्बल है, ताकतवर के हाथों जो हमेशा से ढहाया जाता रहा है, अब भी अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु खड़ा है। अपने बचाव के उसके अनेकों प्रयास सत्ता व प्रशासन व्यवस्था के समक्ष धरे-के-धरे रह जाते हैं।

जयगोविन्द उपन्यास का प्रमुख पात्र है जो अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् एक आत्मकथात्मक उपन्यास लिखता है जिसके पात्र का नाम उसने अपने और अपनी जीवन संगिनी दीपा के नाम पर 'जयदीप' रखा है। वर्तमान जीवन में वह ऐसे संक्रमण के दौर से गुजर रहा है जहाँ जयदीप और जयगोविन्द में अंतर कर पाना उसके लिए मुश्किल है।

जयदीप सन् 1970 के दशक में अमेरिका से सिस्टम इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर अपने देश और परिवार की उन्नति के सपने को लेकर कलकत्ता लौट आता है। जैसे कि वह और उस जैसे लोग उच्च शिक्षा प्राप्त कर इंडिया के भविष्य को बनाने के लिए विदेश में ही न बस कर वापस अपने देश आते हैं। स्वयं को अच्छा साबित करने हेतु उसकी यह वापसी समाज की नजरों में बेवकूफ व चूतिया कहलायी क्योंकि यहाँ आने पर न उसे नौकरी मिल पाई, न वह फैक्टरी चला पाया, न बैंक बैलेंस और न ही आलीशान बँगला बनवा पाया। वहीं जयदीप का बेटा रोहित अमेरिका में रहता है और हमेशा इंडिया को चिड़ियाखाना कहकर यहाँ की बुराई करता रहता है। रोहित कभी इंडिया वापस नहीं आना चाहता, खुद जयदीप की पीढ़ी के एन.आर.आई. दोस्त कभी इंडिया आना नहीं चाहते क्योंकि यहाँ की धरती 'हीट एंड डस्ट' और 'इनफेक्शन' से भरी है।

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' जयदीप के अपने जुड़ाव की भावनात्मक दुनिया है। जहाँ वह अपनी इंजीनियर पत्नी दीपा के साथ रहता है। किन्तु मेट्रो की सुरंग बनाने के रास्ते में मैनशन के आ जाने से उसका ढहाया जाना तय कर दिया गया है। सन् 1991 में जयदीप मेट्रो-पीड़ित बन्धु एसोसिएसन का प्रेसिडेन्ट बना तथा प्रशासन द्वारा ढहाए जा रहे इस इमारत को बचाने के जद्दोजहद में लगा है।

आफताब हुसैन जिसपर मर्डर के कितने ही आरोप लगे है, एक लठैत गुंडा है। उसने मकान-मालिक से पैसे लेकर जानकीदास तेजपाल मैनशन को खाली कराने का ठेका लिया है।

जयदीप इस इमारत को बचाने हेतु संघर्ष कर रहा है किन्तु वह पाता है कि पुलिस गुंडों से मिली हुई है। प्रशासन का इस प्रकार पूँजीपतियों के समर्थन में खड़ा रहना जानकीदास में रहनेवाले गरीब लोगों का न्याय व्यवस्था से मोह भंग कर देता है वैसा ही मोहभंग जैसा गरीब जनता ने आजादी के बाद महसूस किया था। सरकारी कर्मचारी और उनके बड़े-बड़े हथौड़े देखकर सब इतना सहम चुके हैं कि निरीह प्राणियों की भाँति खुद कमरा खाली कर दे रहे हैं। जिनका मनोबल जयदीप के कारण अब भी बना हुआ है, वे भी रात-रात भर इमारत पर चल रहे हथौड़े से टूटते बड़े-बड़े पत्थरों के साथ अपने टूटते मनोबल की आवाज सुन रहे हैं।

"जयगोविन्द की पीढ़ी न सिर्फ इस देश में उथल-पुथल में फँसी हुई पीढ़ी थी, बल्कि अमेरीका की 'पोस्ट-वार' पीढ़ी यानी दूसरे महायुद्ध के समय पैदा होकर जवान हुई पीढ़ी भी उनकी ही तरह व्याकुल पीढ़ी थी। उनके पास प्रश्न ही प्रश्न थे और गुस्सा इतना कि मानी हुई और जमी हुई चीजों को हिला दें और उखाड़ डाले।"[18] आजादी के पचास सालों के भीतर ही देश की अर्थव्यवस्था इतनी चरमरा गई है कि महँगाई ने आसमान छू लिया है। भारत में सत्ता-प्रतिष्ठान के खिलाफ नक्सल आन्दोलन था और अमेरीका में वियतनाम की लड़ाई के खिलाफ आन्दोलन।

कलकत्ता में रहनेवाले देवनाथ मुखर्जी, शान्तनु बनर्जी जैसे कई युवा थे जिन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी और नक्सलबाड़ी आन्दोलन से जुड़ गए। उपन्यास में वर्तमान परिस्थिति के माध्यम से नक्सलबाड़ियों पर भी एक चित्र खींचा गया है कि आखिर नक्सलवाद के जन्म का कारण क्या है। आखिर ऐसे लोग जो ताकत न होने के कारण अपना सब कुछ जब खो देते हैं तो अपने हक की लड़ाई के लिए इस प्रकार के हिंसात्मक आन्दोलनों से जुड़ जाते हैं क्योंकि उन्हें इसके अलावा और कोई उम्मीद दिखलाई नहीं पड़ती है। वास्तविक तौर पर गहराईयों में उतरकर देखा जाए तो इस प्रकार के आन्दोलनों का बीजारोपण पूँजीपति वर्ग द्वारा ही किया जाता है क्योंकि इनके पास इतने कारगर और सामर्थ्य संसाधन हैं कि ये जो चाहे वो कर सकते हैं।

देवनाथ जयगोविन्द का नक्सल दोस्त है तथा सत्ता के खिलाफ है। वह माओ-त्से-तंग का समर्थक है एवं 'नक्सलबाड़ी जिन्दाबाद', 'चारु मजूमदार जिन्दाबाद' के नारे लगाता तथा लाल रंग से शहर की दीवारों पर लिखता है। अपनी पढ़ाई छोड़कर वह आन्दोलनकारियों के साथ शामिल हो जाता है। ये दिया है देश ने युवा पीढ़ी को। उपन्यास में उत्तर-आधुनिकता का भी परचम है कि वर्तमान में सब कुछ उपलब्ध है बस उसकी कीमत चुकाने के लिए पैसे होने चाहिए। नक्सलबाड़ी आन्दोलन, वियतनाम का युद्ध, सन् 1967 में कम्युनिस्ट लीडर के. अनिरुद्ध का

संसद में दी गई चेतावनी, मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर राय का प्रशासन काल, कैपिटलिस्ट, साम्राज्यवादी व्यवस्था आदि इस उपन्यास के मुख्य बिन्दु हैं।

अंततः जयदीप की सारी कोशिशें विफल रहीं। उसे रातो-रात बिना सामान लिए जानकीदास तेजपाल मैनशन से भागना पड़ा। जानकीदास तेजपाल मैनशन का ढहना एक सभ्यता, सोच, सपने व उस उम्मीद का ढहना है, जो भारतवासियों ने कभी अपने देश से किया था। उसकी सतह के नीचे छेद करना मानवीयता और लोगों के दिलों में छेद करना है।

6. एक सच्ची-झूठी गाथा

'एक सच्ची-झूठी गाथा' उपन्यास को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत, मनोवैज्ञानिक, आधुनिकतावादी, आदि कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। इसे चरित्र-प्रधान, वार्त्तालाप, अनात्मकथात्मक, आदर्श और यथार्थ के बीच जूझते व्यक्ति की मनोदशा, समाज व परिवार द्वारा निष्कासित तथा बहिष्कृत बालक में उत्पन्न होने वाली कुंठा, उसमें हिंसात्मक प्रवृत्ति का उत्तरोत्तर विकास, किसी कौम या गुटों का मानसिक स्तर, न्याय व्यवस्था के प्रति उदासीनता, समाज में गन्दगी फैलाने वाले लागों के दमन की प्रबल इच्छा व उनके प्रति अत्यधिक क्रोध, आजादी के बाद जनता का सरकार से मोहभंग व स्त्री की असुरक्षा आदि बिन्दुओं के तहत देखा जा सकता है।

सन् 2018 में प्रकाशित इस उपन्यास की बुनावट व उसकी संरचना की बात की जाए तो यह तीन भागों में विभक्त एवं परम्परागत ढ़ाँचे से बिल्कुल अलग एक नवीन प्रयोग है। जिसमें आधुनिकता के नवीन निकष यथा ईमेल व इन्टरनेट के आभासी कक्षा-कक्ष की दुनिया है, जो दो अनजान व्यक्तियों को जोड़ता हुआ उनके बीच हुए बातचीत, विचारों व तर्कों के सम्मिश्रण को प्रस्तुत करता है। यहाँ हर घटना एक नकाब की तरह है, जो सच और झूठ के बीच कहानी को उलझाए रखता है जिससे उपन्यास में बराबर एक उत्सुकता सी बनी रहती है। उपन्यास को पढ़कर लेखिका द्वारा वर्णित यह शेक्सपीयर के मैकबेथ की जितनी याद दिलाता है, उतनी ही अज्ञेय के 'शेखर: एक जीवनी' की भी, जो एक व्यक्ति की आत्मकथा हो भी सकती है और नहीं भी, जैसी स्थितियों में हमें डाल देती है।

मूल रूप से उपन्यास में दो पात्र हैं-प्रमित और गाथा। इंटरनेट के आभासी दुनिया में मित्र बने दोनों एक दूसरे की वास्तविकता से अनजान हैं। ये दो ऐसी समानान्तर रेखाएँ हैं जिनका दुनिया को देखने का अपना-अपना दृष्टिकोण है। पात्र संरचना के तहत प्रमित के व्यक्तित्व को किसी फ्रेम में फिट नहीं किया जा सकता है। उसे गुफाओं में रहना अधिक पसंद है। उसके

विचार और जीवनशैली से कभी वह आतंकवादी, कभी नक्सल तो कभी विक्षिप्तों सा व्यवहार करता नजर आया है। प्रमित रवीन्द्रनाथ टैगोर, मार्क्स, शेक्सपीयर आदि तमाम विचारकों को पढ़ा-लिखा क्रांतिधर्मी सोच वाला व्यक्ति है जो कि पूरे उपन्यास में उद्वेलन पैदा करता है। सिस्टम को तोड़ने व उलट-पलट कर देखने का जो नजरिया है, वह पूरे तरीके से प्रमित पर है। उसकी मानसिक स्थिति सामान्य और पागलपन के बीच की लगती है, पर उसके अद्भुत तर्क गाथा को सोचने पर विवश कर देते हैं जिसका गाथा के पास कोई जवाब नहीं।

गाथा इक्कीसवीं सदी की एक प्रसिद्ध लेखिका है। उपन्यास में उसकी विचारधारा समझौतावादी व यथास्थितिवादी लगती है। वह अकेले प्रमित से मिलने बागडोगरा एयरपोर्ट चली आती है। एयरपोर्ट में बैठे-बैठे वह प्रमित का इंतजार करती है परन्तु वह नहीं आता। इसी दौरान प्रमित से हुए अपने विगत बातचीत के सिलसिले को फिर से खँगालने लगती है।

प्रमित को बहुत चिढ़ होती है ऐसे लेखकों से जो सिर्फ काल्पनिक बातें करते हैं जिन्होंने यथार्थ को कभी भोगा नहीं, उस परिस्थिति और कष्ट को कभी झेला नहीं, वह केवल अपने कमरे में बैठकर सुनी-सुनाई बातों पर अपने तर्क और विचार प्रस्तुत कर देता है। ऐसे लोग बस बिना जाने लिखते जाओ जैसी धारणा के शिकार हैं, क्योंकि इसी से ये दुनिया तुम्हें पुरस्कार देगी कि तुमने कुछ अलग सा लिखा है, भले उसका संबंध यथार्थ से कोसो दूर हो। वहीं दुनिया में फैले ऐसे लोग जो वर्षों से दबे व कुचले जाते रहे हैं, प्रमित ऐसे ही लोगों का प्रतिनिधि है।

प्रमित बार-बार कहता है कि बन्दूकों से दुनिया बदली जा सकती है क्योंकि समाज, देश व दुनिया में जो कुछ भी चल रहा है, वह उसे स्वीकार्य नहीं। उसके क्रोध और आक्रोश का कारण उसकी परवरिश से जुड़ा है जिसने अकेलेपन के अलावा उसे कुछ न दिया। माता-पिता के स्नेह को तरसता हुआ वह रशियन, जर्मन, इंडियन, ट्राइबल आदि माँओं की गोद में फेंका गया। रंग-भेद के कारण उसकी राष्ट्रीयता भी संकट में पड़ गई। उसे हमेशा इस बात की टीस होती है कि वह एक अवैध संतान है तथा उसे मुफलिस बच्चों के लिए बने स्कूल में भर्ती कर दिया गया जहाँ आवारा, भगोड़े किशोर पढ़ते थे तथा जहाँ छोटे लड़कों का यौन शोषण भी होता था। बड़े होने पर भी जिसे अपनी राष्ट्रीयता बचाने हेतु जद्दोजहद करनी पड़े, जिसे अन्य बालकों की तरह सामान्य जीवन ही न मिला हो, भला उस बालक का मानसिक संतुलन सामान्य कैसे रह सकता है। उसके अन्दर की इसी कुंठा ने बगावत का रूप ले लिया था। कई दृष्टियों से यह उपन्यास हिंसा व आतंकवाद की समस्या, नस्ल की समस्या, समाज, राजनीति आदि वर्तमान ज्वलंत मुद्दों को लेकर प्रमित सान्याल और गाथा के वैचारिक संघर्ष के माध्यम से एक लम्बी

बहस के साथ ही दुनिया में टेक्नोलॉजी के बढ़ते प्रभाव जो कि सच और झूठ के सम्मिश्रण की दुनिया है इसे किस्सागोई के माध्यम से समेटने की कोशिश करता है।

अलका सरावगी की रचना प्रक्रिया स्वतंत्र उड़ानों से भरी एक प्रायोगिक भ्रमण है जिसके प्रारूप को खाकों में फिट करना मुश्किल है। अलका जी का मानना है कि एक अच्छा लेखक पाठकों का केवल मानस बनाता है जिससे समाज को सही दिशा मिल सके। उनके विभिन्न उपन्यास अपने समय व समाज का खुला दस्तावेज प्रस्तुत करता है। अज्ञात से ज्ञात तथ्य, परम्परा व आधुनिकता तथा जीवन के अनेक पहलुओं को उनकी रचना दृष्टि के माध्यम से देखा एवं समझा जा सकता है।

7. कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए

विभाजन और विस्थापन की दर्दनाक अमानवीय परिस्थितियों को दर्शाता हुआ अलका सरावगी का उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' सन् 2020 में हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। लेखिका ने एक आम आदमी कुलभूषण की जीवनगाथा के माध्यम से उन सभी पन्नों को उकेरा है जो ईस्ट पाकिस्तान से भागकर आ रहे लाखों की तादाद में शरणार्थियों के भयानक कष्टप्रद गाथा को बयां करता है। मार-काट व हिंसा का गोरखधंधा हमेशा से हमारे समाज व हमारे अपनों का नाश करता आया है। कभी सम्प्रदाय, कभी धर्म तो कभी राष्ट्र के नाम पर खेला जा रहा सत्ता का खेल हमारी सभ्यता का हिस्सा बन गया है जिसमें सबसे अधिक आम निर्दोष जनता पिसती है। पग-पग पर इसी जनता की पीड़ा को यथार्थ के धरातल पर व्यक्त किया गया है। पूर्वी पाकिस्तान से आए हिन्दू शरणार्थियों पर किताब लिखनेवाले एक पत्रकार से कुलभूषण के संवाद के दौरान विस्थापन की उन भयावह परिस्थितियों की आँखों देखी कहानी बतालाई जा रही थी जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

अध्याय सारांश

बीसवीं सदी के अंतिम दशक की प्रसिद्ध महिला उपन्यासकार श्रीमती अलका सरावगी का जन्म स्वतंत्र भारत के बंगाल प्रान्त के कोलकाता शहर में एक मध्यम वर्गीय मारवाड़ी व्यापारी परिवार में नवम्बर, सन् 1960 को हुआ था। इसमें कोई दो राय नहीं है कि अलका जी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है। उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास से ही इस बात को प्रमाणित कर दिया था। 'कलि कथा: वाया बाइपास' उपन्यास को साहित्य अकादमी और श्रीकांत वर्मा पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके बाद आए उनके दूसरे उपन्यास 'शेष कादम्बरी' को भी के.के.बिरला फाउन्डेशन के बिहारी पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् 1998 से लेकर आज तक 20 वर्षों में उनके दो कहानी-

संग्रह, आठ उपन्यास और अन्य कई लेख लिखे है। अपनी विशिष्ट लेखन-शैली की वजह से अलका जी ने अपनी एक अलग पहचान हिन्दी साहित्य में बना ली है। इसके अलावा अलका जी के व्यक्तित्व में गाँधीवादी विचारों का प्रभाव, ईश्वर के प्रति आस्था, प्रकृति प्रेम, नारी मुक्ति की आकांक्षा, सामाजिक दायित्वता आदि और भी गुण मिलते हैं, जिनका परिचय उनकी समग्र रचनाओं में मिलता है। अलका जी में विविध प्रकार के गुण होकर भी वे अपने जीवन को साधारण और सार्वजनिक मानती है।

संदर्भ:

1. सरावगी, अलका. 2005. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पहली आवृत्ति, अपनी बात, पृ0 60
2. सरावगी, अलका. दिनांक 18.02.2019. साक्षात्कार के दौरान हुई बातचीत, कोलकाता
3. सं0 राजकिशोर. आवृत्ति 2014. स्त्री के लिए जगह. अपनी बेटी के लिए- अलका सरावगी. वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण, पृ0 143
4. सं0 राजकिशोर. आवृत्ति 2014. स्त्री के लिए जगह. अपनी बेटी के लिए- अलका सरावगी. वाणी प्रकाशन, तृतीय संस्करण, पृ0 143
5. सरावगी, अलका. दिनांक 18.02.2019. साक्षात्कार के दौरान हुई बातचीत, कोलकाता
6. सरावगी, अलका. दिनांक 18.02.2019. साक्षात्कार के दौरान हुई बातचीत, कोलकाता
7. सरावगी, अलका. दिनांक 18.02.2019. साक्षात्कार के दौरान हुई बातचीत, कोलकाता
8. सरावगी, अलका. दिनांक 18.02.2019. साक्षात्कार के दौरान हुई बातचीत, कोलकाता
9. सरावगी, अलका. दिनांक 18.02.2019. साक्षात्कार के दौरान हुई बातचीत, कोलकाता
10. सरावगी, अलका. दिनांक 18.02.2019. साक्षात्कार के दौरान हुई बातचीत, कोलकाता
11. सरावगी, अलका. 2005. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पहली आवृत्ति, अपनी बात, पृ0 vi
12. सरावगी, अलका. दिनांक 18.02.2019. साक्षात्कार के दौरान हुई बातचीत, कोलकाता
13. सरावगी, अलका. 2005. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पहली आवृत्ति, अपनी बात, पृ0 vi

14. डॉ0 तिवारी, रामचन्द्र. 2014. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, नवम् संस्करण, पृ0 284

15. सरावगी, अलका. 2015. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, छठा संस्करण, उपन्यास के आवरण पृष्ठ से

16. सरावगी, अलका. 2016. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, उपन्यास के आवरण पृष्ठ से

17. डॉ0 तिवारी, रामचन्द्र. 2014. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, नवम् संस्करण, पृ0 286

18. सरावगी, अलका. 2015. जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृ0 90-91

द्वितीय अध्याय

हिन्दी के महिला रचनाकार एवं अलका सरावगी

द्वितीय अध्याय

हिन्दी के महिला रचनाकार एवं अलका सरावगी

2.1 भूमिका

साहित्य में विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय है। जीवन के उत्कृष्ट अनुभव और चिन्तन से ही साहित्य का निर्माण होता है। यह मानव चेतना की अभिव्यक्ति करता है। मानव जिज्ञासु प्रवृत्ति का प्राणी है। सृष्टि के आदिकाल से ही अपनी इसी प्रवृत्ति को शान्त करने के लिए परस्पर विचार-विनियम करता आया है। जब कोई वर्णन विशेष किसी असाधारण जिज्ञासा को शान्त करता eहै तो वह कथा-साहित्य की संज्ञा ग्रहण कर लेता है। अवकाश के समय में सहसा उठने वाली जिज्ञासाओं का समाधान जिस सुरुचिपूर्ण तथा मनोरंजक विषयों द्वारा हुआ होगा उन विषयों ने कथा-साहित्य की सृष्टि में योगदान दिया होगा। कालान्तर में उन्होंने मानवीय अनुभवों को अपना परिवेश बनाया होगा जिन्होंने कई रूपों में गतिशील मानव की जिज्ञासापूर्ण मनः स्थिति की तुष्टि की होगी।

कहानीकार भी एक सामाजिक प्राणी होता है। वह अन्य लोगों से अपेक्षाकृत मस्तिष्क से जीवन की घटनाओं का अधिक निरीक्षण करता है। उन्हीं में से कोई संवेदनशील घटना को चुन लेता है और सशक्त शब्दों की सूक्ष्मता एवं कौशल के साथ उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करता है। इसके अतिरिक्त कहानीकार को कहानी का अप्रतिम रूप प्रदान करने के लिए अनेकानेक उपकरण जुटाने पड़ते हैं और उन्हीं का शिल्प में समाहार हो जाता है। वास्तव में यह विभिन्न उपकरण ही कहानी के तत्व होते हैं जिनका समानुपातिक प्रयोग रचना को जन्म देता है। कहानीकार कभी इन तत्वों को ध्यान में रखकर किसी कहानी की सृष्टि नहीं करता वरन इनका समाहार श्रेष्ठ कहानी में स्वयमेव हो जाता है।

कहानी यथार्थ जीवन की प्रतिच्छाया होती है। इसके लिए कोई निश्चित नियम बना लेना सरल नहीं है। भाषा की प्रकृति ही ऐसी है कि मानव-मन की भावनाओं की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप से हो जाती है। भाषा किसी भी नियम की अपेक्षा नहीं रखती फिर भी श्रेष्ठ कहानियों के आधार पर आचार्यों ने कहानी के शिल्प का निर्धारण कर लिया जो न्यूनाधिक रूप से सभी कहानियों में उपलब्ध होता है।

कहानी शब्दों में लिखी जरूर जाती है पर अपने आस-पास वह जगह भी छोड़ती चलती है जिसे लेखक कल्पना और समय के अनुरूप भर सकता है। इस तरह कहानी लिखे जाने के साथ उस उत्तर जीवन में प्रवेश कर जाती है, जिसके बाद वह लेखक तक सीमित नहीं रहती है, बल्कि पाठक के अपने विकसित होते अनुभव जगत का भी हिस्सा बन जाती है। कहानी मानव सभ्यता के आदिकाल से ही मनुष्य की एक सामाजिक आवश्यकता है जो आज भी बनी हुई है और तब तक बनी रहेगी, जब तक मनुष्य और समाज का अस्तित्व रहेगा। साहित्य की जो विधाएँ किसी सामाजिक जरूरत को पूरा करती है, वे कभी नहीं मरती, बल्कि समाज बदलने के साथ-साथ वे भी बदलती है और नये रूप को धारण करती है।

साहित्य जो भी अभिव्यक्त करता है उसमें रचनाकार का लिंग भेद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव छोड़ जाता है। आज के युग में विश्व की किसी भी भाषा को देख ले उसके साहित्य में नारी विषयक दृष्टि पुरुष और नारी रचनाकार के कारण दिखायी देती है। हिन्दी के कथा-साहित्य में भी यही बात देखने को मिलती है। समकालीन कहानीकार नारी को जिस प्रकार से चित्रित करते हैं, महिला लेखिकाओं ने उससे सर्वथा भिन्न दृष्टि प्रस्तुत की है।

स्त्री की दैहिक स्वाधीनता और कतिपय सामाजिक स्वाधीनता के प्रश्नों को लेकर कहानियों का जो दौर चला उसने महिला मुक्ति के आन्दोलनों का एक लम्बा इतिहास रचा। "प्रारम्भिक दौर में नारी शोषण के विरुद्ध छेड़े गये अभियानों की बागडोर कुछ ऐसे पुरुषों ने ही संभाली जिनके मन में महिलाओं की दयनीय स्थिति के प्रति सहानुभूति थी। महिला मुख्य रूप से आश्रित ही रही। फिर महिलाओं ने यह तय किया कि नारी आन्दोलनों की बागडोर जब तक पुरुषों के हाथ में रहेगी, आन्दोलन में तेजी नहीं आ पायेगी। उन्होंने निर्णय लिया कि अपने अधिकारों के लिए खुद संघर्ष करना होगा।"[1]

महिला कथाकारों की कहानियाँ स्त्री विमर्श में निहित 'निजानुभव के वैशिष्ट्य' पर जोर देकर तमाम सार्वकालिक विमर्शों को चुनौती देना चाहती हैं। बदलते युग के बदलते संदर्भो की दृष्टि से आज कथा-साहित्य में एक नया कथ्य जुड़ा है। आज कहानी के केन्द्र में नारी है। इन कहानियों के सन्दर्भ स्त्री आन्दोलनों से प्रेरित विभिन्न स्तरों पर किये जाने वाले संघर्षों के बीच उठती हुई आज की नारी के इर्द-गिर्द घूमती है। मुक्ति अस्मिता की तलाश के साथ-साथ नारी जीवन की अनेक समस्याओं को विभिन्न कोणों से उठाती है। विद्रोह शब्द को बड़ी बारीकी से समझती है तथा विद्रोह, त्याग, विश्वास, जैसी मान्यताओं को विशिष्टता प्रदान करती है।

पुरुष वर्चस्व प्रधान भारतीय समाज में महिलाओं ने अपनी अस्मिता की पहचान संघर्ष द्वारा स्वयं बनायी है। तमाम अवरोधों के बावजूद भी महिला साहित्यकारों ने साहित्य में अपना स्थान बना लिया है लेकिन महिला लेखन में कुछ सीमाएँ पायी जाती हैं। अभिजात और कुछ मध्यम वर्गीय नारियों की भावुकता और कल्पनाशीलता उनकी अभिव्यंजना को बाधित करता है। "जब तक स्त्री स्वयं को, अपने समाज को, अपनी निजी विशिष्टताओं के संदर्भ को अधिक गहराई से अभिव्यक्ति नहीं करेगी, तब तक वह पितृसत्ता की नकल में इस अन्धी दौड़ और उससे पैदा होने वाली तमाम विकृतियों के प्रतिरोध में एक वास्तविक शक्ति का विकास नहीं कर पायेगी।"[2]

हिन्दी साहित्य में जब महिला लेखन का प्रचलन हुआ तो लेखन दो खेमों अर्थात महिला और पुरुष में बँट गया। महिलाओं की अनुभूतियाँ भी पुरुषों के समान ही है इसलिए उनके लेखन को भिन्न न मानकर मुख्यधारा के साहित्य में देखा परखा जाना उचित है। "अक्सर महिला कथाकारों के लेखन पर नारी गंध का आरोप लगाया जाता है यह आरोप उनके खिलाफ सोची समझी साजिश है। खुशी की बात यह है कि महिला कथाकारों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। महिलाओं का गत एक दशक का लेखन स्वयं ही इस बात का प्रमाण है कि महिलाएँ भी यथार्थ के ठोस जमीन पर खड़ी है।"[3] चित्रा मुद्गल की इस समर्थनवादी वाणी से यह स्पष्ट है कि आज महिला लेखिकाएँ पुरुषों के घेरे बन्दी को नकार कर साहित्य में अपना स्थान बना चुकी हैं। आज की कहानी साहित्य में उनका उतना ही योगदान है जितना कि पुरुष लेखकों का है।

सृजनात्मक शक्ति का उद्भव जीवन से जुड़े रह कर ही सम्भव है। नारी को अपने नारीत्व की बलि नहीं देनी है, बल्कि अपने को गढ़ना है और अस्तित्व बोध में सम्पूर्णता लानी है। सीमित दायरे में ही एक सुन्दर रचना प्रस्फुटित हो सकती है। "स्त्री के अन्तर्मन की बातें महिलाएँ जिस गहराई, प्रमाणिकता और विश्वसनीयता से लिख सकती हैं, पुरुष कथाकार स्त्री के मन पर खुद को प्रतिरोपित कर देने के खतरे से बच नहीं सकते।"[4] साहित्य समाज के लिए उपयोगी होता है अतः उसे स्त्री या पुरुष की दृष्टि से नहीं वरन् समाज की आवश्यकता की दृष्टि से भी देखा जाना चाहिए। "इधर महिला लेखिकाओं की ओर से यह आग्रह बार-बार किया जा रहा है कि उसके लेखन को जनाना या मर्दाना कह कर न अलगाया जाये। लेखक सिर्फ लेखक ही होता है। उसके साथ महिला विश्लेषण लगाते ही हम उसे एक वर्ग में डाल देते हैं जहाँ उसका लेखन कुछ ऐसा ही, सा हो जाता है और लिहाज और प्रोत्साहन से देखे जाने वाली वस्तु की गंध देने लगता है। पुरुष लेखन का अर्थ होता है वयस्क, गम्भीर, विकासशील, और मुक्त....महिला लेखन में ध्वनि है

कि वहाँ यह सब नहीं है साथ ही पुरुषों की ओर से एक सरपरस्ती की अदा खुद ऊँचा होने का विनम्र दम।......यह विभाजन षड़यन्त्र है।"[5]

'महिला कहानी-लेखन और आगे की बहस' में डॉ0 पुष्पपाल सिंह ने इस धारणा से असहमति व्यक्त की है कि महिला लेखन दूसरे दर्जे का होता है। "इस सीमित अनुभव वृत्त का विशिष्ट अनुभव क्षेत्र का लेखन के प्रश्न को लेकर, इन दो लेखिकाओं (राजी सेठ, अनीता देसाई) के अतिरिक्त और कोई भी लेखिका नहीं आयी जो इस बात से स्वस्थ रूप से अलग हो सकती है। अधिकाँश कथाकारों एवम् महिला आलोचकों को इस शब्द और वर्ग विभाजन से सख्त चिढ़ है।"[6] ऊषा प्रियंवदा, चित्रा मुद्गल, मृणाल पाण्डे प्रायः सभी लेखिकाएँ इस विभाजन को नकारती है और उसे बेमानी मानती है। यदि पुरुष लेखन का और महिला लेखन का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो यह देख सकते हैं कि लेखिकाओं का रचनाकर्म भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

महिला कहानीकारों की शिल्प-शैली आज पुरुष लेखकों से बहुत भिन्न नहीं है। बहुत सी लेखिकाएँ बड़ी बेबाकी से लिखती है, किन्तु लेखक हो या लेखिका यथार्थ सिर्फ यथार्थ होता है। यदि इस बात का ध्यान रखें तो उनके लेखन में सार्थकता स्वतः ही आ जायेगी। भाषा सिर्फ मर्दों की बपौती नहीं है। उस पर स्त्री का भी अधिकार है। महिला कथाकारों को अपनी भाषा खोजनी है। आज उनको इतना साहस लाना है कि वह अपनी आवाज बुलन्द कर सके। जीवन की शाश्वत समस्याओं ने जो कि एक नवीन रूप धारण किया है उनका निराकरण कर सके और इन नवीन समस्याओं के प्रति विद्रोह दर्ज कर सके। "लेकिन सार्थक विद्रोह वही है जो नये मूल्यों की सृष्टि करता है, समग्र जीवन की नयी सृष्टि करता है। इस देश में यह काम बहुत बड़ा है, और बहुत टेढ़ा है। क्योंकि देश बहुत विशाल है और अनेक जातियों, धर्मों, संप्रदायों और भाषाओं में बँटा हुआ है, उसकी संस्कृति जितनी प्राचीन है, उसकी वर्तमान अशिक्षा उतनी ही विराट।"[7] समस्याओं के प्रति विद्रोह का स्वर फूँकने के लिये इन सबका एकजुट होना आवश्यक है।

नारी दो पाटो के बीच वर्षों से पिसती रही है और आज भी उसका शोषण नहीं रुका है, हाँ शोषण का स्वरूप जरूर बदल गया है। डॉ0 रणवीर रांगा ने संघर्षरत आधुनिक नारी के लिए लिखा है- ''यह प्रकट है कि नारी इतनी निरीह नहीं रही है कि अपने शोषण का बदला न ले सके। उसकी विवशता का लाभ उठा कर पुरुष उसे वासनापूर्ति के लिए विनाश के मार्ग पर ले जाता है तो द्रुत गति से उस ओर बढ़ती हुई, वह असंख्य पुरुषों को भी विनाश के गर्त में धकेलकर कितने ही परिवारों को नष्ट करके समाज से बदला ले लेती है।"[8] बदलते सामाजिक संदर्भ को चित्रित करने वाली कहानियों में आधुनिक समाज में नारी के शोषित और एकाकी जीवन का

प्रचलन मिलता है। लेखिकाएँ यह मानती हैं कि इसके लिए समाज में महिलाओं के प्रति नये दृष्टिकोण की आवश्यकता है और आज की रचना महिलाओं के प्रति हो रहे अन्याय को प्रकट करे।

पिछले दशकों के दौरान असमर्थता को दूर करने, लिंग-न्याय को स्थापित करने तथा महिलाओं द्वारा झेली जाने वाली समस्याओें पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए बुद्धिजीवियों के द्वारा प्रयास किया गया और समय-समय पर इन समस्याओं का मूल्यांकन भी किया गया। लिंग विभाजन के बुनियादी प्रश्न पर आक्षेप करते हुए 'स्त्री-पुरुष कुछ पुनर्विचार' में राज किशोर लिखते है- "स्त्री, पुरुष के कृत्रिम विभाजन ने मनुष्य को किस हद तक आक्रांत किया है इसका दिलचस्प उदाहरण है ईश्वर के बारे में मनुष्य की कल्पना का स्वरूप। अधिकांश धर्मों में ईश्वर की कल्पना पुरुष के रूप में की गयी है।"[9] जिस दिन पुरुष और महिला के बीच में पाई जाने वाली असमानताएँ मिट जायेगी उस दिन स्त्री और पुरुष जैसी पृथक भावनाएँ समाज में नहीं रहेगी। तब सम्भवतः हिन्दी साहित्य क्षेत्र में स्त्री और पुरुष का भेद पूर्ण रूप से मिट जायेगा जिसके फलस्वरूप एक नये दृष्टिकोण और नये समाज का निर्माण होगा।

पुरुष प्रधान समाज के द्वारा नानाविध अत्याचारों के प्रति विद्रोह नारी अब दर्ज कर रही है। आज की हिन्दी कहानी साहित्य में परम्परा के प्रति विद्रोह को बहुत गम्भीर ढ़ंग से अभिव्यक्त कर स्त्री कहानीकार अपना दायित्व निभा रही है। विद्रोह सवालों के रूप में अब सामने आने लगा है, जिसे कई प्रकार से स्त्री पात्र पूछ रही हैं तथा लेखिकाएँ कथानक और विश्लेषण के माध्यम से क्रियात्मक रूप देती नजर आ रही हैं। समाज की रूढ़िगत मान्यताओं के प्रति विद्रोह कोई अपराध नहीं है, बल्कि इस प्रक्रिया को साहस, न्यायप्रियता और मनुष्यता से जोड़कर देखा जाना चाहिए। "यदि कोई स्त्री अपने दुःख, दैन्य, दुर्दशा को दूर करना चाहती है, धर्म समाज और राष्ट्र के अभद्र नियमों के खिलाफ डटकर खड़ी होना चाहती है, हेय ठहराने वाली सभी प्रथाओं-व्यवस्थाओं का विरोध करके अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगती है, तो समाज के 'भद्र पुरूष' उसे 'नष्ट लड़की' करार कर देते है। ठीक भी है, स्त्री के 'मुक्त होने' की पहली शर्त है- नष्ट होना। 'नष्ट' हुए बिना इस समाज के नागपाश से किसी भी स्त्री को मुक्ति नहीं मिल सकती। वही स्त्री सचमुच सुखी और प्रबुद्ध इन्सान है, जिसे लोग 'नष्ट' अथवा 'बदनाम' कहते हैं।"[10]

महिलाओं ने जब स्वयं लेखनी उठायी तो उन्होंने पुरुष को धीरे-धीरे अपनी स्थिति और विचार धारा से परिचित कराना अनिवार्य समझा। जहाँ भी अन्याय देखा, वहाँ "उन्होंने पुरुषों की कुत्सित भावनाओं को बीच चौराहे नंगा किया। यहाँ तक कि उन्होंने स्त्री के शोषण में सहभागिनी

बनती स्त्री को भी नहीं छोड़ा। समकालीन लेखिकाओं ने एक ऐसे समाज की परिकल्पना को व्यवहारिक रूप देने का निश्चय कर लिया जान पड़ता है जिसमें स्त्री वर्ग को कभी दुःखी नहीं होना पड़ेगा।"[11] कितनी ही ऐसी मान्यताएँ हैं, जिनके कुत्सित व अप्रासंगिक रूप को लेखिकाएँ तोड़ती है। यह आज के युग की मांग है ''माँ तुम्हारा जमाना लद गया। सोचती हूँ कि एक ऐसा नारी दल तैयार किया जाये जो मर्द को नारी बना दे। उसके होश ठिकाने लगा दे। मैं अखिलेश जैसों की हड्डियाँ मरोड़ दूँगी। अब तो नारी पुरुष की इच्छा का भक्षण है। फिर नारी नारी की इच्छा सुप्रीम होगी। नर विवश-सा हड्डी के टुकड़े को तरसेगा"[12] विद्रोह की यह भावना लेखिकाओं में एक विद्रोही दृष्टिकोण को जन्म देती है। महिला कथाकारों के इस दृष्टिकोण द्वारा हम यह समझ पा रहे हैं कि समाज में जितनी समस्याएँ हैं, अभाव, शोषण व अत्याचार है - उन सब की उपभोक्ता प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से स्त्री ही अधिकतर होती है। परम्पराएँ धर्म, दंगें, व्यवसाय, विवाद आदि का प्रभाव नारी पर ही पड़ता है। फलतः उन्होंने कथा-साहित्य द्वारा अपने दृष्टिकोण, अपनी विद्रोहाभिव्यक्ति रूपों को स्वयं प्रकट करना चाहा है। इनकी कहानियों में पति द्वारा प्रताड़ित की जा रही, उपेक्षित हो रही पत्नियों के संघर्ष, अंतर्द्वंद, विवशता कथानक बनकर आये हैं। शिक्षित समाज में आज वह पुरुष के मिथ्याभिमान एवम् अहम् के आगे गिड़गिड़ाती हुई दिख रही है। पुरुष की क्रूरताएँ, वर्जनाएँ, विलासिता आज भी उसके व्यक्तित्व को कुंठित कर रही है। स्वार्थ और अवसरवादिता ने पति को पत्नी की नजर में बहुत बौना होते देखा है और पति के इस बौने रूप को कई कथाकारों की कहानियों ने प्रस्तुत किया है।

समाज में प्रचलित सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ना और उनसे मुक्ति पाना प्रत्येक नारी की आकांक्षा है, जिसके चलते परम्पराओं पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह प्रहार भी करती है, लेकिन समाज की वर्षों पुरानी प्रथाओं में सेंध लगाना उसके लिए इतना आसान नहीं है। 'अज्ञेय' के निबन्ध 'हमारे समाज में नारी' में चर्चा की गई है कि- "स्त्री अपने आप में कुछ नहीं, उसके लिए कर्मो और कर्तव्यों का एक समूह है। उसका अपना व्यक्तित्व कुछ नहीं है, एक रोल है जो इस दृष्टि से निर्धारित होता है और क्योंकि यह पुरुष समाज बड़ी आसानी से नारी के व्यक्तित्व की सत्ता को ही नकार जाता है इसलिए आज उस कथित पूजा-भाव का भी कोई अर्थ नहीं रहता।"[13]

समाज शब्द बाण से स्त्री को घायल करता रहा है। युगों से नारी उपेक्षित दलित और पीड़ित रही है। समाज की कुप्रथाओं ने नारी को जकड़ रखा था। इन कुप्रथाओं में दहेज प्रथा का शीर्ष स्थान है। तसलीमा नसरीन के शब्दों में कहे तो- "शादी नामक अनुष्ठान स्त्री के विक्रय की

पद्धति है। दहेज का आदान-प्रदान, देन मोहर के बदले में शादी। यानी इन्सान को इन्सान के साथ सम्पर्क से ज्यादा रूपये पैसे के जरिए स्त्री की खरीद-फरोख्त का काम होता है"[14] समकालीन कहानी लेखिकाएँ सामाजिक रूढ़ियों की इस लड़ाई का समर्थन करती है। नारी के लिए समाज द्वारा निर्मित नैतिक मूल्यों में बँधे रहने का जिम्मेदार वह महिलाओं को ही मानती हैं और इस कारण वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित नहीं कर पाई है। यदि एक आलोचक के शब्दों पर ध्यान दिया जाये तो- "स्त्री सेक्स और सामाजिक ढ़ाँचे में विद्रोह करने और अपने अस्तित्व की स्वतन्त्र स्थिति प्रमाणित करने के बावजूद 'समर्पिता' की मुद्रा से नहीं उबर पायी है- सारे आधुनिक आयोजन और पूरी-पूरी बौद्धिक खुराक के होते हुए भी, वह आत्मसर्मपण-परायण भारतीय नारी की पराम्परा को अपने रक्त में ढ़ोए जा रही है।"[15]

2.2 हिन्दी की महिला कहानीकार एवं अलका सरावगी

समाज नारी के लिए एक निश्चित नियमावली तैयार करता है जिसका उल्लंघन करने पर वह प्रताड़ित और पीड़ित की जाती है। महिला लेखिकाओं ने अपने साहित्य में इस कटुता, पीड़ा की भावनाओं में जकड़ी नारी का वर्णन किया है तथा दबी हुई स्त्री के मनोविज्ञान की व्याख्या से लेकर यथार्थपरक भोगे हुए सच को बड़ी सूक्ष्मता से व्यक्त किया है। लेखिकाएँ यथार्थ के प्रति समर्पित रही है और उनके युग बोध की अभिव्यक्ति में पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। वे कथा चेतना की अनुभूति में सामान्य से संलग्न होती हुई भी विशिष्ट और पृथक है। समसामयिक होते हुए भी ये लेखिकाएँ अपने कथ्य, शिल्प, दृष्टि के स्तर पर भिन्न-भिन्न हैं अर्थात कोई समाज की धड़कनों को सुनती है तो कोई जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती है। इन सभी लेखिकाओं की कहानियों में जो परिवर्तन आया है वह समाज का आईना दिखाता है। विभिन्न संदर्भों, कथ्यों को रूप देने वाली प्रमुख लेखिकाओं की सूची अपेक्षित है। मन्नू भण्डारी, ऊषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, दीप्ति खण्ड़ेलवाल, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, शशिप्रभा शास्त्री, सूर्यबाला, चित्रा मुद्गल, मृणाल पाण्डे, नासिरा शर्मा, निरूपमा सेवती, मेहरुन्निशा परवेज, मणिका मोहनी, मंजुल भगत, तथा अन्य नाम प्रकाशित और प्रतिष्ठित हुए।

मन्नू भण्डारी की बहुचर्चित कहानी 'यही सच है' त्रिकोण प्रेम की कहानी है। 'एक प्लेट सैलाब' आज के तनाव को पूरी तरह आंकती है। ऊषा प्रियंवदा की कहानी कला में जीवन की उदासी और करुणा के स्वर फूटते है। इनकी कहानी बौद्धिक विकास और कलात्मक परिवेश का परिचय देती है। 'कोई दूसरा' और 'कितना बड़ा झूठ' इनकी चर्चित कहानियाँ है।

कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' परम्परावादी परिवार में घिरी एक युवती की कथा है जिसमें मित्रो के लिए कहा गया है कि वह सिर्फ मांस की बनी एक देह है जिसमें स्नेह और ममता है। दीप्ति खण्डेलवाल की कहानियों को पढ़कर ऐसा लगता है कि उनकी कहानियाँ एक महाकाव्य है और नारी जीवन की विडम्बनाओं का संसार है। दीप्ति के स्वयं के शब्दों में "मूल स्वर कवि का था। जीवन की उठापटक में कविता के कोमल स्वर तो अचेत हो गए, किन्तु कहानी ने इस उठापटक के रूबरू खड़े निर्मम यथार्थ को चुनौती के रूप में ग्रहण कर लिया।"[16]

मृदुला गर्ग की कहानियों ने मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को विभिन्न कोणों से स्पर्श किया है। इनकी कहानियाँ नारी जीवन को एक मूर्त ट्रेजेडी के रूप में प्रस्तुत करती है। 'हरी बिन्दी' की नायिका पति (राजन) की अनुपस्थिति में खुद को इतना स्वतन्त्र महसूस करती है कि वह उस दिन को यूँ ही नहीं जाने देती पूरा दिन वह सब कुछ करती है जो उसने पहले कभी नहीं किया। यह कहानी मानसिक रूप से स्वतन्त्रता की चाह रखने वाली नारी की कहानी है।

ममता कालिया की कहानियों में प्रमुख कहानी 'अकेले और अकेले' है जो कि प्रेम पर लिखी गई कहानी है। 'एक अदद औरत' 15 कहानियों का संग्रह है, जो किसी न किसी औरत को केन्द्र में रखकर बुनी गई है। ये कहानियाँ बनते बिगड़ते सम्बन्धों की कहानियाँ है जिसमें नारी की पहचान कहीं खो गयी है। "ममता कालिया ने इन कहानियों को महिलावादी क्रोधी भंगिमा में नहीं रचा, न ही इसमें औरत के प्रति अबोध आकुलता है। ये गुस्से और भावुकता से पृथक निर्भय और निस्संग तरीके से यथार्थ को हाजिर करती है वस्तुतः इनकी कहानियाँ नारीवादी न होकर नारी के यथार्थ की रचनाएँ हैं।"[17]

मंजुल भगत की 'ऊँचाई' कहानी ने संकीर्ण धारणाओं को तोड़ा है। स्त्री पात्र शिवानी नहीं मानती कि पर पुरुष के स्पर्श मात्र से नारी अपवित्र हो जाती है वह पति को कहती है कि अन्य पुरुष से सम्बन्ध रखना चाहती है। तन और मन के बीच बँटे शरीर को वह दो व्यक्तियों को अलग-अलग समर्पित करती है। शिवानी ने नारी मन के भावों को सच्चाई से व्यक्त किया है और ऐसा करने पर उसे किसी प्रकार की आत्मग्लानि नहीं है, न ही वह नारीवादी मानसिकता को अपने पर हावी होने देना चाहती है।

शशिप्रभा शास्त्री ने नारी के अन्दर छिपी इच्छाओं, अतृप्त लालसाओं पर भावुकता का पर्दा न डालकर यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। एक नौकरी पेशा वाली औरत के लिए समाज का नजरिया लेखिका ने बखूबी महसूस किया है।

सूर्यबाला की कहानियाँ 'एक इन्द्रधनुष जुबेदा के नाम', 'दिशाहीन', 'समान सतहें' और 'सुलह' सभी वक्त की चिन्तन धारा से जुड़ी है इनमें सामाजिक विसंगति पर बड़ी सूक्ष्मता से व्यंग्य किया गया है। मृणाल पाण्डे 'बचुली चौकीदारीन' के आवरण पृष्ठ पर लिखती हैं- "हर कहानी या उपन्यास घटनाओं-पात्रों के जरिये सत्य से एक आंशिक और कौतूहल भरा साक्षात्कार होता है। सहित्य हमें जीवन जीना सिखाने की बजाय टुकड़ा-टुकड़ा दिखाता है, वे तमाम नर्क-स्वर्ग, वे सारे राग-विराग, वे सारे उदारता और संकीर्णता-भरे मोड़, जिनका सम्मिलित नाम मानव-जीवन है। जो साहित्य उघाड़ता है वह अन्तिम सत्य या सार्वभौम आदर्श नहीं बहुस्तरीय यथार्थ होता है।"[18]

नासिरा शर्मा की चर्चित कहानी 'सबीना के चालीस चोर' में एक छोटी लड़की बड़ों जैसी दृष्टि रखती है तथा अपने होने का अलग एहसास दिलाती है। समकालीनता की अनिवार्य संघर्षशीलता, स्त्री के अनेक रूप, सभ्यता मूलक समाज का दायित्व को उजागर करने का कार्य निरूपमा सेवती की कहानियों ने किया। उनकी रचनात्मक ऊर्जा मनुष्य के अन्दर बाहर के संघर्ष को बेहतर स्थितियों में विश्वसनीय बनाती हैं। इनकी कथा नायिका जीने की इच्छा रखती है अतः वह विद्रोह करती है परन्तु भटकाव के बाद किसी न किसी स्तर पर समझौता करने के लिए बाध्य होती है। इनकी कहानी की नायिकाएँ असुरक्षा के बोध से ग्रस्त है। इन सभी कहानियों में निरूपमा सेवती स्त्री-संघर्ष के अनेक रूप प्रस्तुत करती है।

मेहरुन्निशा परवेज ने स्वतन्त्रता की प्रबल हिमायती नारी वर्ग की समस्याओं का प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया- "मैंने अपनी कलम से नारी की व्यथा लिखी है, बदले में मुझे क्या मिला? इसका ब्यौरा मैं देना नहीं चाहती। बस इतना चाहती हूँ कि मेरी कहानी पढ़कर किसी एक नारी को भी जिन्दगी का सच मिल जाए तो यह मेरा इनाम होगा।...औरत का बोलना समाज ने, घरवालों ने कभी पसन्द नहीं किया। औरत चुप अच्छी लगती है, जैसे देवी का रूप। ...औरत जब घर छोड़ती है तो कुलय कहलाती है, पर जब पुरुष घर छोड़ता है तो वैरागी, साधु, भगवान में महान पुरुष कहलाता है जैसे तुलसीदास, भगवान बुद्ध।...औरत केवल मीराबाई बन कर रह जाती है।"[19]

मेहरुन्निशा परवेज ने जिस साहसिकता के साथ स्त्री के प्रति पुरुष के दृष्टिकोण को उपस्थित किया है वह अपने आप में एक अजूबा है। इनकी कहानियों में स्त्रियाँ भावुकता में आकर अपना जीवन नष्ट नहीं करती, बल्कि जीवन जीने के लिए तटस्थ है। मणिका मोहनी की

कहानियों में भी नारी विद्रोह का स्वर है। यह विद्रोह पुरुष जाति के प्रति है जिसे लेखिका ने बखूबी उजागर किया है।

निम्न वर्ग के पात्र-पात्राओं के प्रति सहज सहानुभूति मंजुला भगत की खास पहचान है। इन सभी लेखिकाओं के अलावा सुधा अरोड़ा, कृष्णा अग्निहोत्री, रजनी पनिकर, ऋचा शुक्ला, प्रतिमा वर्मा, अरुणा सीतेष, नमिता सिंह, चन्द्रकान्ता, मीना अग्रवाल, राजेन्द्र कौर, सिम्मी, हर्षिता, पद्मा सचदेव, अलका सरावगी आदि की रचनाएँ भी है जिनमें अतीत से मुक्त होकर वर्तमान में जीने के आग्रह का प्रबल स्वर है।

हिन्दी की समकालीन महिला कथाकारों द्वारा चित्रित जाति, अर्थ, और लिंग पर आधारित भेद अवलोकनीय हैं। वे दर्शाती है कि समकालीन संदर्भ में लिंग भेद के कारण नारी को विविधमुखी शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। अतः वे अपनी सारी शक्तियाँ इसी दृष्टिकोण को बदल देने में केन्द्रित किये हुए हैं। वे नारी का विमोहक, मनोरंजक, रमण-आधृत व सम्पत्ति वाला रूप न स्वीकार कर एक समान व प्रतिष्ठित नागरिक वाला रूप स्थापित करना चाहती हैं। इसलिए समकालीन लेखिकाओं की कहानी में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध सर्वथा भिन्न रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इन लेखिकाओं की कहानियों में इनके व्यक्तित्व को देखा जा सकता है। लेखिकाएँ दिखा रही हैं कि अपने व्यक्तित्व को उजागर करने वाली नारी ही पति, पिता और भाई के लिए प्रिय सिद्ध हो रही है।

परिवार की शर्तों पर जीवन जीने, सबका शिकार बनने, पराजित जीवन जीने का विरोध करने में महिलाओं ने जो अभी तक लड़ाई जीती है वह केवल वैधानिक स्तर पर अधिकार प्राप्त है, पर यथार्थ में दैनिक जीवन में भेदभाव अन्याय सर्वत्र समाप्त करने की लड़ाई अभी उसे जीतनी है, पूर्ववर्ती कहानियों और समकालीन लेखिकाओं के कथ्य में यह मूलभूत अन्तर है कि इनकी नारियाँ अपनी पुरानी स्मृतियों में घुट-घुटकर मरने या परम्परा का बोझ लिए जीने वाली स्त्री नहीं है। वे स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न करती हैं। हीनग्रन्थि लिए जीने के बजाय वह पूरी अस्मिता के साथ अपने भविष्य का जीवन सुनहरा बनाने की तैयारी में लगी है। लेखिकाओं का यह प्रयास है कि नारी पात्र के सम्मुख एक सुनहरा भविष्य और सुखी वर्तमान हो, जिसमें आज का परिवेश उसकी ओर घृणा या तिरस्कार के बजाय उसे सहानुभूति से देखे - जब ये महिलाएँ स्वावलम्बन और अस्मिता की खोज में रहती है, तो उनमें एक नई मानसिकता उजागर होती है जो परम्परागत नारी में नहीं थी। नारी की स्थिति में बदलाव लाने के लिए और परम्परा के प्रति विद्रोह करने के लिए दूसरे देशकाल की तलाश करना होगा। लेखिकाओं का मत है कि नारी की परिस्थिति

बदलने के लिए, उसमें स्वस्थ अनुकूलता लाने के लिए एक दूसरे देशकाल की आवश्यकता है। यह देशकाल स्वयं लेखकों को निर्मित करना होगा क्योंकि एक ही संदर्भ में पुरुष के लिए अलग और स्त्री के लिए अलग नियम है। एक ही कर्म का दण्ड पुरुष के लिए नहीं है और स्त्री के लिए अवश्यमेव? क्यों समाज समझता है कि आज भी स्त्री चुपचाप सहती जायेगी? इन प्रश्नों का उत्तर लेखिकाओं ने कई जगह खोजा है, खोदा है, कुरेदकर देखा है। पुरुष सत्तात्मक समाज की यह दृष्टि नारी के मार्ग को अवरूद्ध करती है। नारी को समाज की इस मानसिकता में परिवर्तन लाने के लिए उन्हें कितनी ही मानसिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, भीतर ही भीतर कितनी द्वंद ग्रस्त रहकर नये मूल्यों की स्थापना हेतु आन्तरिक पीड़ा से छटपटाना पड़ता है। वे बड़ी सफलता से अपना विद्रोहात्मक दायित्व निभाती हैं।

2.2.1 हिन्दी की महिला कहानीकारों की परंपरा

साहित्य मनुष्य की मनुष्यता की अभिव्यक्ति का माध्यम है। मनुष्य की मनुष्यता पूरी तरह प्रकट होती है, उसकी स्वतन्त्रता में। लेखन इस स्वतन्त्रता का पोषण करता है। मनुष्य की स्वतन्त्रता जब उसकी लेखन चेतना के रूप में विकसित होती है तब वह जानदार, असरदार और सामाजिक भी होती है। किसी भी समाज में लेखन, स्वस्थ बौद्धिक वातावरण पर निर्भर करता है। साहित्य की रचना और बोध की प्रक्रिया कभी भी अपने सामाजिक सन्दर्भ से अप्रभावित नहीं रही है लेकिन आधुनिक काल में साहित्य पर सामाजिक सन्दर्भ और राजनीतिक परिवेश का व्यापक और निर्णायक प्रभाव पड़ता है। आज के युग में साहित्य की दुनिया केवल एकान्त साधना के सहारे नहीं चलती। वह समाज के ढ़ाँचे सामाजिक संरचनाओं से बहुत दूर तक प्रभावित होती है। "लेखक वृन्द प्रायः अपने काल के विधाता होते हैं। उनमें अपने देश को, अपने समाज को दुःख, अन्याय और मिथ्यावाद से मुक्त करने की प्रबल आकांक्षा होती है।"[20]

पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियों का जीवन सिर्फ दासता ही स्वीकार करता है। यही कारण है कि स्त्रियाँ इस पुरुष प्रधान समाज में न केवल अपना अस्तित्व खो देती है, वरन् आधी आबादी के अस्तित्व को भी मिटा देती हैं। इस विचारधारा को प्रकाशमान करने के लिए साहित्य की भाव-बोध और जीवन दृष्टि में परिवर्तन आया और साहित्य में साहित्यिक दृष्टिकोण के साथ सामाजिक दृष्टिकोण को भी अपनाया जाने लगा।

रचनात्मक क्षेत्र में नारी जीवन के दुःख, अवसाद, अवहेलना और उत्पीड़न को चित्रित करने का प्रयास किया जाने लगा। संकुचित सामाजिक व्यवस्था में जहाँ अच्छा और बुरा, पाप और पुण्य का परिणाम हो, वहाँ विरोध या विद्रोह की आवश्यकता ही नहीं पड़ती लेकिन भारतीय

समाज में व्यवस्था के प्रति प्रतिक्रिया हुई, परम्पराओं के प्रति विद्रोह भाव जागा तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज उठी।

विद्रोह व्यक्ति की स्वतन्त्रता की पहचान है, उसकी अस्तित्वगत मजबूरी। विद्रोह की इस प्रक्रिया में व्यक्ति भीतर ही भीतर संघर्षरत रहता है। कभी वह समाज के अनुसार स्वयं को ढ़ालता है तो कभी अपने स्व को नकारता है और कभी स्व के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाता है। इस विद्रोह के दोहरे आयाम को स्वीकारता, नकारता एक अंतर्द्वंद की स्थिति में जीता है। यह दुविधा की स्थिति विद्रोह की भूमिका में एक सक्रिय प्रयास है। सृजनात्मक धरातल पर इस प्रक्रिया के अन्तर्गत व्यक्तियों की टूटन और बिखरने को रूपायित किया जाता है। पुरुष को समाज की व्यवस्था में प्रारम्भ से ही एक उच्च दर्जा प्राप्त था। सर्वत्र यही भाव उभर कर आता है कि पुरुष स्वीकृत है जबकि स्त्री स्वीकृति के लिए लड़ रही है। समाज की व्यवस्था का ताना बाना इस प्रकार बुना गया है कि नारी उसमें उलझ कर रह गयी है। शोषण, अन्याय और दासता ही उसके जीवन का विधान बन गया है परन्तु इस ताने बाने के निर्माण का जिम्मेदार पुरुषों को ही नहीं माना जा सकता है। नारी भी इस परिस्थिति के लिए उतनी ही जिम्मेदार है जितना कि पुरुष है। स्त्री की मानसिकता में स्त्री को स्त्री समझने के लिए वह सोच जीवित रहती है जो लड़के और लड़की का भेद स्वतः ही कर देती है। जन्म के उपरान्त लड़के और लड़की का अन्तर सर्वप्रथम परिवार की महिलाओं द्वारा ही किया जाता है।

"इस तरह जब शैशव से लेकर युवावस्था तक निरन्तर नारी में हीनता-ग्रन्थि और पुरुषों में श्रेष्ठता ग्रन्थि का विकास किया जाएगा और इस विकास में परिवार की स्त्रियाँ ही अधिक भागीदार होगी, तो पुरुष को दोषी ठहराना व्यर्थ है। दोष तो बेटे-बेटी की पालन-पोषण की पद्धति में बुनियादी रूप में विद्यमान है। इसी भेदभाव से लड़की के समाजीकरण की प्रक्रिया गलत हो जाती है।"[21] स्त्री और पुरूष के भेदपूर्ण व्यवहार को सहती, शोषण से संघर्ष करती हुई महिला, यदि चक्रव्यूह को तोड़कर बाहर आ निकलने का साहस कर भी लेती है तो यह निर्मम व्यवस्था उसे हिम्मत करने के लिए सजा देती है। नारी यदि स्वतन्त्र जीवन जीना चाहती है तो स्वतन्त्र जीवन जीने के लिए उसे कितना कुछ झेलना पड़ता है। व्यवस्था के अन्तर्गत इसलिए वह दुःखी जीवन जीती है जबकि चाहिए कि नारी को देखने वाली दृष्टि में मानवी भाव, सहानुभूति और उदारता हो। नयी व्यवस्था से यही अपेक्षा की जाती है।

"समाज के कर्ता-धर्ता भी नारी को एक ओर शक्ति कहें, दूसरी ओर उसे अबला या बेचारी बनाकर रखना चाहे।"[22] इस तरह आज की सामाजिक व्यवस्था फिलहाल दो नावों पर

सवार है। वर्तमान समाज की सारी गड़बड़ी के मूल में ये दूहरे मूल्य ही हैं। इस सोच में बुनियादी परिवर्तन किए बिना कोई भी कानूनी या प्रशासकीय व्यवस्था नारी के जीवन में वाँछित सामाजिक परिवर्तन नहीं ला सकती है। चिन्तक मानते हैं कि पुरुष प्रधान समाज में पुरुष के सहयोग के अभाव में महिला अबला ही रह जाती है पर आधुनिक स्थिति में सबसे अधिक जिम्मेदारी महिलाओं पर है। अपने अपने स्तर पर सभी माताएँ लड़के-लड़की के बीच भेद-भाव कम करें, हर महिला दूसरी पिछड़ी महिला को सामाजिक रूप से शिक्षित करें और प्रतिद्वंदिता में नारी की दुश्मन न बने, तो इससे समस्या का समाधान मिल सकता है।

अक्सर ऐसी स्थिति देखी जाती है कि जब पास पड़ोस की महिलाएँ इकट्ठे होकर गप्पे हाँकती हैं और जब एक महिला को नीचा दिखाना होता है तो वे एक जुट हो जाती हैं। ईर्ष्याग्नि में जलती ये महिलाएँ मर्यादा का नाश करके एक दूसरे को हानि पहुँचाती हैं। महिलाएँ ही महिलाओं की इच्छाओं का गला घोंट देती है। महिलाएँ अन्दर ही अन्दर जानती हैं कि निष्ठुरता उनकी सम्पूर्ण जाति में पायी जाती है और बारी-बारी से सब एक दूसरे की शिकार बन जाती है। समाज की इन बुद्धिजीवी महिलाओं पर कटाक्ष करते हुए तसलीमा नसरीन लिखती है कि- "पढ़ लिखकर जिनको बुद्धि हुई है, वे इतनी अभागी है कि अपनी बुद्धि का इस तरह गलत प्रयोग करती है कि कमजोर पर चढ़ बैठती है। वे असहाय पर बरसती है। वे कमजोरों का खाना छीन लेती है और उत्पीड़ितों से गाली-गलौज करती है। एक स्त्री की जो 'बुद्धि' दूसरी स्त्री को हानि पहुँचाती हैं, मैं उसे 'बुद्धि' नहीं, बल्कि विषधर साँप का दंश कहती हूँ।"[23]

नारी की मानसिकता में समयानुसार अब थोड़ा परिवर्तन आया है। नारी का नारी के प्रति यदि कहीं सही दृष्टिकोण प्राप्त होता है तो वह नारी लेखन में जहाँ हम नारी विचारों से अवगत होते है, वहाँ हमें नारियों द्वारा नारी की दयनीय स्थिति के प्रति विरोध मिलता है और साथ ही साथ रोष भी प्रकट हुआ है, चाहे वह पात्रों द्वारा हो या लेखिका द्वारा। समकालीन लेखिकाओं का मत है कि स्त्री को समाज में जो हानि रूप प्राप्त हुआ है वह उसकी सोच और स्थिति के कारण है। वरना स्त्री और पुरुष दोनों की शक्ति समान है। वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में विश्वास रखती है। समकालीन लेखिकाओं के लेखन में आज भी अधिकतर महिलाएँ हमें ऐसी मिलती है जो सर्व सम्पन्न होने पर भी विवश है। वे पुरुष की दृष्टि में अब भी भिन्न है, क्योंकि पुरुष की मानसिकता उनके प्रति नहीं बदल रही है। स्त्री क्यों समाज व पुरुषों से अपने प्रति उदार दृष्टिकोण की अपेक्षा करती है। लेखिकाओं का महिलाओं के लिए स्पष्ट संदेश है कि उनकी स्थिति

में परिवर्तन तभी संभव है जब उन्हें शिक्षा प्राप्त हो। जब वह अपनी तथा कथित 'नारी सुलभ' कमजोरियों पर विजय पा लेगी और स्वयं नारी द्वारा नारी का शोषण समाप्त करने की सोचेगी।

आज की नारी कैरियर को प्रथम स्थान देना चाहती है। इसलिए उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस कार्य में वह न पुरुष का सहयोग चाहती है न ही आधिपत्य। समाज का यह परिवर्तित रूप हमें समकालीन लेखन में देखने को मिलता है। घर की दीवारों में कैद नारी देहरी लाँघ अपनी पीड़ा को स्वयं सबके सामने रखने का साहस करती है। लेखन के माध्यम से वह शोषण, अन्याय, दुर्व्यवहार के विरुद्ध आवाज उठाने लगी है। लेखिकाओं ने ऐसे असंख्य नारी पात्रों को मूर्त रूप दिया है, जो आधुनिक तौर पर विद्रोही है। जो अन्याय सहन नहीं करते हैं। वे अपने को उसी रूप में किसी अन्य के द्वारा स्वीकार करना चाहते है। एक समय तक उन्हें परेशानियों से भरा व्यथित जीवन बिताना पसन्द है परन्तु अपमानित जीवन नहीं।

आज सामाजिक विचारधारा में परिवर्तन आया है परन्तु यह परिवर्तन मानसिक रूप से नारी में जितनी तेजी से आया है, पुरुष में नहीं। अतः पुरुष आज भी उसे शोषित ही कर रहा है परन्तु नारी इसके लिए तैयार नहीं है। वह विरोध में जैसा कर सकती है वैसा करती है। सर्वत्र पुरुष सत्ता में बैठे हैं। केन्द्र की धुरी पर आसीन है। परिधियों पर एक-दो महिला इकाईयाँ ही नजर आ रही है।

साधारण जीवन की व्यावहारिक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से सशक्त चित्रण कर लेखिकाओं ने साबित किया है कि केवल यह कहना कि प्रकृति से स्वच्छंद और समाज से परम्परागत सुविधा छूट पाने के कारण पुरुष स्त्री के प्रति अन्याय करता आया है आँशिक सत्य है अथवा स्थिति का सतही विश्लेषण है। अन्याय के विरुद्ध सारे मुद्दों के सरलीकरण के परिणाम स्वरूप समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा है। प्रबुद्ध महिलाओं ने बार-बार संगठनों, लेखिकाओं, आम पाठकों के ध्यान को इस खतरे की ओर आकृष्ट किया है कि दिशाहीन बढ़ने और सैद्धान्तिक प्रेरणा के बिना लक्ष्यहीन लड़ने से नारी के साथ अन्याय और दुर्व्यवहार घटने के बजाए बढ़ते ही जाएंगे।

लेखिकाओं का लेखन नारी को गुणी, दयालु, माँ के प्रभा-मंडल रूप के स्थान पर एक व्यक्ति के रूप में स्थापित करता है और मित्र प्रेमिका के रूप में नया सम्बन्ध बनाने का प्रयास करता है। वह सचेत व जागरुक है परन्तु परम्परागत जंजीरों को तोड़ने के लिए उसे साधारण से अधिक बनना पड़ेगा। इसके लिए उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा, सुखद यह कि वे इसके लिए तैयार हैं। इस जागरुकता से यह भी एहसास होता है कि मानव पीड़ा का

अधिकांश हिस्सा महिलाओं को भोगना पड़ता है। अधिक पाने की कोशिश में बहुत कुछ झेलना पड़ता है। बावजूद इसके ये तमाम नारियां साहसी हैं, जो टूट जाना पसन्द करती है, हारना नहीं। उनका यह विरोध स्थितियों के अनुसार सीमाओं को लाँघ भी पाया है और सीमाओं के अन्दर भी है। नारीत्व की भारतीय अवधारणा में सांस्कृतिक लचीलेपन की सीमा को जाने समझे बिना इन बारीकियों को पहचानना संभव नहीं है।

लेखिकाओं ने नये सन्दर्भों में अन्याय से जूझती नारी का ऐसा चित्रण किया है, जहाँ एक तरफ वह कुछ नया पा गई है, मगर वहीं कुछ अलगाव भी झेलना पड़ रहा है। पति के दुर्व्यवहार को न सहने के विरुद्ध आवाज उठाकर स्वयं को बहुत अकेला महसूस करने लगी है। फिर भी लेखिकाओं की नायिकाएँ स्वयं एकाकी जीवन जीना स्वीकार करती है, परन्तु किसी के विचारों के अनुसार स्वयं कठपुतली बनकर उसके इशारों पर नाचकर स्वयं को भूल जाना उनको पसन्द नहीं है। अन्याय के प्रति यदि नारी अपने स्वाभिमान और स्वतन्त्र व्यक्तित्व को लेकर प्रकट होती है तो इसे मान्यता मिलनी चाहिए, लेखन में यही दृष्टि रही है किन्तु यही स्वतन्त्रता जब उच्छृंखलता बनने को तत्पर हो जाये तब उसका विरोध भी आवश्यक हो जाता है। स्वतन्त्रता के नाम पर भारतीय नारी की कुंठाओं और पतनशील प्रवृत्तियों को ऐसी कथाकार कभी नहीं स्वीकारती है। वे ऐसी नारियों पर करारा व्यंग्य करती हैं। वे हर क्षण नारी के विकास की कामना करती हैं और अन्याय के प्रति उसके विद्रोह का वे इसी परिप्रेक्ष्य में सर्मथन करती हैं। वे नारी पात्रों का अंकन सामाजिक यथार्थ की भूमिका के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी करती हैं। आधुनिकता के आवेश में वे अपनी नारी पात्रों को पथ भ्रष्ट होते दिखलाती हैं तो वहीं आधुनिकता के इन पात्रों के जीवन में महत्व को रेखांकित करती है। महिलाओं ने अन्याय के एक दूसरे पहलू के प्रति भी आपत्ति प्रकट की है। जब नारी, समाज को बता चुकी है कि वह भी पुरुष के समकक्ष है, तो फिर सम्मान के नाम पर वह पुरुष से पीछे क्यों रहे? यदि कर्तव्यों की सूची में वह आगे है तो अधिकारों की सूची में पुरुष से पीछे क्यों? "प्रायः देखा जाता है कि जीवन के क्षेत्र में पुरुष प्रथम कोटि के कामों में मग्न रहते हैं, व स्त्री द्वितीय और तृतीय कोटि के। अखबार पढ़ना, घर में आए गए लोगों से बातचीत करना, बाहर जाना, जीविका कमाना, अपना मनोरंजन करना, आराम करना, सेवा कराना, सब पुरुष के हिस्से के कार्य हैं। खाना पकाना, कपड़े धोना, बीच-बीच में दौड़कर कुण्डी खोलना, हल्की-भारी चारपाई उठाना-बिछाना, जिद्दी बच्चों को समय पर स्कूल भेजना, अपने व्यस्त तुनुक मिजाज पति की चापलूसी करना, बदमिजाज सास की सरगर्मियाँ झेलना औरतों के हिस्से में पड़ता है।"[24]

सर्वत्र, सभी साहित्यिक विधाओं पर यदि दृष्टिपात करें तो एक समानता देखने को मिलती है वह यह कि प्रायः हर पूँजीवादी देश में नारी बुरी तरह से शोषित है। शोषण से जूझती नारी और नारी कथा लेखन के विषय में डॉ0 रेनू गुप्ता लिखती हैं कि-"सदियों से नारी समाज, पुरुष धर्म सभी के द्वारा शोषण का शिकार होती आई है। आज उसकी स्थिति में मूलभूत परिवर्तन हुए है। समाज में भी नारी को देखने वाली दृष्टि परिवर्तित हुई है। धार्मिक विश्वासों और स्त्री की चारित्रिक नैतिकता के प्रति भी दृष्टिकोण में परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है। आज पति को परमेश्वर न मानने वाली नारी स्वयं को मानव रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए संघर्षरत है। वह सब कुछ नियति मानकर स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। फिर भी उसका शोषण आज भी हो रहा है। धर्म, समाज, व्यक्ति, परिवार सभी में आज के परिर्वतित युग में भी शोषित हो रही है।......परन्तु परिवर्तित युग में आज भी नारी उस शोषण को सहज ही स्वीकारती नहीं। आज की नारी पति, पिता, या किसी के भी जुल्म को नियति मानने में विश्वास नहीं रखती है। वह इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती है, जहाँ तक उसका सामर्थ्य है। जब तक वह उसका विरोध कर सकती है, करती है आज भी समाज उस नारी को हेय दृष्टि से देखता है जो पुरुष के साये में न पलती हो, पति को त्याग चुकी हो या खो चुकी हो परन्तु नारी आज स्वयं को पहचान चुकी है।"[25]

आज नारी आन्दोलन अपनी पूर्ण गति में है। इस गति को वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण ने अधिक तीव्र कर दिया है। इस आन्दोलन के कई नाम है- 'महिलावाद', 'स्त्रीवाद', 'नारी मुक्ति आन्दोलन' इत्यादि। हमारे यहाँ जो नारी आन्दोलन चल रहा है उसे गति देने में उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और शहर की पढ़ी लिखी स्त्रियों का योगदान है। भारतीय आधुनिक नारी आन्दोलन को पश्चिम के नारी आन्दोलन से पृथक् करके देखा नहीं जा सकता है। विदेशों में जो नारी आन्दोलन चल रहे है वहाँ औद्योगिक पूँजीवाद और तकनिकी विकास का भी योगदान रहा है। परिणामस्वरूप वहाँ की स्त्रियों ने अपने अधिकारों को लेकर अधिक सजगता दिखाई है और अच्छे परिणाम भी देखने को मिले हैं। 'मी टू' आंदोलन एक ऐसा ही अंदोलन था जिसके प्रभाव के चलते कई शक्ति और सत्ता की आड़ में रहने वाले शख्सियतों का पर्दाफाश किया। भारत समेत अन्य देशों पर भी हमने देखा की इस आदोंलन का सकारात्मक प्रभाव पड़ा। किन्तु यह भी एक शर्मनाक सच है कि 'मी टू' आंदोलन ने काम की जगह पर हो रहे शोषण, दोहरे मानदंड और अन्याय का वीभत्स चेहरा सभी के सामने प्रस्तुत कर दिया।

आज का संस्कृतिवाद, पुराने सामाजिक डार्विनवाद का नया चेहरा है। बौद्धिक सांस्कृतिक स्तर पर भूमंडलीयकरण जो विचार देता है वे आश्चर्यजनक तरीके से उत्तर

आधुनिकतावादी चिन्तन के भी उपजीव्य हैं। भूमंडलीकरण की अपनी परिभाषा में उसका सारा जोर दुनिया की एक नयी व्यवस्था के दायरे के भीतर सांस्कृतिक बहुलवाद के लिए जगह बनाने पर है। वह बहुलवाद जो व्यवहारिक जटिलताओं से बचता है। संस्कृतियों में परिवर्तन लाने वाली सामाजिक क्रान्तियों से उसे खास परहेज है। अब अगर उत्तर-आधुनिकतावादी तर्क से यह मान लें कि भाषाएँ, संस्कृतियाँ और नृजातीय समूहों की अस्मिताएँ अपने बहुलवाद के कारण सुरक्षा की अधिकारी है तो मानना पड़ेगा कि वे पश्चिमी आधुनिकता के मानदण्डों का विकल्प है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अगर भूमंडलीकरण पश्चिम की तर्ज पर है तो बहुलवादी संस्कृति का उत्तर आधुनिकतावादी मिथक स्वयं अपनी बनावट में निहित अन्तर्विरोधी तर्कों से ही खण्डित हो जाता है। "बुनियादी चुनौती यह है कि जिसे भूमंडलीकरण कहा गया है, वह अमेरिका की वर्चस्व जमाए रखने सम्बन्धी भूमिका का ही दूसरा नाम है बीते दशक के दौरान, अमेरिका ने अभूतपूर्व समृद्धि हासिल की, पूँजी की उपलब्धता को व्यापक और घना किया, नयी प्रौद्योगिकियों की बहुलता के निर्माण, इनके विकास और इनके विस्तृत विवरण हेतु धन की व्यवस्था की अनगिनत सेवाओं और वस्तुओं के बाजार बनाए।"[26]

नारी विद्रोह को लेकर महिला लेखन में पुरुष लेखन की अपेक्षा एक खास तरह का विद्रोह रहा हैं। सन् 1950 से पहले की महिला लेखिकाओं की रचनाओं में अभिव्यक्त नारी चेतना की चर्चा शुरू करें तो प्रथम पंक्ति में हमें सुभद्रा कुमारी चौहान, ऊषादेवी मिश्रा, कमला चौधरी, शिवरानी देवी, होम देवी, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, तेजरानी पाठक और तारा पांडे को प्रमुख रूप से रखना होगा। समाजिक रूढ़ियों से उत्पन्न व्यक्तिगत पीड़ाओं और कुंठाओं के चित्रण में लेखिकाओं ने अपना विरोध व्यक्त किया, लेकिन परम्परागत मूल्यों को बनाए रखने के लिए भी कुछ रचनाकार डटी हुयी थी। सुभद्राकुमारी चौहान की 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी सीधे साधे चित्र' आदि कहानियाँ नारी जाति की इसी प्रकार की कहानियाँ हैं जब कि सुमित्राकुमारी सिन्हा ने 'अचल सुहाग' और 'वर्ष गाँठ' जैसी कहानियों में भारतीय नारी के परम्परागत रूप को नकारते हुए सदियों से परम्परा और रूढ़ियों की जंजीरों में जकड़ी भारतीय नारी के मन में इन परम्पराओं के लिए विद्रोह और कटुता भर दी। चन्द्र किरण सौनरेक्सा ने 'आदम खोर' नामक कहानी संग्रह में आर्थिक निर्भरता के कारण हर प्रकार के अन्याय सहती नारी के प्रति चिंता व्यक्त की है। शिवरानी देवी 'प्रेमचंद वर यात्रा' नामक कहानी में लिखती हैं- "राम नाथ और उसके घर के लोग जब उसका जरा घूँघट उठाकर न चलना, सास को और ससुर-जेठ को देवता न समझना, इशारों पर न नाचना, नहीं सहन करते थे, तो वही क्यों दबे? इसलिए कि वह स्त्री है और पति उसका भरण-पोषण करता है। स्त्री का जन्म इसलिए होता है कि वह

पुरुष की गुलामी करती रहे उसका अभिमानी हृदय यह न सह सकता था।.... दिखा दूँगी कि आज भी भारत में ऐसी नारियाँ है जो आदर्श के लिए हँसते-हँसते प्राण दे देती है। पुरुषों की भाँति वे भोग विलास के लिए नहीं जीती, बल्कि अपने धर्म को पालने के लिए।"[27]

ऐतिहासिक सन्दर्भ में उस समय की सारी सीमाओं के बावजूद महिला लेखिकाओं द्वारा रचित कथा साहित्य ने बदली हुई स्थितियों के अनुरूप जीवन-दृष्टि और भाव-भूमि को अपने में समेटने की कोशिश की। लेखिकाओं को नारियों के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन एकांकी प्रतीत हो सकता है। उनको लगता है कि पुरुषों की रचनाएँ साहित्य-जगत में जिस रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी हैं, उनकी तुलना में नारी विरचित कथा साहित्य की उपेक्षा हुई है। यह उल्लेखनीय है कि प्रकृति ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को विशेष भाव प्रवण और संवेदनशील बनाया हैं जहाँ पुरुषों के लिए बुद्धिपरक विचारधारा सहजगुण है, वहीं नारियों में मार्मिकता का विशेष समावेश रहता है। इसलिए- "वे पुरुष की दुनिया की परिसीमा पर अवस्थित जगत को एक वैश्विक सन्दर्भ में नहीं देखती, बल्कि जगत के प्रति अपना एक विशेष दृष्टिकोण रखती हैं।"[28]

वर्तमान व्यवस्था की स्थापित मान्यताओं और मर्यादाओं का ध्वंस ही समकालीन कहानी का मुख्य स्वर है और वह स्वर अपने तीखेपन के कारण पूर्व के कथा साहित्य से भिन्न लगता है। समकालीन कहानी प्रतिपक्षी को 'एक्सपोज' करने की कहानी है। वास्तविक जीवन में पीड़ित लोग अपने को अधिक नष्ट करते हैं, प्रतिपक्षी को कम। समकालीन कहानियों में स्थितियों का वर्णन अधिक है, स्थितियों के लिए उत्तरदायी तत्वों पर प्रहार की शक्ति न पात्रों में है न लेखकों में। समकालीन कहानी के रूप विधान में आर्थिक परिस्थिति का बहुत महत्व है, इस आर्थिक-परिस्थिति स्वरूप तत्कालीन कहानी के पात्र उलझन भरी और लंगड़ी जिन्दगी व्यतीत करते दिखाई देते हैं। मृत्यु और विनाश का भय जीवन की वास्तविकता बन गया है। इसके कारण मध्यवर्ग में भोगवाद की प्रवृत्ति बढ़ गयी है। बदली परिस्थितियों में उपजी समकालीन कहानी ने अपना सम्बन्ध आम आदमी के दुःख-दर्द, संघर्ष, आकांक्षा और भविष्य को अपना विषय बनाया।

समकालीन कहानी में मानवतावाद नहीं, मानव चित्रित हुआ है। कमलेश्वर के शब्दों में कहें तो इन कहानियों की पूरी विचारधारा ही मनुष्य केन्द्रित है। इसमें आया मनुष्य सिर्फ मनुष्य है, वह धर्म वर्ग में बँटा आम आदमी नहीं। इन कहानियों के पात्र अपने में से नैतिक-अनैतिक धारणा से विचलित व्यक्ति हैं। यानी वे ज्यादा सही और सच्चे व्यक्ति हैं। वे स्वयं अपने नियामक हैं। अतः उनके जीवन मूल्यों में वैचारिक दृष्टिकोण के प्रतिमानों में स्पष्ट रूप से नवीनता झलकती है। कुसुम अंसल की 'स्पीड ब्रेकर' में परम्पराओं के प्रति विद्रोह व्याप्त हैं। "जी चाह रहा था

विद्रोह कर डालूँ, सबसे बदला हूँ....माँ बाप से.....जिन्होंने जाने क्या सोचा, जहाँ भी चाहा ब्याह किया, विद्रोह करूं अपने आप से जो बिना प्रतिवाद किए, हालात से समझौता किए सिर झुकाए चलती रही। फिर अपने पति विवेक से, अपने घर के कीमती फर्नीचर या फ्रिज की तरह मुझे भी घर का एक विशेष अंग समझकर प्रयोग किया। और फिर सोचा मुझे अपनी इस अनजान अवस्था का खयाल भी तो आया है अब जब दुपहरी छा चुकी है, घनी धूप सिर पर है, मेरे शरीर में थकान समा रही है, उम्र पर शाम का धुंधलका छाता जा रहा है, मेरी अपनी आवश्यकता कम हो चली है, मुझे अपने आपको शाम के हवाले होने से रोकना है।....खैर अब शायद जिन्दगी 'स्पीड ब्रेकर' के पास आ चुकी है, धीरे चले तो झटका नहीं लगेगा और रास्ता शायद मंजिल से जा मिलें।"[29]

ये कहानियाँ अपने पाठक पुरुष और नारी को अपने भीतर झांककर आत्ममंथन के लिए विवश करती है और देश समाज तथा साहित्य में नारी की नयी पीढ़ी को अपने तयशुदा भूमिका से हटकर नई भूमिका निभाने का दायित्व बोध प्रदान करती है। ''बिल्कुल नई पीढ़ी की कहानीकारों का धाकड़ भाव अपनी सड़ी-गली सामाजिक मान्यताओं, दुहरी नैतिक मान मर्यादाओं तथा दुहरी मूल्य दृष्टि पर तीव्र प्रहार कर एक स्वस्थ समाज-निर्माण की नींव खड़ा करता है।"[30] और आज का दमदार महिला लेखन इस नींव की बुलंद इमारत है।

2.2 हिन्दी के महिला उपन्यासकार एवं अलका सरावगी

महिला उपन्यासकारों के लिखे गये उपन्यासों में स्त्री-जीवन की गहन संवेदनशील वैचारिक अभिव्यक्तियाँ हैं, जो आधी आबादी कहे जाने वाले समुदाय की हैं, जिनका अपना वैशिष्ट्य है और महत्ता भी। महिला उपन्यासकारों की एक लम्बी शृंखला है जिसके अन्तर्गत शशिप्रभा शास्त्री, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, चन्द्रकान्ता, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, मृणाल पाण्डे, नासिरा शर्मा, चित्रा चतुर्वेदी, गीतांजलि श्री, प्रभा खेतान, मैत्रीयी पुष्पा, मधु कांकरिया, जया जादवानी, उषा किरण खान एवं अलका सरावगी आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। इस उपशीर्षक के तहत महत्वपूर्ण महिला उपन्यासकारों की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

शशिप्रभा शास्त्री

महिला हिन्दी उपन्यासकारों में शशिप्रभा शास्त्री का एक महत्वपूर्ण नाम है, जिन्होंने 7वें दशक से लिखना आरम्भ किया और अंतिम दशक तक उनका लेखन कार्य चलता रहता है। इनके तेरह उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, क्रमशः जिनके नाम 'अमलतास', 'नावें', 'सीढ़ियाँ', 'परछाइयों के पीछे', 'क्योंकि', 'कर्करेखा', 'परसों के बाद', 'ये छोटे महायुद्ध', 'उम्र एक गलियारे

की', 'सागर पार का संसार', 'मीनारें', 'खामोश होते सवाल' एवं 'हर दिन इतिहास' हैं, जिसमें अंतिम तीन उपन्यास 20वीं सदी के अंतिम दशक में प्रकाशित हुए। 'मीनारें' उपन्यास को छोड़कर बाकी सभी उपन्यास विशेष रूप से स्त्री-जीवन से सम्बन्धित हैं। इन उपन्यासों में जिस तरह स्त्री जीवन की व्यथा-कथा एवं उसकी विवशता का चित्रण मिलता है, वह प्रभावित करने वाला है। लेकिन नारी जीवन के परम्परागत त्याग, तपस्या, समर्पण एवं सेवा भाव से आगे का चित्रण इनके उपन्यासों में नहीं है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि ''आपकी कृतियों में मुख्यतः जीवन के विविध सन्दर्भो में नारी की पीड़ा और उसके संघर्ष को ही उभारा गया है।...... नारी के आन्तरिक और बाह्य तनाव, आत्मनिर्भर होने के लिए उसके द्वारा किये जाने वाले संघर्ष, आर्थिक आत्मनिर्भरता के बावजूद परिवार की मर्यादा का अतिक्रमण न कर पाने की उसकी विवशता आदि का बड़ा ही सजीव चित्र खींचा है।''[31] 'मीनारें' में इन्होंने शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, गुंडागर्दी एवं फिर उसमें जिस तरह का राजनीतिक हस्तक्षेप होता है, उसका बड़ी ही साफगोई से चित्रण किया है। क्योंकि उनका मानना है कि शिक्षा के जो संस्थान हैं, वे अब ज्ञान के मंदिर न रहकर व्यवसाय करने की दुकान हो गये हैं। जहाँ विरोध में किये गये सवाल खामोश कर दिये जाते हैं और हर दिन एक दफनाया हुआ इतिहास होकर रह जाता है, चाहे वह सागर के इस पार का हो या फिर उस पार का, कोई फर्क नहीं पड़ता।

कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबती को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला रचनाकारों की बृहत्त्रयी में शामिल किया गया है। उपन्यास लेखन में इनकी शुरूआत 'मित्रो मरजानी' (1967) के प्रकाशन से होती है और 'सूरजमुखी अँधेरे के' (1972) प्रकाशन के साथ इनकी साहित्य के क्षेत्र में विशिष्ट पहचान बन जाती है। इन दोनों उपन्यासों के लेखन में एक साहसिक कदम इन्होंने उठाया है क्योंकि इसके पूर्व किसी भी महिला उपन्यासकार ने स्त्री के स्वेच्छाचार का इतनी साफगोई एवं 'मुँहफट अन्दाज-ए-बया' के रूप में चित्रण नहीं किया था। जहाँ 'मित्रो' नीरस, बासी और सामंती वर्ग की संस्कृति के विरूद्ध सब कुछ दाँव में लगा देने वाली स्त्री है, वहीं 'सूरजमुखी अंधेरे की' की 'रत्ती' बचपन में ही बलात्कार का शिकार होती है, जिस कारण वह मनोवैज्ञानिक रूप से असहिष्णु, क्रूर एवं फ्रिजिड हो जाती है, लेकिन दिवाकर के सम्पर्क में आने से उसे काम विकृति से मुक्ति मिल जाती है। इन्हीं उपन्यासों के प्रकाशन के कारण वे सातवें-आठवें दशक में बेहद चर्चित रचनाकारों में शामिल हो गयी थीं।

'जिन्दगीनामा' का प्रकाशन सन् 1979 ई. में होता है, यह उपन्यास जहाँ एक ओर पाठकों के लिए परिनिष्ठित होने के कारण प्रायः अबोधगम्य, बोझिल एवं कृत्रिम मान लिया जाता है वहीं दूसरी ओर पंजाब प्रदेश की संस्कृति, रहन-सहन, चाल-ढाल, रीति रिवाज की ही जानकारी के लिए नहीं बल्कि वहाँ के 19वीं एवं 20वीं सदी के इतिहास, दन्त कथाओं एवं प्रचलित लोकोक्तियों की भी जानकारी के लिए महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें पंजाब के ग्रामीण-किसानों का भी यथार्थ चित्रण है एवं उनकी साम्प्रदायिक भेदभाव से रहित, सहयोग एवं सद्भाव वाली, हँसी-खुशी एवं दुःख-दर्द से ओतप्रोत मानसिकता का भी।

इस उपन्यास से उन्हें एक संवेदनशील रचनाकार के रूप में भी पहचान मिलती है। सन् 1991 में 'ऐ लड़की' (जो पहले एक लम्बी कहानी के रूप में प्रकाशित हुई थी।) उपन्यास प्रकाशित हुआ। जिसमें एक माँ अपना पूरा जीवन घर-गृहस्थी के लिए खपाती है, लेकिन अपनी बेटी से कहती है कि ''तुम अपने में आजाद हो, तुम पर किसी की रोक-टोक नहीं। जो चाहों कर लो।''[32] क्योंकि उसने अपने जीवन से जाना है कि बिना जीविकोपार्जन के एक स्त्री की हालत कभी न सुधरेगी।

'दिलो दानिश', जो कि सन् 1993 में प्रकाशित हुआ, का विस्तार चौथे अध्याय में किया गया है और 'समय सरगम' उपन्यास (जो कि सन् 2000 में प्रकाशित हुआ है) में लेखिका ने वृद्ध जीवन का एक संवेदनशील चित्र खींचा है, जिसमें उनकी त्रासद स्थिति, अस्थिर मानसिकता, विवशता, अकेलापन, बहू-बेटों की उनके प्रति की जाने वाली उदासीनता, व क्रूरता एवं बचा-कुचा छिन जाने की आशंका आदि का अंकन गहरी अनुभूति के साथ किया गया है। यह अलग बात है कि वृद्ध ईशान एवं वृद्धा अरण्या एक-दूसरे के एकाकी जीवन में सरसता लाने के लिए तत्पर हो जाते हैं ।

कुल मिलाकर वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से सोबती जी का कथा संसार निश्चय ही विकास पाता है और उनके हर उपन्यास की संवेदनशीलता भी अलग-अलग है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने ठीक ही लिखा है कि "अपने प्रत्येक उपन्यास में रचना की एक नई भूमि लेकर उपस्थित होने वाली कृष्णा सोबती निश्चय ही आज के हिन्दी कथा संसार की अन्यतम विभूति हैं।"[33]

उषा प्रियंवदा

स्वातंत्र्योत्तर बृहत्त्रयी हिन्दी महिला रचनाकारों में उषा प्रियंवदा का भी नाम शामिल किया गया है। इनके पाँच उपन्यास प्रकाशित हैं, जिनके क्रमशः नाम 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रूकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा', 'अन्तर्वशी' एवं 'भया कबीर उदास' है। 'पचपन खंभे लाल

दीवारें' (1961) उपन्यास में मध्यमवर्गीय स्त्री सुषमा की कहानी है, जो पढ़ने-लिखने एवं नौकरी-पेशा आदि के चलते अधिक उम्र तक अविवाहित रह जाती है। इस स्थिति की मानसिक यंत्रणा का चित्रण बहुत ही सजीव जान पड़ता है। गोपाल राय का मानना है कि "पचपन खम्भों एवं लाल दीवारें वाली होस्टल की इमारत बाहर से विशाल और भव्य होने पर भी अन्दर से बहुत संकीर्ण, नैतिक रूढ़ियों, प्रवादों और बन्धनों की प्रतीक है।"[34] इसी तरह के हास्टलों में रहने वाली प्रत्येक लड़कियों या स्त्रियों का जीवन कैद सा रहता है।

'रूकोगी नहीं राधिका' (1967) में लेखिका ने राधिका के माध्यम से एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया, जो अपना स्वतंत्र विकास करना चाहती है। अतः अपने भारतीय संस्कार वाले पिता की बार-बार अवहेलना करके उन्हें कष्ट पहुँचाती है और स्वयं भी दिग्भ्रमित होती रहती है। शराब पीने एवं शारीरिक संबंध बनाने में वह किसी प्रकार के संकोच, कुंठा एवं अपराधबोध का अनुभव नहीं करती वरन् तमाम तरह के पारम्परिक नैतिक बंधनों की धज्जियाँ उड़ाकर एक स्वच्छंद स्त्री की तरह जीती है जिसे किसी की कोई परवाह नहीं है।

'शेषयात्रा' (1984) में 'अनु' के माध्यम से एक ऐसी स्त्री का चित्रण किया गया है, जो अपने पति 'प्रणव' के लिए मात्र एक वस्तु है। इस कारण वह उससे रिश्ता तोड़कर दीपंकर चौधरी के साथ रहने लगती है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि "इस उपन्यास में भी आधुनिक स्त्री की समस्या को केन्द्र में रखा गया है, किन्तु यहां वह असहाय और असुरक्षित नहीं है। स्वावलम्बन, आत्म गौरव, सम्मान और स्वातंत्र्य भाव के बल पर निखरकर, वह नये जीवन-यथार्थ में नये विश्वास से प्रतिष्ठित हो चुकी है।"[35]

'अन्तर्वशी' (2000) अमेरिका प्रवासी भारतीयों की जीवन-शैली का विश्लेषण करने वाला उपन्यास है, जिसमें 'वाना' जैसी स्त्रियों का इतना आत्मसजग होना कि अपनी शिक्षा व नौकरी के लिए आगे बढ़ने के साथ पारिवारिक जिम्मेदारियों से दूर होकर समलैंगिक एवं पर पुरूषों (राहुल) से संबंध बनाने में भी तनिक न हिचकिचाना- अटपटा सा लगता है किन्तु आधुनिक एवं मुक्त वैचारिकी का परिचय प्रदान करता है।

'भया कबीर उदास' (2007) उषा प्रियंवदा का अंतिम उपन्यास है। जिसमें अमेरिकी प्रवास की भारतीय नायिका को स्तन कैंसर हो जाता है। इस उपन्यास में केवल सारिका निश्चित रूप से आत्मसजग जान पड़ती है। ऐसे में वह मेडिकल ट्रीटमेंट कराती है, जिसका बहुत यथार्थ चित्रण हुआ है। वह सोचती है- ''उफ! इतनी यातना, जैसे इसका अन्त ही नहीं, अभी तो चीरों में ही टभकन उठा करती थी। मैं सारी रात तकिए का सहारा लिए बैठी रहती और आँखे फाड़-

फाड़कर देखती रहती, खिड़की के चौखटों को, जिनके उस पार एक पूरी जाग्रह, हँसती, खिलखिलाती दुनिया बिखरी हुई है।''[36] यह एक ऐसी बीमार स्त्री की चिंतनपरक अभिव्यक्ति है, जो सामान्य स्त्री की तरह जीना चाहती है उसी तरह की उसकी लालसाएँ हैं। लेकिन अस्वस्थ्य शरीर के कारण वह अपनी आकांक्षाओं को दबाती रहती है और भविष्य के सपनों को संजोते रहती है ।

राजी सेठ

हिन्दी उपन्यास लेखिका के रूप में राजी सेठ की पहचान 'तत-सम' (1983) के प्रकाशन के साथ होती है। वस्तुतः यह उपन्यास एक प्रेमकथा है जिसमें लेखिका ने एक ऐसी स्त्री वसुधा की कथा को चित्रण का आधार बनाया है जो अपने पति निखिल से बेहद प्रेम करती है लेकिन उसके पति की एक दुर्घटना में मौत हो जाती है, ऐसे में वह ऐसे पुरूष की तलाश करती है, जो केवल प्रेमी या स्वामी बनकर ही न रहे बल्कि सहयात्री की तरह उसका साथ दे। विवेक और आनंद से भावात्मक रूप से जुड़ने के बाद अन्ततः वह आनंद को अपना जीवन साथी बना लेती है। पुष्पपाल सिंह ने ठीक ही लिखा है कि "विवेच्य उपन्यास व्यक्ति-स्वातंत्र्य, नारी-स्वातंत्र्य, की दृष्टि को केन्द्र में रखकर एक अत्यन्त प्रबुद्ध, सुशिक्षिता नारी के पुनर्विवाह के प्रश्न को आधुनिक जीवन स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने का एक सही प्रयत्न है।"[37] 'निष्कवच' (1995) में राजी सेठ ने भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृतियों के जीवन-पद्धतियों का संवेदनात्मक किन्तु तुलनात्मक चित्रण किया है। उनका मानना है कि पाश्चात्य में सारे रिश्ते देह के स्तर तक ही सीमित रह गये हैं, इसी कारण वे टूटते बनते रहते हैं। जबकि भारत में रिश्तों की गर्माहट व्यक्तित्व का निर्माण करती है, पिता, पुत्र, भाई आदि के जो रिश्ते भारत में होते हैं, वे कभी नहीं टूटते, एक तरह की स्थिरता रिश्तों के बीच बराबर बनी रहती है। यहाँ के लोगों को पश्चिम भले ही स्वर्ग लगे, लेकिन वहाँ रहने वाले भारतीयों के लिए किसी नर्क से कम नहीं। कथा नायक जब अमेरिका से लौटकर भारत आता है तो किसी से उसे कोई स्नेह नहीं मिलता, बल्कि सभी उससे अपेक्षाएँ ही पालते हैं, ऐसे में वह गहरे अंतर्द्वंद के साथ वापस लौट जाता है, क्योंकि अपनी प्रेमिका मार्था के विश्वास 'इण्डियन आर सो फेथफुल' को वह नहीं तोड़ना चाहता। निश्चित रूप राजी सेठ के दोनों उपन्यास चिंतन की एक नवीन भावभूमि तैयार करते हैं, जो बेहद संवेदनात्मक हैं।

मंजुल भगत

मंजुल भगत की सन् 1976 में 'लघु उपन्यास' के नाम से दो कथा रचनाएँ ('टूटा हुआ इन्द्रधनुष' और 'लेडीज क्लब') संयुक्त रूप से प्रकाशित हुए। पहले की स्त्री नायिका अपने पति

से अपेक्षा करती है कि वह केवल अपने प्रेमी से प्रेम करने के लिए स्वच्छंद न हो बल्कि उसके पुत्र को भी जन्म देने का अधिकार उसे प्राप्त हो तो दूसरे में आत्म प्रदर्शन एवं कृत्रिम आचरण करने वाली महानगर की अभिजात्य स्त्रियों के अन्तर्विराधों का चित्रण किया गया है। इसके बाद उनके 'अनारो' (1977), 'बेगाने घर में' (1978), 'खातुल' (1983), 'तिरछी बौछार' (1984) एवं 'गंजी' (1995) उपन्यास प्रकाशित होते हैं।

'अनारो' में जहां निम्नवर्गीय नारी के शोषण के साथ उसकी जिजीविषा एवं स्वाभिमान का चित्रण मिलता है, वहीं 'बेगाने घर में' उपन्यास में नगर केन्द्रित निम्नवर्गीय स्त्री समाज का। 'खातुल' में अफगान शरणार्थियों की जिन्दगी का चित्र है तो 'तिरछी-बौछार' में एक आधुनिक नारी के प्रेम के अधिकार के प्रति सचेत होने पर दाम्पत्य जीवन की जिम्मेदारी से मुक्ति की छटपटाहट ही उपन्यास का केन्द्रीय विषय हैं। 'गंजी' में अनारो का विस्तार है, जिसमें गंजी अपने परिश्रम, विवेक एवं लगन से अपने नये जीवन की शुरूआत करती है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी ठीक ही लिखते हैं कि "मंजुत भगत के लेख की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे नारी-पात्रों के शोषण को ही नहीं उनके स्वाभिमान को भी महत्व देती है।"[38] इनके नारी पात्र जहाँ एक ओर मध्यवर्गीय समाज से आती हैं वही दूसरी ओर निम्नवर्गीय समाज से भी। उच्चवर्गीय नारियों का चित्रण उनके उपन्यासों में न के बराबर है।

मृदुला गर्ग

मृदुला गर्ग का पहला उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' सन् 1975 ई. में प्रकाशित हुआ, जो काफी चर्चित रहा। जिसमें आधुनिक स्त्री के प्रेम का त्रिकोणात्मक संघर्ष, परम्परागत मूल्यों व मानसिकता से अलग हटकर-प्रस्तुत किया गया है, जिसमें मनीषा के अंतर्द्वंद एवं उसकी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण भी है। इसके बाद उनके क्रमशः 'वंशज' (1976), 'चित्तकोबरा' (1979), 'अनित्य' (1980), 'मैं और मैं' (1984), 'कठगुलाब' एवं 'मिलजुल मन' (2009) प्रकाशित हुए।

'वंशज' अभिजात्य वर्ग की नारी के स्वातंत्र्य जीवन को रेखांकित करता है, जो वैवाहिक जीवन की एक-रसता से ऊबकर ताजगी के लिए पर पुरूष की ओर आकर्षित होती है। 'चित्तकोबरा' में मनु की जो स्थिति है, वह एक स्त्री के परिवारिक जीवन की घुटन में पिसती रहने की है, पति, देवर से लेकर आने-जाने वाले सभी खुश रहें, इसीलिए वह दिन-रात घर में खटती रहती है। 'अनित्य' में स्त्री-पुरूष के सम्बन्धों से ऊपर उठकर मृदुला जी ने सन् 1930 से लेकर सन् 1960 तक के भारतीय राजनीति को अपने लेखन का आधार बनाया है तो 'मैं और मैं' में एक

धूर्त और बेईमान लेखक द्वारा एक नयी लेखिका के शोषण का जिक्र करती है। मधुरेश जी कहते हैं कि "'मैं ओर मैं' में एक मैं माधवी का है और एक कौशल का। कौशल के द्वारा बुनी पर्तों को झाड़कर वह जैसे स्वयं को नये सिरे से अन्वेषित करती हैं।"[39]

'मिलजुल मन' में लेखिका ने "प्रेम को इकहरी प्रक्रिया के रूप में न देखकर उसकी जटिलता एवं अतार्किकता में देखा है। उपन्यास की मुख्य कथा वैचारिकता का छद्म आरोपित करने या कृतिम रूप से स्त्री-संघर्षशीलता का आवरण बनाने की बजाए एक समय विशेष के अन्दर स्त्री-मानसिकता, उसके कार्य-कलाप, उसके रंग-ढंग को समझने का प्रयास है।"[40]

मृदुला गर्ग को विशेष पहचान 'कठगुलाब' (1996) उपन्यास से मिली जो निश्चित रूप स्त्री जीवन एवं उसकी चेतना को ध्यान में रखकर लिखा गया है। 'कठगुलाब' का प्रतीकात्मक अर्थ है। नारी की जिजीविषा इसके साथ-साथ नारी संघर्ष और नारी चेतना को भी दर्शाया है। उनके लेखन का मुख्य उद्देश्य स्त्री-चिंतन की उस विचारधारा को सामने लाना है, जिसमें स्त्री पुरूष सत्तात्मक समाज के परम्परागत शोषण को पहचानकर अपने पूरे अस्तित्व एवं अस्मिता के वजूद के साथ शाश्वत जीवन जीने में विश्वास करे।

चन्द्रकान्ता

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रचनाकारों में चन्द्रकान्ता ऐसी महिला उपन्यासकार हैं, जिनके औपन्यासिक चित्रण में सामाजिक जीवन प्रमुख रहता है, और स्त्री-जीवन गौण। अर्थात् उनके यहां सामाजिक संवेदना का अधिक महत्व है, बजाय स्त्री के। चन्द्रकान्ता का पहला उपन्यास 'अर्थान्तर' सन् 1981 ई. में प्रकाशित होता है जिसमें एक संवदेनशील स्त्री की भावुकता एवं बेचैनी का चित्रण किया गया है। इसके बाद उनके 'अन्तिम साक्ष्य' (1981), 'बाकी सब खैरियत है' (1983), 'ऐलान गली जिन्दा है' (1984), 'यहाँ वितस्ता बहती है' (1992), 'अपने-अपने कोणार्क' (1995) एवं 'कथा सतीसर' (2001) प्रकाशित हुए।

'अंतिम साक्ष्य' प्रगति की रफ्तार में एकल होते व्यक्ति के पारिवारिक जीवन की स्मृतियों का साक्ष्य है, जहां वह पुनः नहीं लौट पाता। इसमें एक स्त्री की त्याग भरी कहानी भी है। जैनेन्द्र कुमार ने दिल्ली की एक गोष्ठी में इस उपन्यास को बहुत सराहा था। इस पर एक लघु फिल्म 'और कितनी दूर' भी बनी है। 'बाकी सब खैरियत हैं' में उपभोक्तावादी संस्कृति के दलदल में व्यक्ति इतना समा जाता है कि पारिवारिक मूल्यों को ताक में रखकर माँ-बाप, भाई, बहन आदि सभी से दूर रहना ही पसंद करता है। 'ऐलान गली जिन्दा है' में श्रीनगर की एलान गली की कई पीढ़ियों से एक साथ रहने वाले परिवेश का चित्रण किया गया है, जिसकी अपनी सांस्कृतिक एवं

राजनीतिक विरासत है। नयी पीढ़ी भले ही उसकी रूढ़िपरक एवं अन्धविश्वासी मनोवृत्ति को बदलना चाहती हो, लेकिन उस ऐलान गली के ऐलान के आगे उनकी कुछ भी नहीं चल पाती। 'यहाँ वितस्ता बहती है' में एक बुद्धिजीवी शिक्षाविद् एवं संवेदनशील "आदर्शवादी नागरिक राजनाथ कौल के जीवन को केन्द्र में रखकर कश्मीर के उस गरिमामय जीवन प्रवाह को अंकित किया गया है, जो परिवर्तन के क्रम में क्रमशः उन पारम्परिक जीवन-मूल्यों से दूर हटता गया है, जिसके आलोक से प्रेरणा लेकर हम भविष्य को भी महनीय बना सकते हैं।"[41]

'कथा सतीसर' कश्मीर के सन् 1931 ई. से लेकर सन् 2000 तक के उस सामाजिक कालखण्ड को चित्रित करता है, जिसमें ऐतिहासिक सन्दर्भ के साथ पौराणिक मिथक भी जुड़ते हैं। एक तरफ कश्मीर के आतंकवाद में अस्त-व्यस्त होती हुई आम आदमी की जिन्दगी है तो दूसरी ओर बलात्कार की शिकार होती युवतियों की विक्षिप्त मनोदशा भी।

फिर भी कश्मीर की जनता सुख-शांति का वातावरण चाहती है और चैन की सांस के साथ अपने सहज जीवन की लय को भी बरकरार रखना चाहती है। 'अपने-अपने कोणार्क' को छोड़कर शेष सभी उपन्यासों का लेखन क्षेत्र कश्मीर का सामाजिक जीवन है।

'अपने-अपने कोणार्क' में लेखिका ने केन्द्रीय स्त्री पात्र 'कुनी' का चित्रण किया है, जो पढ़ी-लिखी एवं आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होते हुए भी पारिवारिक मर्यादा के रूढ़िपरक मूल्यों में जीती रहती है। 32 वर्ष की उम्र के बाद उसका सिद्धार्थ से प्रेम हो जाता है, लेकिन परिस्थिति वश वह ईराक की एक नर्स से विवाह कर लेता है। यह खबर उसके लिए दुःखदायी हो जाती है। अन्ततः वह दो बच्चों के विधुर पिता से विवाह कर लेती है। दोनों हनीमून के लिए कोणार्क जाते हैं। जिस कारण उड़ीसा की संस्कृति एवं वहाँ के आदिवासी जीवन शैली का भी चित्रण उपन्यास में हुआ है। लेकिन यह कोणार्क स्मृतियों के चलते दोनों के लिए अलग-अलग है।

ममता कालिया

हिन्दी महिला उपन्यासकारों में ममता कालिया का नाम सन् 1971 में 'बेघर' के प्रकाशन के साथ जुड़ता है, जिसमें 'संजीवनी' अपने कौमार्य की रक्षा नहीं कर पाती इस कारण वह सारे संवदेनात्मक लगाव के बाद भी अपने जड़ संस्कारों वाले पति द्वारा दुत्कार दी जाती है। फिर उसका पति परमजीत रमा नाम की एक संकीर्ण एवं फूहड़ स्त्री के साथ शादी कर लेता है। जिस कारण संजीवनी की त्रासदी एवं परमजीत की असंतुष्ट जिन्दगी का भी चित्रण सामने आता है। यह अलग बात है कि लेखिका परमजीत की मौत करवा देती है। इसमें उनका उद्देश्य सिर्फ इतना रहता है कि "नारी की पवित्रता की कसौटी उसकी मानसिक एकात्मता और समर्पण है,

शारीरिक कुँवारापन नहीं।"[42] इसके बाद उनके 'नरक दर नरक' (1975), 'प्रेम कहानी' (1980), 'लड़कियाँ' (1987), 'एक पत्नी के नोट्स' (1997), 'दौड़' (2000), 'अंधेरे का ताला' (2009) एवं 'दुःखम सुक्खम' (2009) आदि उपन्यास प्रकाशित हुए।

'नरक दर नरक' में ऐसे मध्यमवर्गीय शिक्षित युवकों का चित्रण किया गया है, जो सारी प्रतिभा, ईमानदारी, मेहनत एवं डिग्रियों के होने के बावजूद भी रोजगार के लिए दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। शिक्षा जगत एवं नेता नगरी की भ्रष्टाचारिता के चलते मुम्बई का सुनहरा वर्तमान नरक-दर-नरक बन गया है। इस उपन्यास का सन् 1987 में 'साथी' नाम से भी एक बार प्रकाशन हुआ। 'प्रेम कहानी' उपन्यास के मूल में चिकित्साजगत की भ्रष्टाचारिता एवं राजनीति का चित्रण है। इसके अतिरिक्त सामाजिक स्वीकृति एवं स्वेच्छा से किए गये विवाह को समानान्तर रखते हुए दोनों की विडम्बनाओं पर भी प्रकाश डाला गया है। 'लड़कियाँ' 50-60 पेज का लघु उपन्यास है, जिसमें एक साथ रहने पर हो जाने वाले प्रेम का चित्रण हुआ है। 'एक पत्नी के नोट्स' में एक पढ़े-लिखे एवं प्रशासनिक पद वाले संदीप की मनोवृत्ति का चित्रण है, जो आज भी सामन्तीय संस्कारों से मुक्त नहीं हुआ। जहां एक ओर वह अपनी पत्नी कविता पर वर्चस्व रखता है, वहीं दूसरी ओर उसे छोटी-छोटी बातों के लिए पीड़ित एवं प्रताड़ित भी करता है। इस कारण स्वतंत्र जीवन जीने की चाहत वाली कविता उसे छोड़कर चली जाती है, जिसे चलती ट्रेन से संदीप मनाकर लाता है। इसमें जहाँ एक ओर संभ्रान्त मध्यवर्गीय परिवार के अन्तर्विरोध हैं, वहीं कुछ नाटकीयता भी।

'दौड़' उपन्यास में ऐसे आधुनिक युवाओं का चित्रण मिलता है, जिनके लिए कैरियर ही सबकुछ है, पारिवारिक संस्कार एवं परम्परा की नैतिकता से उसका कोई विशेष सरोकार नहीं। कुल मिलाकर आगे बढ़ने एवं वैभव व संपदा अर्जन करने की युवाओं की आपसी होड़ ही 'दौड़' है। 'अंधेरे का ताला' में एक महिला महाविद्यालय की ऐसी कहानी है, जिसमें प्रबंधक अपनी मनमानी करता है और अधिक धन कमाने की कोशिश भी। जिसके चलते तमाम असुविधाओं से रहित महाविद्यालय की तस्वीर सामने आती है और शिक्षा जगत की विद्रूपता भी। अग्रवाल साहब, जो शिक्षा को व्यवसाय का साधन मानते हैं, के चलते, नंदिता जैसे प्राध्यापकों की सारी योग्यता मूल्यहीन नजर आती है। लड़कियों की शिक्षा में कंजूसी करने की बात भी निम्न शब्दों में बयां होती है- "एक ही परिवार में जहाँ लड़के को इन्जीनियरिंग या मेडिकल कालेज में भरती करने के लिए माँ-बाप रूपयों की थैली खोल सकते थे, लड़की को पढ़ाने में पन्द्रह रूपये पचास पैसे की मासिक फीस उन्हें अखरती। लड़कियों का मनोबल इसी वजह से फिस्स हो जाता।"[43] 'दुक्खम सुक्खम' उपन्यास में बीसवीं शताब्दी की बदलती हुई मथुरा का चित्रण है, जिसमें

लेखिका ने स्वतंन्त्रता के संघर्ष, गाँधी के प्रभाव, चर्खा व खादी जैसे स्वदेशी आन्दोलन से उभरे आत्मबल, देश के विभाजन की त्रासदी और आजादी के बाद के परिदृश्य को रेखांकित किया है। जीवन की तमाम आपाधापी के बीच अस्तित्व के बहुतेरे प्रश्नों की गूँज एवं उनके उत्तरों की आहट इसमें साफ सुनाई पड़ती है।

चित्रा मुद्गल

आज की व्यावसायिक उपभोगवादी संस्कृति में नारी जीवन के शोषण की, जो नयी-नयी शोषक स्थितियाँ बनी हैं, उसका बेजोड़ चित्रण चित्रा मुद्गल ने किया। उनके अभी तक केवल तीन उपन्यास प्रकाशित हुए है- 'अपनी-अपनी जमीन' (1990), आवां (1999) एवं 'गिलिगडु' (2002)।

'अपनी-अपनी जमीन' का केन्द्रीय कथ्य मुम्बई के महानगरीय परिवेश में विज्ञापन जगत् के ग्लैमर, मूल्यहीन प्रतियोगिता, तिकड़म, देह-व्यापार आदि के बीच स्त्री का जीवन-संघर्ष है, जिसमें स्त्री चाहे कितनी ही योग्य हो, भोग्या की दृष्टि से बाहर की नहीं समझी जाती। अंकिता जैसी प्रतिभा सम्पन्न स्त्री को इसलिए कापी राइटर के पद से निकाला जाता है क्योंकि वह पार्टियों में क्लाइंट्स की अश्लील हरकते नहीं बर्दास्त करती, जबकि नीता हर तरह के समझौते करके उसी पद में नियुक्ति ले लेती है। जो एक दिन प्रतिदिन के शोषण से ऊबकर आत्महत्या कर लेती है। इसमें जहाँ एक ओर स्त्री संघर्ष है तो दूसरी तरफ स्त्री स्वातंत्र्य की चेतना भी। नीता अपनी माँ से कहती है – "मैं पत्नी नहीं, सहचरी बनना चाहती हूँ।.... पत्नी शब्द में मुझे दासीत्व की बू आती है.... इस शब्द ने हमारे समाज में अपनी गरिमा खो दी है।"[44]

चित्रा मुद्गल का 'आंवा' उपन्यास बीसवीं सदी के अंतिम दशक में ट्रेड यूनियन, मजदूर आंदोलन एवं स्त्री विमर्श को केंद्र में रखकर लिखा गया महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह उपन्यास मजदूर संगठन का पूंजीवादी व्यवस्था और पूंजीपतियों के विरुद्ध लड़ने और उनके शोषण का बेबाक चित्रण करता है। 'आवां' मुंबई की पृष्ठभूमि पर अंकित है।

'गिलिगडु' में "आज की युवा पीढ़ी द्वारा अपने बुजुर्गों की घोर उपेक्षा और अवमानना का बड़ा ही मार्मिक और सजीव चित्रण किया गया है। आज के भरे-पूरे परिवार में भी बुजुर्गों की स्थिति परिवार के पालतू कुत्तों से भी बदतर है। महानगरों के शिक्षित मध्यमवर्गीय परिवारों का समकालीन जीवन किस सीमा तक यांत्रिक, आत्मकेन्द्रित और अमानवीय हो गया है। यह उपन्यास इसका जीवन्त दस्तावेज है।"[45] इस तरह चित्रा मुद्गल ने महानगरीय जीवन के चकाचौंध में संघर्षरत एवं शोषित हो रही स्त्री की दस्तान को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

मृणाल पाण्डे

मृणाल पाण्डे का लेखन ऐतिहासिक एवं सामाजिक जीवन की संगति और विसंगति को रेखांकित करता है। इनके दो उपन्यास प्रकाशित है 'पटरंग पुराण' (1983) और 'रास्तों पर भटकते हुए' (2000)। पहले में कुमायूँ गढ़वाल के पहाड़ी क्षेत्र की ग्यारह पीढ़ियों में आये बदलाव का बहुत ही मार्मिक चित्रण है। ये पीढ़ियाँ काली कुमायूँ के राजा से लेकर देश की आजादी तक की है। इस इतिहास का केन्द्रीय गाँव पटरंगपुर है, जिसका पौराणिक महत्व भी है। इसकी भाषा आँचलिक है। 'रास्तों पर भटकते हुए' में "आधुनिक उपभोक्तावादी युग में मानवीय संबंधों की मृत्यु, सर्वव्यापी भ्रष्टाचार, धन और सत्ता की दौड़ में मानवीय मूल्यों को बिल्कुल दरकिनार कर राक्षसी भूमिका में जीने वाले डॉक्टरों, उद्योगपतियों, राजनेताओं और पत्रकारों का उपन्यास लेखिका ने तल्ख संवदेनशीलता के साथ चित्रण किया है।"[46] इस उपन्यास की पात्र मंजरी का व्यक्तित्व मृणाल पाण्डेय का व्यक्तित्व सा लगता है, जिसने तमाम संस्मरणों के माध्यम से आत्मकथात्मक शैली में वर्तमान व्यवस्था के विद्रूप चेहरे को उजागर किया है।

नासिरा शर्मा

एक प्रगतिशील मानवधर्मी लेखिका के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाली नासिरा शर्मा के छः उपन्यास प्रकाशित हुए हैं, जिनके क्रमशः नाम 'सात नदियाँ एक समन्दर', 'शाल्मली', 'ठीकरे की मँगनी', 'जिन्दा मुहावरे', 'अक्षय वट', एवं 'कुइयाँजान' हैं। 'सात नदियाँ एक समन्दर' में ईरान की धार्मिक तानाशाही में पिसती हई आम जनता का चित्रांकन किया गया है। आम जनता भले तानाशाही से मुक्ति पाने के लिए विरोध करे, लेकिन उसे मुक्ति नहीं मिलती बल्कि तानाशाही के दूसरे अस्त्र उसके लिए तैयार हो जाते हैं। "लेखिका ने जनता के दुःख-दर्द को मानवीय दृष्टि से देखा है और उसे पूरी सहानुभूति दी है।"[47] 'शाल्मली' स्त्री-शोषण प्रधान उपन्यास है। शाल्मली एक सुशिक्षिता एवं केन्द्रीय सरकार की प्रथम श्रेणी की पदाधिकारी भी है, जबकि उसका पति सेक्शन ऑफिसर ही है। इस कारण वह हीन भावना से ग्रसित है। वह अपनी पत्नी पर तमाम तरह के क्रूर एवं अमानवीय हरकतें करता है, लेकिन पत्नी परिवार को टूटते-बिखरने से बचाने के लिए चुपचाप सबकुछ निर्लिप्त भाव से सहन करती रहती है। वह कहती है- "मेरा विश्वास न घर छोड़ने पर है, न अपने को किसी एक के लिए स्वाहा करने पर है। मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना भी करती हूँ और विश्वास भी।"[48]

'ठीकरे की मँगनी' उपन्यास में एक मुस्लिम स्त्री के व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास का चित्रण मिलता है, जो स्त्री चेतना को बल देता है। वह एक तरफ उन रूढ़िपरक संस्कारों को

दरकिनार करती है, जिनमें एक स्त्री का शोषण निहित होता है, तो दूसरी तरफ उस पुरूष समाज से उसे घृणा हो जाती है, जो स्त्रियों को मात्र वस्तु समझता है। ऐसे में उसे संघर्ष अधिक करना पड़ता है, लेकिन वह अपने स्वप्न के गाँव का निर्माण करती है, उसमें सामाजिक चेतना लाती है।

'जिन्दा मुहावरें' उनका बेहद चर्चित उपन्यास है, जो देश के बँटवारे की भयंकर त्रासदी को रंखाकित करता है। जहाँ एक ओर लेखिका ने पाकिस्तान चले गये मुसलमानों के दुःख-दर्द को सहानुभूति और गहरी संवेदना के साथ चित्रण किया है, वहीं दूसरी ओर भारत में रह गये मुसलमानों का भी। लेखिका का विचार है कि मानवीय सम्बन्धों की ऊष्मा को धर्म के ऊपर रखकर देखने की जरूरत है।

'अक्षय वट' उपन्यास में इलाहाबाद के द्वंदात्मक जीवन का चित्रण मिलता है, जहाँ एक ओर उदात्त मूल्यों की विरासत है, वहीं दूसरी ओर उसकी वर्तमान जीवन-व्यवस्था की विद्रूपता भी। 'कुइयाँजान' में टेक्नालाजी के बढ़ते प्रभाव की ओर लेखिका ने ध्यान आकर्षित किया है, जिसके कारण निरन्तर छीजते जलस्रोतों की समस्या की ओर ध्यान दिलाना ही उनका मुख्य उद्देश्य है। डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद लिखते है कि ''नासिरा जी जाति व धर्म की संकीर्णताओं से बाहर निकलकर मानवीय क्रूरता व बर्बरता के खिलाफ लेखनबद्ध है। जहाँ दुःख है, जहाँ पीड़ा है, जहाँ जुल्म़ है, जहाँ शोषण है, वहाँ नासिरा जी अपने लेखन द्वारा इंसान की सोई चेतना व इंसानियत को झकझोर कर जगाने का प्रयास करती है।''[49]

प्रभा खेतान

स्वातंत्र्योत्तर महिला रचनाकारों में प्रभा खेतान का एक विशिष्ट नाम है, जिन्होंने स्त्री चेतना को, सिमोन द बोउआर की पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' का 'स्त्री उपेक्षिता' नाम से अनुवाद करके, साहित्य चिन्तन के केन्द्र में लाने का काम किया। इस अनुवाद के बाद से स्त्री चेतना की भारतीय स्वतन्त्रता के उपरान्त एक नयी धारा का उदय हुआ, जो निरन्तर गतिशील बना हुआ है।

प्रभा खेतान का पहला उपन्यास 'आओ पेपे कर चले' सन् 1990 में प्रकाशित हुआ, जिसमें पेपे एक कुत्ता का नाम रहता है। इसी पेपे को बेटा मानकर 70 वर्ष की आइलिनदो पतियों एवं पाँच प्रेमियों को याद करती हुए अपने जीवन के दुखों को भूलना चाहती है। वह आदमी में जानवर को और जानवर में आदमी को पहचानती हुई स्वयं को प्यार करने की कोशिश करती है। सिर्फ यहीं कुत्ता उसकी समाधि में आँसू बहाता है, और कोई नहीं। अमेरिकी औरत के जीवन की विसंगति के साथ-साथ वहां के तूफानी जीवन संघर्ष की यान्त्रिकता, सम्बन्धों के व्यवसायीकरण, टूटते-बिखरते रिश्ते, भोगवादी मानसिकता, नस्लवादी मनोवृत्ति आदि का भी

उपन्यास में विश्वसनीय विवेचन मिलता है। निश्चित रूप से विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखा गया यह उपन्यास वैश्विक स्तर पर स्त्री जीवन के सच को रेखांकित करता है। आइलिन का कथन– "दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओ जहाँ औरत के आँसू नहीं गिरे।"[50] एवं "यह परायी जमीन है लेकिन आदमी तो सब जगह एक सा है, वही सुख-दुख के लम्हें वही नाते।"[51] -इस बात का प्रमाण है। इसके बाद उनके 'तालाबंदी', 'छिन्नमस्ता', 'अपने अपने चेहरे', 'पीली आँधी', 'अग्निसंभवा' एवं 'स्त्री पक्ष' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए हैं।

'तालाबंदी' के विषय में मोमिनपुर इलाके में एक परिश्रमी, साधनहीन किन्तु व्यवसाय कुशल मारवाड़ी श्याम बाबू द्वारा एक फैक्ट्री के स्थापित, उसकी समृद्धि और बन्द होने की कहानी कही गई है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि ''उपन्यास में उस मार्क्सवादी राजनीति को उभारा गया है, जो आज धर्म का रूप ले चुकी है और जिसके चलते बंगाल में एक के बाद एक फैक्ट्रियां बंद होती जा रही हैं। यूनियन के नेता समस्याओं पर मानवीय दृष्टि से विचार नहीं करते। वे एक के बाद दूसरी मांग पेश करते रहते हैं।"[52] ऐसे में जो पूँजीवादी उद्योगपति फैक्ट्री बंद करके या तो दूसरे राज्य में फैक्ट्री खोल रहे हैं या फिर कहीं दूसरी जगह बंगाल में ही फैक्ट्री चालू कर रहे हैं। एक तरफ दृढ़ता, सूझबूझ, श्रमशील एवं संवेदनशील, पूँजीपति श्याम बाबू हैं जो दूसरी तरह विवेकशील और मानवीयता की रक्षा में तत्पर मार्क्सवादी यूनियन के नेता शेखर बाबू और दोनों के बीच घुटता-पिसता एक मजदूर समुदाय भी। ऐसे में एक स्वस्थ समाज का चित्र खींचना- एक कठिन काम जान पड़ता है। 'छिन्नमस्ता', 'अपने-अपने चेहरे' एवं 'पीली आँधी' का विस्तृत विवेचन चौथे अध्याय में हुआ है।

'अग्निसंभवा' में लेखिका ने वैश्विक धरातल में हो रहे स्त्री-संघर्ष की मुखर अभिव्यक्ति को रेखांकित किया है। परवीन मलिक लिखते हैं कि "आई. वी. अपनी अस्मिता की सीमाओं का अतिक्रमण कर धुआँ रहित अग्नि की लपटों को अपने भीतर स्वीकारती है। प्रज्वलित होकर एक नए हाशिए पर एक भिन्न प्रकार का आकार बनाती जाती है। इस अग्नि को अपनी संवेदना से जोड़ने के लिए पाठक के पास अनंत संभावनाएँ है, जो प्रभा जी ने दी है।"[53] आइ. वी. उपन्यास की नायिका है।

'स्त्री पक्ष' में मारवाड़ी परिवार लड़की वृंदा का चित्रण है, जो मारवाड़ी समाज के कड़े अनुशासन में पलती-बढ़ती है, लेकिन उसके मन में तमाम ऐसे प्रश्न है, जिनका उत्तर न उसकी माँ दे पाती है और न ही ठीक से उसकी शिक्षिका। विवाह के बाद उसका पति उसे तलाक दे देता है, इस कारण वह अपना स्वतंत्र व्यवसाय कर लेती है। इसी बीच उसे आर्जव से लगाव हो

जाता है, जिसे उसके बच्चे स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन सास-ससुर, माता-पिता नहीं। आर्जव को मुंबई में अच्छा काम मिल जाता है, इसलिए वह चला जाता है और वृंदा अपने घर की फिर एक बार पुनः संभावित रूपरेखा बनाती है। इस उपन्यास में काफी कुछ उनके चिंतन का दोहराव दिखता है।

मैत्रयी पुष्पा

मैत्रयी पुष्पा के लेखन की शुरूआत सन् 1990 में 'स्मृति दंश' के प्रकाशन से होती है। 'स्मृति दंश' ठीक 'बेतवा बहती रही' की तरह स्त्री-जीवन की पारम्परिक एवं रूढ़िपरक वस्तुवादी नजरिये के चित्रण की दास्तान है, जिसमें एक स्त्री घुटती-मरती रहती है।

इसके बाद मैत्रेयी पुष्पा के सन् 1999 में 'झूला नट', सन् 2000 में 'अल्मा कबूतरी', सन् 2001 में 'अगनपाखी', सन् 2000 में 'विजन', सन् 2004 में 'कही ईसुरी फाग', सन् 2005 में 'त्रिया-हठ', सन् 2011 में 'गुनाह-बेगुनाह' एवं सन् 2014 में 'फरिश्ते निकले' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए।

मैत्री जी का उपन्यास 'इदन्नमम' सन् 1998 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में पिछड़े अंचल के जीवन के यथार्थ को उद्घाटित करने के साथ-साथ नारी की स्थिति को केंद्र में रखा है। उनका 'बेतवा बहती रहे' उपन्यास सन् 1998 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में उर्वशी नामक स्त्री के द्वारा उन्होंने ग्रामीण स्त्रियों की पीड़ा, समस्या, जीवन की विषमता, अभाव और मजबूरी का चित्रण किया है।

'झूला नट' में एक स्त्री पात्र शीलो की दास्तान है, जिसका पति उसे छोड़कर चला जाता है, फिर वह देवर के साथ रहने लगती है, उसका पति अपने हिस्से की जमीन बेचना चाहता है, लेकिन वह उसे नहीं बेचने देती। इस तरह पूरी की पूरी जमीन शीलो और बाल किशन की हो जाती है। राजेन्द्र यादव लिखते हैं कि "'झूला नट' की शीलो हिन्दी उपन्यास के कुछ न भूले जा सकने वाले चरित्रों में एक है। बेहद आत्मीय, पारिवारिक सहजता के साथ मैत्रेयी जी ने इसे इस जटिल कहानी की नायिका शीलो और उसकी स्त्री-शक्ति को फोकस किया है.....।"[54] निश्चित रूप से मैत्रेयी जी ने एक पुरूष के किए गये बर्ताव की सजा ही उसे दिलाती हैं, क्योंकि शीलो सुमेर से साफ कहती है- "बालकिशन तो ऐसे ही है हमारे लिए, जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारी दूसरी औरत। बिन ब्याही, मनमर्जी की। सच मानो, बालकिशन भी इससे ज्यादा कुछ नहीं।"[55]

सन् 2004 में प्रकाशित 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास का केंद्र बुंदेलखंड का गांव है। इस उपन्यास में बुंदेलखंड की विलुप्त होती कबूतरा जनजाति की व्यथा और संघर्ष का लगभग संपूर्ण

ताना- बाना मौजूद है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास कबूतरा जनजाति की स्त्रियों की संघर्ष भरे जीवन की दास्तान की अभिव्यक्ति है, जिसके एक ओर विशेष रूप से कदमबाई है तो दूसरी ओर अल्मा। एक अपने पति जंगलिया को पहचानने से इंकार कर देती है तो दूसरी दर-दर की ठोकरें खाती है। एक अनपढ़ है, तो दूसरी पढ़ी लिखी। इसी कारण लेखिका ने एक को गांव तक ही सीमित रखा है, तो दूसरी को बबीना विधान सभा सीट के उम्मीदवार पद तक पहुँचा दिया है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी का मानना है कि " 'अल्मा कबूतरी' कबूतरा जाति की कथा मात्र नहीं है, वह समकालीन राजनीति की दिशाहीनता, अपराधीकरण, सत्ता संघर्ष, बेरोजगारी तथा जीवन मूल्यों के घोर पतन की यथार्थ गाथा भी है। सामाजिक जड़ता को तोड़ती और पारम्परिक रूढ़ियों को चुनौती देती हुई अल्मा जैसी दलित नारी की अपराजेय जिजीविषा समकालीन नारी चेतना को शक्ति और प्रेरणा देने वाली है।"[56]

'अगनपाखी', 'स्मृति दंश' का विस्तार है, लेकिन एक नये कथ्य के साथ। इसमें बुन्देलखण्ड के ग्रामीण जीवन के तमाम अन्तर्विरोध भी मिलते हैं। डॉ. नामवर सिंह ने इसे स्त्री विमर्श, सम्पत्ति विमर्श एवं सती विमर्श का उपन्यास माना है। इन विमर्शो के केन्द्र में इसकी नायिका भुवन है, जो अपने जेठ द्वारा मृत घोषित किये जाने के बाद सहसा एक दिन अगनपाखी की भाँति कचहरी जाकर अपने पति के हक के लिए हलफनामा पेश करती है।

'विजन' में मैत्रेयी जी ने महानगर के नेत्र चिकित्सा के पेशे से जुड़े डाक्टरों की जिन्दगी - का सच सामने लाती है, जो रोगियों को जबरन भर्ती करते हैं और फिर मनमाना रूपया ऐंठते हैं, ऐसे में नेहा जैसी डाक्टर का चरित्र लाकर लेखिका ने समाज में व्यवसायिक हो रहे डाक्टरी के पेशे के विरूद्ध रोशनी तलाशने की कोशिश करती है।

'कही ईसुरी फाग' उपन्यास में लोक में प्रचलित ईसुरी और रजऊ की प्रेम कहानी का वर्णन है, जिसके माध्यम से लेखिका ने पुरूषों द्वारा स्त्रियों पर सदियों से किये जा रहे अत्याचारों का पर्दाफाश किया है। इस कहानी के माध्यम से इतिहास और वर्तमान की स्त्री विषयक दृष्टि जीवंत हो कर साहित्य चिन्तन के केन्द्र में आ गयी है।

'त्रिया हठ' उपन्यास उर्वशी उपन्यास का एक नया संस्करण मालूम होता है, जिसमें विधवा उर्वशी की कहानी है। उसका अपराध सिर्फ इतना है कि वह अपनी जिन्दगी अपने तरीके से जीना चाहती है। यही हठ 'त्रिया हठ' है। उसके बेटे देवेश को जानकारी मिलती है कि उसकी माँ को दवा के रूप में धीरे-धीरे असर करने वाला जहर दिया गया है, जिसके कारण उसकी सच्चाई जानने की तत्परता में कथा-सूत्र का विकास होता है।

'गुनाह-बेगुनाह' में भारतीय पुलिस का असली चेहरा सामने आता है, जहाँ स्त्री सिर्फ भोग्या है या फिर रंडी। इला, जो अपने वजूद को अर्थ देने और समाज के लिए कुछ कर गुजरने का हौसला लेकर खाकी वर्दी पहनती है, वहाँ जाकर देखती है कि वह चालाक, कुटिल, लेकिन डरपोक दुनिया से निकलकर कुछ ऐसे मर्दो की दुनिया में आ गयी है, जो और भी ज्यादा क्रूर, हिंसा लोलुप और स्त्री भक्षक है। वे ऐसे मर्द हैं जिनके पास वर्दी और बेल्ट की ताकत भी है। अपनी मर्दाना कुण्ठाओं को अंजाम देने की निरंकुश निर्लज्जता भी उनमें है और सरकारी तंत्र की अबूझता से भयभीत समाज की नजरों से दूर, थाने की कोठरियों में मिलने वाले रोज-रोज के मौके भी। ऐसे में इला जैसी स्त्रियों से ही कुछ सुधार की उम्मीदें हैं। 'फरिश्ते निकले' उपन्यास में एक स्त्री (बेला बहू), जो अपना बचपन खोती है, बिक कर एक अधेड़ के चंगुल में फँस जाती है, उसके बाद उसकी यौवन की उमंग उदासी के साथ बीतती है, उसे वैवाहिक सुख नहीं मिल पाता, और फिर हमउम्र मर्दों के प्रति उसका खिचाव होता है। उसे बच्चे पैदा करने, घर बसाने और ममता लुटाने की चाह होती है, लेकिन हमदर्दी के बहाने तमाम पुरूष उससे अपनी सेक्स जरूरतें ही पूरी करते हैं। कुल मिलाकर बुन्देलखण्ड की धरती पर बेला बहू अपने आत्मसम्मान और स्वाभिमान के साथ संघर्षरत जीवन जीती है। मैत्रेयी जी इसके आवरण पृष्ठ में भी लिखती हैं- उनके जीवन से बुना गया उपन्यास, जो जिन्दगी में स्वाभिमान को मनुष्य की सबसे बड़ी दौलत मानते हैं।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी का मानना है कि- "उनके नारी पात्र अधिक सक्रिय, सजग और प्रभावी है। उनकी नारी चेतना मूक विद्रोह से चलकर मुखर सामूहिक संघर्ष की दिशा में अग्रसर हुई है। और सबसे बड़ी बात यह है कि उनमें सच कहने का साहस है और उनकी क्रान्ति चेतना किसी विचारधारा के दायरे में कैद न होकर अनुभव की आँच और अनुभूति के ताप से प्रेरित है।"[57] निश्चित रूप में सही जान पड़ता है।

गीतांजलि श्री

20वीं सदी के अंतिम दशक की श्रेष्ठ महिला उपन्यासकारों में गीतांजलि श्री दूसरी महिला रचनाकारों की अपेक्षा अपनी अलग पहचान बनाती हैं। इन्होंने ''अपने उपन्यासों में आधुनिक जीवन के अलग-अलग आयामों के भीतर से कथ्य और अन्तर्वस्तु का चयन किया है। उनकी रचना-भूमि बदलती रही और उसी के अनुसार भाषा शिल्प में भी परिवर्तन होता रहा है।"[58] उनका 'माई' उपन्यास बहुचर्चित है, जिसमें एक स्त्री के लगातार घुटन भरे जीवन का चित्रण हुआ

है। इसके बाद उनके सन् 1998 में ‘हमारा शहर उस बरस’, सन् 2001 में ‘तिरोहित’ और सन् 2006 में ‘खाली जगह’ प्रकाशित हुए हैं।

‘हमारा शहर उस बरस’ में एक शहर की भड़की हुई साम्प्रदायिकता का चित्रण है। साम्प्रदायिकता का केन्द्र रहता है, शहर का मठ। इसकी जाँच शहर के विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग द्वारा की जाती है। इस विभाग में श्रुति से विवाह करने वाले हनीफ व उनके मित्र शरद रहते है। जाँच रिपोर्ट अखबारों में छपती है। साम्प्रदायिक ताकतों का सारा आक्रोश हनीफ पर होता है और शरद को हिन्दू होने के कारण छोड़ दिया जाता है। इसी बीच समाजशास्त्र के विभागाध्यक्ष प्रो. नन्दन अपने बाद हनीफ को विभागाध्यक्ष बनते नहीं देखना चाहते। अतः वह हनीफ के खिलाफ छात्रों को भड़काते रहते हैं। इसलिए छात्र उसकी कक्षाओं का बहिष्कार करते हैं। इस कारण मुसलमान नेता हनीफ का साथ देने के लिए खड़े हो जाते हैं। अवसर का लाभ उठाकर मठ की अन्दरूनी राजनीति के चलते बूढ़े महंत की हत्या कर दी जाती है और महंत को शहीद बना जुलूस निकाला जाता है। पूरी घटना राजनीतिक मोड़ ले लेती है। श्रुति के फ्लैट में हमला होता है, जिस कारण उसके पिता दद्दू किसी तरह बच जाते हैं। निश्चित रूप से साम्प्रदायिकता के चलते मानवीयता छिन्न-भिन्न हो जाती है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि ‘‘यह साम्प्रदायिक धार्मिक कट्टरता और उदार मानवीयता की द्वंद कथा है।’’[59]

‘तिरोहित’ हिन्दी में स्त्री समलैंगिता का चित्रण करने वाला पहला उपन्यास माना जा सकता है। इसमें एक छत के नीचे रहने वाली दो युवतियों की कहानी है, जिसमें ‘बच्चो’ घर की मालकिन है और ‘ललना’ उसके आश्रय में रहने वाली। दोनों के बीच तटस्थ अनुराग है, जो काम प्रेरित है। वे मन और शरीर की मांग एक दूसरे के द्वारा पूरी करती है, जिस कारण वे अपने अन्दर सुखानुभूति महसूस करतीं है। दोनों का जुड़ाव इस सीमा तक है कि बच्चो की मृत्यु के बाद ललना भी तिरोहित होने को बेताब नजर आती है।

‘खाली जगह’ उपन्यास में युद्ध और आतंक की घातक स्थितियों की भयावहता की ओर लेखिका ने ध्यान दिलाया है। अनुराधा कपूर लिखती हैं कि ‘‘गीताजंलि श्री के इस नए उपन्यास का मूल तर्क वह हिंसा है जो हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी का हिस्सा बन गई है। बम इसका केन्द्रीय रूपक है, जो जिन्दगियों के परखच्चे उड़ा देता है, एकदम अनपेक्षित तरीकों से। दिनचर्यायें नष्ट हो जाती हैं, स्मृतियाँ टूट जातीं हैं या अधूरी छूट जाती हैं, उन्हें वर्तमान तक लाने का साधन शेष नहीं रहता और भविष्य में ले जाने की तो आशा भी नहीं।’’[60] यह उपन्यास शिल्प एवं भाषा की दृष्टि से भी नवीन है।

सन् 2022 में गीतांजलि श्री को उनके उपन्यास 'रेत समाधि' के अंग्रेजी अनुवाद 'Tomb of Sand' लिए अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। भारतीय भाषा में लिखी जाने वाली यह पहली पुस्तक थी जिसे अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इस सम्मान को पाने वाली हिंदी की प्रथम लेखिका गीतांजलि श्री हैं।

मधु कांकरिया

21वीं सदी के प्रथम दशक की महिला उपन्यासकारों में मधु कांकरिया का एक विशिष्ट नाम है। इनका पहला उपन्यास 'खुले गगन के लाल सितारे' सन् 2000 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में जहाँ एक ओर नक्सल आन्दोलन और उसके क्रूरतापूर्वक दमन की दस्तान का चित्रण है, वहीं दूसरी ओर निम्न मध्यवर्गीय मारवाड़ी जैन परिवार के अन्तविर्रोधों से परिचय भी होता है। उपन्यास का पुरूष पात्र इन्द्र माओ भक्त है और नक्सल आन्दोलन से जुड़ा है। इस कारण पुलिस उसे पकड़ ले जाती है और तमाम तरह की उसे यंत्रणा देती है, जिसके कारण उसकी मौत हो जाती है लेकिन आधिकारिक तौर पर उसके विषय में कुछ भी पता नहीं चलता। मणि, जो इन्द्र से बेदह लगाव रखती थी, उसकी मौत का पता लगाती है।

'आखिरी सलाम' उपन्यास वेश्याओं और वेश्यावृत्ति के पूरे परिदृश्य को दिखाते हुए हमारे भीतर उन असहाय स्त्रियों के प्रति करूणा व संवेदनशीलता का भाव जगाता है, जो किसी कारण इस बदनाम और नारकीय व्यवसाय में आ फँसी हैं। कलकत्ता के सोनागाछी रेडलाइट एरिया की अँधेरी गलियों का सीधा साक्षात्कार कराते हुए लेखिका ने सभ्य समाज की संवेदनहीनता और कठोरता को भी झकझोरा है और यही बात, इस उपन्यास को महत्वपूर्ण बनाती है। कुल मिलाकर इस उपन्यास में बंगाल की वेश्या मंडियों में शरीर बेचने को खड़ी होने वाली असंख्य निःसहाय नारियों के जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है।

'पत्ताखोर' उपन्यास नशे की लत से पीड़ित युवा वर्ग की अभिशप्त जिन्दगी की अभिव्यक्ति का उपन्यास है। लेखिका कुछ सवालों से बार-बार टकराती है, जैसे क्या नशे के लिए व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार है? क्या नशे के लिए व्यवसायी वर्ग जिम्मेदार है? अथवा क्या हमारी सामाजिक, आर्थिक वास्तविकताएं जिम्मेदार हैं? कहना कठिन है। कुछ भी हो, इस उपन्यास में नशे के पूरे समाजशास्त्र की व्याख्या हुई है- इसमें कोई सन्देह नहीं।

'सेज पर संस्कृत' उपन्यास में पिता की मौत के बाद एक माँ अपनी दो बेटियों संघमित्रा एवं छुटकी को - सुरक्षा और प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए - जैन धर्म से दीक्षित कराने का फैसला लेती है, लेकिन बड़ी लड़की विरोध करते हुए भी छुटकी को दीक्षित होने से नहीं बचा पाती।

संघमित्रा वापस कलकत्ता में लौटकर अपनी पढ़ाई करती है और एक साफ्टवेयर कम्पनी में जॉब पा जाती है। लेकिन छुटकी दिव्यप्रभा बन के अभय मुनि के बलात्कार का शिकार होती है। गर्भवती होने के बाद उसे संघ में शरण नहीं मिलती। अतः वह वेश्यामंडी चली जाती है। बड़ी बेटी संघमित्रा पीड़ित नारियों की सेवा के लिए नारी शक्ति संघ की स्थापना करती है और नारी शोषण का घोर विरोध भी करती रहती है। छुटकी की स्मृतियाँ उसके मन की चिर वेदना थी। एक दिन छुटकी की बेटी ऋषिकन्या उसके पास आती है, जो उसे लेकर अपनी माँ से मिलती है। संघमित्रा दोनों को लिवा लाती है लेकिन कैंसर से पीड़ित छुटकी को वह बचा नहीं पाती।

प्रस्तुत उपन्यास में भ्रष्ट, दूषित एवं कपटभरी धार्मिकता की सामाजिक विकृतियों एवं विद्रूपताओं को चित्रित किया गया है, विशेष रूप से जैनधर्म के खोखलेपन की -लेखिका ने पोल खोल कर रख दिया है। इनका हाल में प्रकाशित उपन्यास 'सूखते चिनार' भी चर्चा के घेरे में है।

अलका सरावगी

अलका सरावगी की पहचान 'कलि कथा: बाया बाईपास' (1998) के प्रकाशन के साथ ही महिला उपन्यासकार के रूप में होती है। इस उपन्यास में उन्होंने यथार्थ और फैंटेसी के माध्यम से किशोर बाबू की कथा कही है। इस कथा में एक मारवाड़ी परिवार की पाँच पीढ़ियों का संघर्ष एवं कलकत्ता का पूरा इतिवृत्त खुलकर सामने आता है। जिसमें प्लासी के युद्ध से लेकर बाबरी मस्जिद के ढहाने तक के इतिहास की जानकारी मिलती है। उपन्यास में मारवाड़ी परिवार की स्त्रियों की घुटनभरी जिन्दगी को किशोर बाबू की विधवा भाभी के माध्यम से दर्शाया गया है। डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि "किसी राजा की रानी होने लायक यह नारी अपने वेश्यागामी पति के प्रतिरोध में कुल इतना ही कर पाती है कि राजयक्ष्मा से पीड़ित होने पर दवा खाने से इंकार कर देती है।"[61]

अपने दूसरे उपन्यास 'शेष कादम्बरी' में सरावगी ने आज के उपभोक्तावादी मूल्यों के बरक्स बीती सदी के उदारवादी मूल्यों और उसकी संस्कृति की ओर ध्यान आकर्षित किया है। जहाँ वस्तुओं का उपयोग जीवन में सौन्दर्य और लालित्य पैदा करने के लिए होता था, महज लालसा के लिए नहीं। आज का समाज सिर्फ लालसा के लिए वस्तुवादी होता जा रहा है, जिसके कारण आपसी रिश्ते लाभ केन्द्रित हो गये हैं। उपन्यास की नायिका रूबी गुप्ता 70 वर्ष की अवस्था में अपने होने का अर्थ 'परामर्श' जैसी संस्था में सोशल वर्क करते हुए तलाश करती है, लेकिन उसकी नातिन कादम्बरी की दृष्टि में इसका कोई मूल्य नहीं, क्योंकि उसका मानना है कि इससे कोई सोशल जस्टिस नहीं हासिल हो सकता। कादम्बरी रूबी गुप्ता की कहानी लिखने पर

भी पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। इस कारण रूबी के लिए वह उसकी माँ की ही तरह कष्टदायक होती जाती है। यही व्यक्ति का वस्तु हो जाने वाला नया समीकरण है।

'कोई बात नहीं' में "आज के अर्थकेन्द्रित क्षयशील मूल्यों का प्रत्याख्यान करके पुनःमानवीय मूल्यों की सार्थकता पर बल दिया है। शशांक को केन्द्र में रखकर उन्होंने प्रमाणित किया है कि आज भी सरल, निश्छल, प्रेम, सहयोग और सौहार्द्र जैसे मूल्य प्रासंगिक और सार्थक है।"[62]

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में अलका सरावगी ने कॉरपोरेट इंडिया की तमाम मान्यताओं, बिडम्बनाओं और धोखों से परिचय कराया है। उनका मानना है कि दुनिया का शासन अब सरकारों के हाथ में नहीं, कॉरपोरेट कम्पनियों के हाथ में है। जिसके चलते सिर्फ लुभावने सपने देखने के अतिरिक्त एक आम आदमी के लिए कुछ भी नहीं। के. वी. शंकर अय्यर को रिटायर हो जाने वाले उम्र के बाद भी तमाम काम हैं, भट्ट जैसे लोग इस कॉरपोरेट समाज में नये सपने और सफलताएँ तलाश करते हैं और गुरूचरण जैसे लोग सिर्फ इस अंधी दौर का मौन प्रतिरोध ही करके रह जाते हैं। यही बिडम्बना है। इसी के चलते ही सारी दुनिया कॉरपोरेट जगत के जाल में फँसली चली जा रही है - जिसकी ओर वह ध्यान दिलाती हैं।

अलकाजी का सन् 2015 में 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास प्रकाशित हुआ तथा इसका विस्तार आठ शीर्षकों के अन्तर्गत है। कलकत्ता के सेंट्रल एवेन्यू पर स्थित अस्सी परिवारों वाली 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' एक ऐसी इमारत है जो समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जिसका ढहाया जाना तय है। उपन्यास का प्रमुख पात्र जयगोविन्द है। अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् एक आत्मकथात्मक उपन्यास लिखता है जिसके पात्र का नाम उसने अपने और अपनी जीवन संगिनी दीपा के नाम पर 'जयदीप' रखा है।

'एक सच्ची-झूठी गाथा' (2018) उपन्यास को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत, मनोवैज्ञानिक, आधुनिकतावादी, आदि कई दृष्टियों से देखा जा सकता है। इस उपन्यास को तीन भागों में विभक्त कर एक नवीन प्रयोग किया गया है। इसमें आधुनिकता के नवीन निकष यथा ईमेल व इन्टरनेट के आभासी कक्षा-कक्ष की दुनिया है, जो दो अनजान व्यक्तियों को जोड़ता हुआ उनके बीच हुए बातचीत, विचारों व तर्कों के सम्मिश्रण को प्रस्तुत करता है।

सन् 2020 में अलका सरावगी का उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में विभाजन और विस्थापन की दर्दनाक अमानवीय परिस्थितियों को दर्शाया

गया है। लेखिका ने एक आम आदमी कुलभूषण की जीवनगाथा के माध्यम से पूर्वी पाकिस्तान से भागकर आ रहे लाखों की तादाद में शरणार्थियों के भयानक कष्टप्रद जीवन की सच्चाई को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। मार-काट व हिंसा का गोरखधंधा हमेशा से हमारे समाज व हमारे अपनों का नाश करता आया है। पूर्वी पाकिस्तान से आए हिन्दू शरणार्थियों पर किताब लिखनेवाले एक पत्रकार से कुलभूषण के संवाद के दौरान विस्थापन की उन भयावह परिस्थितियों की आँखों देखी कहानी बतलाई जा रही थी जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

2.2.1 हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की परंपरा

बीसवीं सदी के अंतिम दशक का स्त्री उपन्यास लेखन पहले से किए जा रहे लेखन से विशिष्ट है, जिसके विषय में रोहिणी अग्रवाल लिखती हैं कि "इस कालखण्ड का स्त्री लेखन पूर्ववर्ती लेखन से इस अर्थ में भिन्न है कि बराबरी की झोंक में पुरूष हो जाने के 'सिंड्रोम' से मुक्ति पाकर वह तटस्थ और बेबाक नजर से समाज व्यवस्था की समीक्षा कर रहा है। जाहिर है इस प्रक्रिया में पुरूष श्रेष्ठता, दंभ, स्त्री का दोयम सामाजिक दर्जा तथा स्त्री-पुरूष संबंधों को पारिभाषित करने वाली कतिपय सामाजिक-नैतिक-धार्मिक मान्यताओं एवं वर्जनाओं का खुलासा स्वयंमेव होता चला गया है।"[63] आगे वह लिखती हैं कि "सन् 1990 के बाद की महिला रचनाकार एकाग्रचित्त होकर एक ऐसी स्त्री को गढ़ रही है जो 'स्त्री-स्त्री की दुश्मन' जैसे परंपरा पोषित (उपहासास्पद) मिथों को तोड़कर 'यूनिवर्सल सिस्टरहुड' में आस्था रखती है।"[64] उनका यह भी मानना है कि "सन् 1990 के बाद की महिला कथाकार स्त्री की नियति और स्त्री-पुरूष संबंधों की रिक्ति को लेकर बिसूरने की जड़ता से उबरकर समाज के लिए कुछ पुख्ता और रचनात्मक करना चाहती है।"[65] इस तरह जहाँ एक ओर स्त्री-लेखन भय, संकोच, जड़ता, रूढ़िता एवं पारम्परिक संकुचित मानसिकता के दायरे से ऊपर उठता है वहीं दूसरी ओर तटस्थ एवं बेबाक सृजन की ओर भी बढ़ता है, जिसमें उसका स्वतन्त्र चिंतन है और स्वाधीन अभिव्यक्ति। यहीं पर ममता कालिया का कथन- ''सच्चाई ये है कि स्त्री जीवन में ज्यादा तल्खियाँ भोगती है, इसलिए वह रचनाकार की कलम के ज्यादा निकट होती है।"[66] औचित्यपूर्ण व तर्कसंगत रूप से प्रासंगिक एवं सारगर्भित हो जाती है।

महिला उपन्यासकारों ने नारी मुक्ति अभियान को अधिक महत्व दिया। इसके साथ-साथ अस्मिता के संघर्ष से शुरू हुए लेखन में मानव जीवन के सभी पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया। इन सभी में मूल रूप से नारी जीवन को ही प्रधानता दी गई। जिसमें नारी चेतना, शोषण, आपसी भेदभाव आदि के चित्र लेखिकाओं की कलम से उभरकर आई।

भारतीय नारी विमर्श अपने चरित्र में पश्चिम के नारीवाद जितना न तो अतिवादी है और न ही वह पुरूष को अपना एक मात्र शत्रु समझता है। वह नारी के व्यक्तित्व जितना ही पुरूष के व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण मानता है। नारी की प्रगतिशील मानसिकता के लिए एक सबसे बड़ी समस्या वे स्त्रियां है जो अभी तक प्रगतिशीलता की अवधारणा से परिचित नहीं हैं या पुरूष मानसिकता से ग्रस्त हैं। व्यवहारिक स्तर पर प्रश्न यही है कि नारी को उसकी प्रगतिशीलता से परिचित करवाकर उन्हें अपने हक और अधिकारों के प्रति कैसे जागरुक बनाया जाय और उनकी मुक्ति की दिशा में उनकी शक्ति का कैसे सकारात्मक उपयोग किया जाए। इसी दिशा की ओर कदम बढाती हुई महिला उपन्यासकारों ने अपनी कलम को इस दिशा की ओर मोड़ा ताकि नारी मानसिकता की तह तक जाकर उसे सशक्त बनाएं।

अर्जित धन के प्रति पुरूषों का मोह इतना अधिक होता है कि मृत्यु के बाद भी वह किसी और के हाथों न जाए - उनके अपनी औरत, अपने संतान के हाथों ही रहे - इसकी व्यवस्था उन्होंने स्त्रियो की स्वतंत्रता पर पहरे बिठाकर और परिवार का दुर्ग और मजबूत बनाकर किया। बाद में औरतें जब स्वयं अपना धन अर्जित करने लगी तब और शारीरिक, मानसिक रूप से अपने निर्णय लेने लगी तब इन प्रतिबंधों का अर्थ कुछ खास रहा ही नहीं। इन विषयों को आधार बनाकर महिला उपन्यासकारों ने समाज में जागृति लाने के लिए अपनी लेखनी का माध्यम बनाया। ऐसा नहीं है कि जीवन शैली, उन्नत सोच और आर्थिक स्वतंत्रता के कारण स्त्रियों का स्नेह ममत्व मर गया है। पहले स्त्रियां संबंध निभाती थी तो आर्थिक परतंत्रता जन्य विवशता उनके साथ रहती थी, पति आदि से विरोध भी है तो चुपचाप सहना है, निभाना है, हाथ-पांव बंधे है। अब आर्थिक स्वतंत्रता है तो उपाय बहुतेरे हैं। शिक्षित होने के कारण आत्मिक - बौद्धिक और नैतिक परिष्कार भी उनमें आया है। इस स्थिति का भरपूर प्रयोग उपन्यासों में मिलता है।

निष्कर्ष

साहित्य और समाज दोनों ही स्थानों पर नारी से जुड़ी समस्याओं को उठाया गया है परन्तु वह केवल सतही स्तर पर ही समाधान पा सकी हैं। आज भी नारी का शोषण किया जा रहा है। कदम-कदम पर वह अपमानित होती है। नारी जिससे पुरुष को स्नेह मिला, संतान मिली, उस नारी के साथ उसने जब जैसा चाहा वैसा व्यवहार किया। महिला उपन्यासकारों की रचनाओं के मूल में वे जीवन मूल्य हैं जो नारी समेत पूरी मानव जाति के हित में है। उनका लेखन एक उदार संवेदनशील और संतुलित बुद्धि से अपने चारों ओर के उस परिवेश का जायजा लेगा जो उसे प्रगति की राह की ओर ले जाता है। महिला उपन्यासकारों ने सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक बिम्ब

में चित्र गुण की प्रधानता होने के कारण चित्रात्मकता अनिवार्य होती है। मानस को झकझोर देने वाला बिम्ब विधान महिला उपन्यासकारों ने प्रयुक्त किया है जो महत्त्वपूर्ण उद्देश्य के रूप में रेखांकित योग्य है।

आधुनिक कथाकार अलका सारावगी के कथा साहित्य में नारी सम्बन्धी जिस दृष्टि का परिचय मिलता है वह भारतीय समाज में फैली हुई परम्परागत विसंगतियों का परिणाम है। स्त्री के अनंत रूपों में छिपी उसकी कसमसाहट, अपने भरे-पूरे परिवार के बीच उसका अकेलापन, निरन्तर संघर्ष के बाद भी अस्तिवहीन जीवन, परिवार के लिए निरन्तर त्याग के बाद भी बेबसी और उक्ताहट और न जाने ऐसे कितने ही नारी के रूप अलका सरावगी के साहित्य में बिखरे पड़े हैं।

संन्दर्भ:

1. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.14
2. यादव, राजेन्द्र. संपा. (नवम्बर-दिसम्बर, 1994), हंस. पृ.14
3. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.70
4. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.14
5. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.74
6. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.74
7. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.282
8. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.183
9. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.24

10. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.101
11. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.107
12. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.119
13. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.269
14. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.173, 174
15. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.267
16. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.68
17. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.69
18. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.71
19. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.72
20. शर्मा, राजेन्द्र. स्वयं प्रकाश. सं0. प्रगतिशील वसुधा. (वर्ष-05). पृ.129
21. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.277
22. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.282
23. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.243
24. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.188

25. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह- डॉ0 रेशमी रामदोनी, पृ.186
26. राष्ट्रीय सहारा. 21 सितम्बर, 2003. पृ.9
27. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.23
28. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.31
29. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.127, 128
30. रामदोनी, रेशमी. समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह. पृ.128
31. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.260
32. सोबती, कृष्णा. ऐ लड़की. पृ.74
33. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.262
34. राय, गोपाल. हिन्दी उपन्यास का इतिहास. राजकमल प्रकाशन. पृ.277
35. तिवारी, रामचंद्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, नवम संस्करण. पृ.264
36. प्रियम्वदा, उषा. भया कबीर उदास. पृ.93
37. आलोचना. 1985. वर्ष 34, अंक 75, अक्टू-दिस0. पृ.96
38. तिवारी, रामचंद्र, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, नवम संस्करण. पृ.265
39. आलोचना. 1985. वर्ष 33, अंक 72, जनवरी-मार्च. पृ.78
40. नया ज्ञानोदय. मार्च 2010. पृ.72
41. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.266
42. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.268

43. कालिया, ममता. अंधेरे का ताला. पृ.30
44. परवेज, मेहरुन्निसा. अपनी-अपनी जमीन. पृ.160-61
45. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.270
46. राय, गोपाल. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन. पृ.359
47. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.272
48. राय, गोपाल. हिन्दी उपन्यास का इतिहास. राजकमल प्रकाशन. पृ.380
49. शर्मा, नासिरा. 2009. जून विशेषांक. वाङ्मय. पृ.6
50. खेतान, प्रभा. आओ पेपे घर चले. पृ.35
51. खेतान, प्रभा. आओ पेपे घर चले. पृ.72
52. 52, तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.275
53. प्रभा खेतान और उनका साहित्य. पृ.281
54. पुष्पा, मैत्रेयी. झूलानट. पृ.05
55. पुष्पा, मैत्रेयी. झूलानट. पृ.112
56. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.279
57. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.280
58. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.283
59. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.282
60. श्री, गीतांजलि. खाली जग. आवरण पृष्ठ
61. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.285
62. तिवारी, रामचंद्र. हिन्दी का गद्य साहित्य. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. नवम संस्करण. पृ.286

63. द सण्डे इण्डियन विशेषांक. 2011. 4 सितम्बर. पृ.11
64. राय, गोपाल. हिन्दी कहानी का इतिहास. राजकमल प्रकाशन. पृ.85-86
65. अग्रवाल, रोहिणी. स्त्री लेखन: स्वप्न और संकल्प. राजकमल प्रकाशन. पृ.204
66. अग्रवाल, रोहिणी. स्त्री लेखन: स्वप्न और संकल्प. राजकमल प्रकाशन. पृ.205

तृतीय अध्याय

अलका सरावगी का रचना-संसार- तात्विक विवेचन

तृतीय अध्याय

अलका सरावगी का रचना-संसार- तात्विक विवेचन

3.1 भूमिका

रचना की दृष्टि से कहानी और उपन्यास के छह तत्व होते हैं- कथावस्तु,पात्र एवं चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देश-काल-वातावरण, शैली और उद्देश्य। कथाकार इन्हीं तत्वों से किसी एक या एकाधिक तत्वों पर बल दे सकता है, फिर भी समस्त तत्वों का सामूहिक प्रभाव पड़ता है। इन तत्वों को कहानी और उपन्यास कला की मुख्य आत्मा कहा जाता है, क्योंकि प्रत्येक तत्व अपने-अपने स्थान पर विशिष्ट और मूल्यवान है। किसी न किसी रूप और स्तर में उन तत्वों का सहारा कथाकार को अवश्य लेना पड़ता है। अलका सरावगी की बहुमुखी कथा साहित्य को तात्विक दृष्टि से समझना और परिचित कराना इस का उद्देश्य है।

कहानी और उपन्यास में कथावस्तु का स्थान मुख्य है यही। किसी रचना का वह ढांचा है जिस पर कहानी और उपन्यास निर्मित होती है। कथावस्तु का जन्म रचनाकार की उन अनुभूतियां और लक्ष्यात्मक प्रवृत्ति से होता है जिसके धरातल अथवा मूल प्रेरणा से रचनाकार अपनी कहानी का निर्माण करने बैठता है।

चरित्र चित्रण या पात्र कथा का मेरुदंड माना जाता है। कथानक के बाद चरित्र, कहानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है जिनसे कथावस्तु का आरंभ, विकास और अंत होता है और दूसरी ओर जिसे हम कहानी में आत्मीयता प्राप्त करते हैं।

कथोपकथन एवं संवाद योजना से कहानी और उपन्यास के कथानक में नाट्यात्मकता, सजीवता, स्पष्टता एवं रोचकता आ जाती है। कथोपकथन से कहानी में आकर्षण, सजीवता ओर पाठकों की जिज्ञासा वृत्ति को प्रेरणा मिलती है। कथोपकथन, कहानी और उपन्यास कला का सर्वोत्तम अंश है।

कथानक, चरित्र चित्रण और कथोपकथन की भांति वातावरण कहानी और उपन्यास का मुख्य तत्व है। पात्रों के चरित्र को यथार्थ और जीवंत रूप प्रदान करने के लिए इसका प्रयोग आवश्यक है। वातावरण के माध्यम से रचनाकार सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, स्थानगत सौंदर्य, प्राकृतिक दृश्यों आदि को रुपायित करते हुए देश काल और वातावरण की जीवन झांकी प्रस्तुत करता है।

कथा साहित्य की भाषा जीवन संदर्भों से जुड़ी हुई भाषा ही हो सकती है। यह जीवन से जुड़ी हुई होगी तो उतनी ही उसमें ताजगी, रवानगी उत्पन्न होगी। साहित्य में लिखित रूपों में भाषा शरीर की भांति है। जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा अमूर्त ही रहती है, उसी प्रकार भाषा के बिना अमूर्त और अरूप भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान नहीं की जा सकती। भाषा वास्तव में भावों की वाहिका है। शैलियों की दृष्टि से आत्मकथात्मक शैली, फ्लैशबैक शैली, वर्णनात्मक शैली, विश्लेषणात्मक शैली, संवादात्मक शैली, वार्तालाप शैली, फेंटेसी शैली, पत्र शैली, आंचलिक शैली आदि है।

वर्तमान समय में कहानी की बदलती प्रवृति और नयेपन के संदर्भ में बड़ी गंभीरता से विश्लेषण किया जा रहा है। यह नयापन व्यक्ति की बदलती चेतना और परिस्थितियों के दबाव से आया है। परिणामस्वरूप रचनाकार की एक नई जीवन-दृष्टि और विचाराधारा विकसित हुई जो कहानी में कथ्य और शिल्प के विविध स्तर पर दिखाई देती है। युवा पीढ़ी की बहुचर्चित लेखिका अलका सरावगी की कहानियों में बदलाव का यह नयापन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस उत्तर-आधुनिक समय में बदलते सामाजिक मूल्य व अछूते यथार्थ को उद्घाटित करने के लिए वे अपनी रचना-धर्मिता में कथ्य एवं शिल्प के अनके नवीन प्रयोग किए हैं।

3.2 कहानी संग्रहों का तात्विक विवेचन

कथाकार अलका सरावगी जी ने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ कहानी की रचना से किया है। अब तक उनकी लगभग चालीस कहानियां प्रकाशित हुई हैं जिनमें से पैंतीस को दो संग्रहों में समेटा गया है जिनमें पहला है 'कहानी की तलाश में' और दूसरा 'दूसरी कहानी'।

अलका जी का पहला कहानी संग्रह 'कहानी की तलाश में' सन् 1996 में प्रकाशित हुआ जिनमें कुल सत्रह कहानियां हैं। 'कहानी की तलाश में', 'हर शै बदलती है', 'बीज','मिसेज डिसूजा के नाम', 'टिफिन', 'बहुत दूर है आसमान', 'एक व्रत की कथा', 'प्रतीक्षा के बाद','सम्भ्रम', 'खिजाब', 'महंगी किताब', 'जोड़-घटाव', 'पिस्सू और कलम घिस्सू', 'उद्विग्नता का एक दिन', 'मौत का एक दिन मुअय्यन है', 'लाल मिट्टी की सड़क', 'आपकी हंसी', सभी कहानियां अपने शीर्षक को सार्थक करती हैं।

अलका सरावगी का दूसरा कहानी संग्रह 'दूसरी कहानी' शीर्षक से सन् 2000 में प्रकाशित हुआ, जिसमें अठारह कहानियां संकलित है। प्रत्येक कहानी की पृष्ठभूमि में नए-नए विषयों का समावेश हुआ है, जिसका विश्लेषण आगे किया जा रहा है। जिनमें - 'ये रह गुजर न होती', 'दूसरी कहानी', 'पार्टनर', 'एक पेड़ की मौत', 'अंधेरी खोह में', 'आक एगारसी', 'रिपेन

स्ट्रीटेर परवीन अख्तर', 'इन लोगों ने धावा बोल दिया है', 'दूसरे किले में औरत', 'कब्ज-हर', 'यह भी सही है वह भी सही है', 'वाइल्ड फ्लावर हॉल', 'मन्नत', 'कन्फेशन' आदि हैं। इनमें मानवीय व्यवहार आधे-अधूरे सामाजिक संबंधों का आकलन है।

3.2.1 कथ्य, संवाद, देश-काल-वातावरण, भाषा-शैली के आधार पर

अलका सरावगी की कहानियों का कथ्य वैविध्य से भरपूर और व्यापक फलक वाला है, जिसमें उन्होंने वर्तमान समय की नई संवेदना व मानवीय चेतना को अनेक रूपों में रूपायित किया है। अपने कहानी-कथ्य में लेखिका अछूते यथार्थ, नये मानव मूल्य, नये परिवेश तथा नैतिक प्रतिमानों की स्थापना करती हैं।

''युग की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार सोचना और उसे कार्यरूप देना ही आधुनिकता है। आधुनिकता से हमें उन रूढ़ियों को नकारने में मदद मिलती है जो हमारे विकास में बाधक बनती है। इससे नयी मान्यताओं में भी मदद मिलती है जो हमारे समाज को गति देने के लिए आवश्यक होती है।''[1] अलका सरावगी की कहानियों में आधुनिकता बोध एवं आधुनिक जीवन की विडंबनाओं से उत्पन्न जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। 'हर शै बदलती है', 'बीज', 'वाइल्ड फ्लावर हॉल' और 'दूसरी कहानी' आदि कहानियों में लेखिका जीवन सौंदर्य, जीवन के मर्म और जीवन के प्रति आस्था को नए व विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करती है। इन सभी कहानियों में लेखिका जीवन सत्य पर अधिक बल देती है और कल्पना से दूर रहकर यथार्थ जीवन में दबे सौंदर्य की खोज करती है।

'हर शै बदलती है' में लेखिका जीवन का लघु चित्र प्रस्तुत करती है लेकिन वह जीवन की समष्टि और व्यापकता का बोध कराता है। यह कहानी जिजीविषा-जीवन के प्रति आस्था की मनौवैज्ञानिक जमीन पर खड़ी है। कहानी में 'मैं' पात्र शुरू से लेकर अंत तक अपनी मनः स्थितियों और मानवीय स्वभाव की कमजोरियों का बयान करती है। ''अचानक ऐसा क्यों हो जाता है कि कोई बिल्कुल असहाय हो जाता है। बरसों तक हम जिन बातों को अनदेखा करते रहे हैं वे अचानक इतनी बड़ी क्यों हो जाती हैं कि लगने लगता है कि मरें चाहें जियें पर आगे साथ नहीं चला जा सकता?''[2] 'मैं' पात्र जीवन में निराशा देखने लगती है, इसी कारण वह अपनी प्रिय मित्र मीनाक्षी और अपने परिचित प्रशंसनीय कवि श्रीवास्तव जी से बेवजह संबंध तोड़ लेती है। लेकिन दूसरी ही तरफ उसे अपने जीवन की अपूर्णता और निरर्थकता का बोध होता है, और वह अपने जीवन की पुरानी गलतियों को सुधारकर सप्ताह के नये दिन सोमवार से अपनी जिंदगी की पुनः नयी शुरूआत करती है- ''चलो, आज सोमवार है और मुझे लग रहा है कि आज से जिंदगी की

एक नयी शुरूआत की जा सकती है। जिंदगी फिर नई हो जाती है। देखो, मेरी उदासी गायब हो गई है और मेरे मन में कोई खुन्नस भी नहीं तुम्हारे प्रति, कि तुमने कहा कि सब जानते हैं कि मेरा स्वभाव कितना खराब है। मैं भी यह जानती हूँ और फिर आज सोमवार भी है।"[3]

'बीज' कहानी भी जीवन-बोध व जीवन के प्रति आस्था-जिजीविषा की कहानी है। 'बीज' की 'वह' पात्र तीन महीने से बीमार रहती है जिसके कारण उसका स्वभाव चिड़चिड़ा और उकताया हुआ हो जाता है। पति अविनाश उससे बहुत प्रेम करता है और उसके स्वास्थ्य को लेकर हमेशा चिंतित रहता है फिर भी वह अविनाश के प्रति संदेहशील हो जाती है। जो वस्तुएं उसे पहले सुख देती थी उनके प्रति वह नकारात्मक सोचने लगती है। उसे अपनी माँ की कैंसर से और लीला मौसी की किडनी की वजह से हुई मौत व चचेरी बहन गीता का पागलपन याद आता है। इन सभी घटनाओं को याद कर वह सोचती है कि बचपन से ही हमारी पीढ़ी में पागलपन का 'बीज' मौजूद है और वह जीवन के प्रति भयभीत हो जाती है। लेकिन इसी मृत्युबोध के बीच लेखिका जीवन सौंदर्य की खोज करती है। 'वह' पात्र में अचानक जीवन के प्रति ललक पैदा होती है और बंद कमरे से बाहर निकलकर खुले आसमान को देखती है, बॉलकनी में खड़ी होकर लोगों की भीड़ को निहारती है- ''उसके मुँह से अपने आप निकला- यह क्या हो गया? सारी दुनिया चल रही है। मुझे क्या हो गया? मैं कहाँ रह गई? मैं क्यों रूक गई? वह बार-बार नीचे चलती गाड़ियों और लोगों को देखती है और बार-बार उसके मन में यही प्रश्न घूमने लगता है।थोड़ी देर बाद वह अपने दोनों हाथ बाँधकर ऊँचे किए और गरदन उठाकर आसमान में दौड़ लगाते रूई जैसे बादलों को आँख-भर देखा। अनायास उसके होठों पर मुस्कुराहट आ गई।''[4] 'बीज' कहानी की वह पात्र यथार्थ जीवन के संत्रासों के बीच छुपे आनंदरूपी बीज की तलाश करती है और वह पुनः जीवन की तरफ लौट आती है।

'मिसेज डिसूजा के नाम' कहानी में जीवन को नये रूप में देखने का नजरिया मिलता है। इस कहानी में यह आधुनिक बोध दर्शाया गया है कि किसी भी व्यक्ति के पास जीवन व्यतीत करने के स्थायी फार्मूला नहीं हैं हर व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपने जीवन को जीता है अतः किसी के भी जीवन पर अनुशासन-मर्यादा के नाम पर पाबंदी लगाना उचित नहीं है क्योंकि जीवन का अंतिम उद्देश्य अनुशासन नहीं बल्कि मनुष्यता है। आगे बढ़ने के लिए हमारे जीवन में जितना अनुशासन जरूरी है उतना ही कुछ मात्रा में आलस्य, फुरसत और निठल्लापन का होना भी जरूरी है ताकि रूककर हम अपने जीवन की दिशा और गति की सही पहचान कर सकें। कहानी की 'मैं' पात्र रेडियो की प्रसिद्ध संगीत कलाकार है और चीजों को नये दृष्टिकोण से देखने

का उसका अपना आधुनिक नजरिया है इसी कारण वह स्कूल की प्राध्यापिका मिसेज डिसूजा द्वारा उसकी छह साल की बेटी वंदिता की शिकायत करने पर उसके जीवन पर कोई पाबंदी नहीं लगाती है। क्योंकि वह जानती है कि बच्चों की चंचलता उनके बचपन का अंग है और इस पर रोक लगाकर वह अपनी बेटी के बचपन को नष्ट नहीं करना चाहती।

'वाइल्ड फ्लावर हॉल', 'कहानी की तलाश में', 'दूसरी कहानी' और 'मँहगी किताब' आदि कहानियों में लेखिका जीवन के आधुनिक बोध और जीवन सत्य को नये रूप में प्रस्तुत करती है। 'वाइल्ड फ्लावर हॉल' शिमला के एक हिल स्टेशन का नाम है वहाँ नरेटर अपने सहयोगियों के साथ पिकनिक मनाने जाती हैं। वहाँ नरेटर को अपने पति अजय व सुमन भाभी का बात करना अखरता है। वह अपने जीवन और पति के रवैए को नकारात्मक ढंग से देखती है। नरेटर को लगता है कि अजय उसके प्रति सिर्फ औपचारिकता निभा रहा है और उसे अपनी अपूर्णता का बोध होता है। लेकिन 'वाइल्ड फ्लावर हॉल' पर नरेटर छोटी दीदी व सोम के आंतरिक प्रेम-संबंधों को पहचान कर अपने आपको तलाशने में सफल हो जाती है। 'कहानी की तलाश' में भी जीवन की इसी पूर्णता और आत्मबोध को दर्शाया है। 'मैं' पात्र अपने ऊँचे सरकारी पद के दंभ में रहता है, अपने दायरे से बाहर निकल कर जीवन को कभी नहीं देखता। अतः उसके जीवन की कोई अलग कहानी नहीं बन पाती है जिसका अभाव उसे अपने रिटायरमेंट के बाद अखरता है- ''मैंने खुद बड़ी-बड़ी मूँछों और चश्मे से अपना चेहरा ढक रखा है। ऊपर से शायद रौब के लिए पाइप भी पीता हूँ । मुझे ऐसा क्यों लग रहा है कि मैंने जान बूझकर दुनिया से दूर रहने और दुनिया को दूर रखने के लिए अपने को इस तरह छुपा लिया है? यह भी तो हो सकता है कि मेरे जैसे आदमी इतने 'स्टीरियोटाइप्ड' हों कि मुझमें कोई नयापन नजर नहीं आता हो।''[5] अपने आस-पास के सभी लोगों के जीवन में नरेटर को कुछ नया नजर आता है। सबकी अलग-अलग कहानी बनी हुई है लेकिन उसके जीवन की कोई कहानी नहीं है। अतः अपनी उम्र के अंतिम पड़ाव में अपनी कहानी तलाशने के लिए नये सिरे से सबके बीच रहकर पुनः अपने जीवन को प्रारंभ करता है।

'दूसरी कहानी' में जीवन मर्म, सौंदर्य और सार्थकता को नये रूप में प्रस्तुत करती है। जीवन स्थायी और तटस्थ नहीं रहता बल्कि हरपल बदलता रहता है और इस बदलाव में ही जीवन की सार्थकता और सफलता निहित है। अपर्णा शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर अपने बेटे सुदर्शन के नौ वर्ष का होने पर अपने जीवन की एक कहानी लिखती है जिसमें माँ व बेटा एक-दूसरे से बेहद प्रेम करते हैं। लेकिन फिर भी दोनों के मध्य एक दुःख अनायास कायम रहता है। इन नौ वर्षों के अंतराल में अपर्णा सुदर्शन की जीवन-दशा सुधारने का अथक परिश्रम करती

है कभी निराश नहीं होती। अपर्णा की वही कहानी सुदर्शन के पंद्रह साल का होने पर अधूरी सी प्रतीत होती है। पंद्रह साल का होने पर सुदर्शन सामान्य लोगों से ज्यादा समझदार और विवेकशील हो जाता है। ''पहले देखो मैं कितनी परवाह करता था कि कोई लड़का मुझे तुम्हारे हाथों से खाता देखेगा, तो मेरा मजाक बनायेगा। अब मुझे कोई परवाह नहीं है। देखे तो देखे। पहले मैं डरते-डरते क्लास में बोलता था- न जाने कहाँ अटक जाऊँ। सारे लड़के साँस रोककर सुनते थे। अब देखो, मेरा हकलाना काफी ठीक हो गया है। हमें लोगों की परवाह करना छोड़ना ही होगा।''[6] सुदर्शन में जीवन के प्रति नयी ऊर्जा और नया आत्मविश्वास पैदा हो जाता है, जीवन के प्रति अपार संभावना वाले विचार सुनकर अपर्णा का सारा तनाव समाप्त हो जाता है। जो दुख दोनों के मध्य पहले अनायास ही घुस आया था वह अब समाप्त हो जाता है। अलका सरावगी की यह कहानी वर्तमान जीवन की विसंगतियों के बीच जीवन के प्रति नया आत्मविश्वास पैदा करती है कि जीवन का सौंदर्य समस्याओं से घबराकर डरने में नहीं बल्कि समस्याओं का सामना करने में है जैसा कि अपर्णा ने किया।

'मंहगी किताब' कहानी में इन्हीं आधुनिक जीवन की विसंगतियों और निरर्थकता को नये रूप में उद्‌घाटित किया है। कहानी की सुशीला पात्र बहुत ही कूटनीतिक गुणों से संपन्न महिला है जो बनावटी आधुनिकीपन को बहुत महत्व देती है और दूसरे लोगों पर अपना प्रभाव जमाकर व्यक्तिगत स्वार्थों व कार्यों को पूरा करती है। वर्तमान समय की इसी आधुनिकता के बीच व्यक्ति के बनते इसी दोहरे चरित्र को लेखिका 'वह' लड़की पात्र के माध्यम से उजागर करती है। 'वह' पात्र प्रारंभ में सुशीला जी को अपना आदर्श मानकर उनका अनुकरण करती है। लेकिन उसके चरित्र की असलियत को पहचानकर 'वह' अलग हो जाती है- यही अपने समय को पहचानने का आधुनिकता-बोध इसमें दर्शाया है।

आज के कहानीकार के संदर्भ में रामदरश मिश्र लिखते हैं - ''आज का कहानीकार आज के पाठकों के लिए लिखता है जो स्वयं सर्जक के साथ जीवन की जटिलताओं को समझने और सुलझाने में सचेष्ट है, जो कला के इस गहन दायित्व को समझते हैं कि कला जीवन के बुनियादी सत्यों को उद्‌घाटित कर जीवन को सही ढंग से समझने वाली दृष्टि का विकास करती है। वह केवल आनंद ही नहीं देती वरन् हमारी जीवन चेतना, हमारे जीवन बोध को जाग्रत करती है, हमें आधुनिक बनाती है।''[7] इस दृष्टि से लेखिका की 'आक एगारसी', 'कनफेशन', 'पार्टनर', 'मन्नत' आदि कहानियाँ हमें अपने समय को समझने की नयी दृष्टि देती हैं और हमारी चेतना को समकालीन आधुनिक भावबोध से जोड़ती हैं।

'कनफेशन' कहानी में लेखिका ने मीरा पात्र द्वारा यह दर्शाया है कि जीवन में अपराधों का बदला लेने से ज्यादा जरूरी है कि उन अपराधों को स्वीकार करना लेकिन इस मानवीय जीवन में बहुत कुछ ऐसा घटता है कि अन्य लोगों को बाहरी रूप से तो वह बड़ा अपराध दिखाई पड़ता है जबकि वास्तविक रूप में वह कोई अपराध नहीं होता है और न ही उनका कनफेशन किया जा सकता है। कहानी की पात्र 'मीरा' के पापा अपने मित्र की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी नीता के साथ भावात्मक लगाव रखते हुए उसकी हरसंभव मदद करते हैं। पापा के इस कर्तव्य बोध पर उनके परिवार में तनाव फैल जाता है। मीरा अपने पापा से हुए अपराधों के कनफेशन पर कहानी लिखना चाहती है लेकिन उसे पूरा नहीं कर पाती है। पापा, मीरा की कहानी को पढ़कर उस पर टिप्पणी लिखते हैं- ''मैं कहना चाहता हूँ कि यह सच है कि जिंदगी में बहुत जगह बहुत घिनौनापन है। बुराई है। लेकिन अच्छा होता कि तुम्हारी कहानी उन लोगों पर लिखी जाती जिनका अपराध सिर्फ इतना ही होता है कि वे समाज के दिए हुए, माने हुए रिश्तों के बाहर कुछ सुंदर पा लेते हैं। लेकिन सब लोग यानी सारी दुनिया उनसे कनफेशन कराना चाहती है, क्योंकि उसे शांति तभी मिलेगी जब वह उस रिश्ते को अपराध सिद्ध कर देगी। मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि ऐसा कोई कनफेशन हो ही नहीं सकता क्योंकि न उनके लिए शब्द मिलेंगे और न ही वाक्य बनेगा।"[8] और यहीं पर मीरा की कहानी समाप्त हो जाती है। अलका अछूते जीवन यथार्थ की श्रेष्ठ कथाकार है और जीवन सत्य पर अधिक बल देती हैं।

अलका सरावगी की कहानियों में समकालीन जीवन की विसंगतियों और अछूते सामाजिक यथार्थ का चित्रण सफलता के साथ हुआ है। अपनी कहानियों में लेखिका ने सामाजिक जीवन की स्थूल घटनाओं के साथ वर्तमान समय के अनकहे, अनदेखे क्षणों और पहलुओं को उजागर किया है। 'बहुत दूर है आसमान', 'टिफिन', 'आक एगारसी', 'आपकी हंसी' और 'एक और नमकहराम' आदि कहानियों में अपने समय का सही तथ्यान्वेषी यथार्थपरक अन्वेषण किया है। इन कहानियों में लेखिका ने जो समस्याएँ उठाई हैं उनका संबंध आज की परिस्थितियों से है।

'बहुत दूर है आसमान' आधुनिक समय में समाज के नहीं बदल पाने की विडंबना और उसके फलस्वरूप परिवेश में पैदा होती असुरक्षित स्थितियों को उल्लेखित करती है। निखिल और उसकी पत्नी 'मैं' कलकत्ता शहर में बड़ी 'मल्टी-स्टोरिड' इमारत में अपनी चार साल की बेटी गुल्लू के साथ रहते हैं, कोई अनजान व्यक्ति उनके घर की दीवार पर 'गुल्लू' के बारे में अश्लील शब्द लिख देता है। जिसे पढ़कर 'मैं और निखिल' अपनी बेटी के जीवन को लेकर बहुत ही भयभीत हो जाते हैं, ''अनजाने डर, दबाई हुई आशंकाएँ, तरह-तरह के संदेह सब एक साथ

चढ़कर उसका दम घोंटने लगते। एक विराट भय उसे सुन्न कर जाता। ... आखिर कौन है वह नीच जो इतना गंदा इरादा रखता है? कोई तो है, जो हमारे आस-पास ही मौजूद है, पर हम उसे नहीं पहचानते। एक आठ साल की बच्ची के लिए इतनी गंदी-गंदी बातें हमारे ही घर के बाहर लिखने की किसकी हिम्मत हो सकती है।''[9] 'मैं' पात्र चाहकर भी गुल्लू को घर के बाहर खेलने-कूदने की छूट नहीं देता, गुल्लू के जीवन की चंचलता और गति पर रोक लग जाती है। उन्हें अपने नजदीकी हर आदमी पर शक होने लगता है। इन दोनों पात्रों की मनोदशा द्वारा लेखिका स्पष्ट करती है कि एक तरफ हमें लगता है कि हमारा समय आधुनिक हो गया है लेकिन दूसरी ही तरफ समाज में पनपती बुराइयाँ, विषमता और विद्रूपताओं को देखकर हमारी आधुनिकता हमें भद्दी नजर आती है। जहाँ व्यक्ति अपने परिवेश में ही सुरक्षित रहने से दूर है।

'टिफिन' कहानी में इसी सामाजिक विषमता के बदलते रूप को दूसरी तरह से दर्शाया है। सारिका अपनी दादी को बताती है कि स्कूल में विद्या कभी अपना टिफिन नहीं लाती हैं उसे बहुत पॉकेट खर्च मिलता है उसी से कुछ खरीदकर खा लेती है और हमेशा गुमसुम रहती है। विद्या का परिवार हमेशा अर्थ केंद्रित रहता है और विद्या को भरपूर पॉकेट खर्च देने में ही अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह मानते हैं, विद्या की मनः स्थिति में बढ़ते जा रहे अकेलेपन और घुटन की पीड़ा से उनको कोई सरोकार नहीं है। लेखिका विद्या के परिवार के माध्यम से स्पष्ट करती है कि पूँजीवादी व्यवस्था के चलते मूल्यों का ह्रास और संबंधों का विघटन हो रहा है। जिससे जीवन में घुटन, अंतर्विरोध और जटिलता बढ़ती जा रही है।

''आधुनिक कहानीकार की दृष्टि अनके अर्थों में व्यापक हुई है, फलतः उसकी कहानी कला में व्यक्ति, समाज तथा अन्य मानवीय संबंधों पर निश्चित विचार, स्पष्ट सहानुभूति तथा निर्णय देने की दृष्टि उलझ गई है। उसकी लक्ष्यात्मक दृष्टि से झिझक उत्पन्न हुई इसके स्थान पर कहानी में आत्मविश्लेषण, आत्मचिंतन और मानसिक ऊहापोह बढ़ा और कहानी अपने समग्र रूप में अस्पष्ट और अस्थायी अवस्था में पूर्ण होने लगी।''[10]

'आपकी हँसी' मानवीय संवेदना की टूटती विडंबना और विसंगतियों को नए रूप में प्रकट करती है। नरेटर अपने कुछ शहरी मित्रों के साथ गांव में नत्थू बाबू के घर पिकनिक मनाने आते हैं। नत्थू बाबू के घर नरेटर एक ऐसे व्यक्ति को देखता है जो बहुत ही सरल स्वभाव और भोली सूरत का है और उसकी पत्नी उसे छोड़कर किसी पराए व्यक्ति के साथ भाग जाती है। भोला व्यक्ति शहरातियों को अपने घर आया देखकर बहुत प्रसन्न होता है और उनकी नौकरों की तरह सेवा करता हुआ हर समय हँसता रहता है। शहरी लोग उससे बात करना पसंद नहीं

करते और उसके हँसने की क्रिया को 'पागल' की संज्ञा देते हैं। पत्नी द्वारा छोड़कर चली जाने वाली घटना पर सभी शहरी ठहाकामार कर हँसते रहते हैं। "मैंने आश्चर्यचकित होकर कहा 'पगला' वह क्या आपको पागल दिखता है? इस पर मेरे वे मित्र हँसते-हँसते दोहरे हो गए। ऐसे लगा जैसे उन्हें कोई दौरा पड़ गया हो... हँसी थमने पर बोले, दरअसल आपकी ही तरह पागल है वह। इसीलिए आपको तो 'नार्मल' ही लगेगा न' उन्होंने फिर एक जोरदार ठहाका लगाया और बोले- लेकिन पगले की बीबी बड़ी सुंदर थी। किसी यार के साथ भाग गई। अच्छा भला आप ही बताइए, बिना पागल हुए कोई इतना हँस सकता है? कहकर उन्हें फिर हँसी का दौर पड़ गया।"[11] शहरी पात्रों के माध्यम से लेखिका आधुनिक जीवन की विसंगतियों और संवेदनहीनता को उजागर करती है। 'हँसना' इस कहानी कथ्य के केंद्र में है जो कहानी के फलक को अर्थ विस्तारित करता है और व्यक्ति के पतित होते नैतिक चरित्र और मानवीय मूल्य को उद्‌घाटित करता है। ग्रामीण युवक का हँसना उसके सरल स्वभाव, सहृदयता और शहरी व्यक्तियों के प्रति उसकी आत्मीयता को दर्शाता है जबकि शहरी व्यक्तियों का ग्रामीण युवक की दुखद घटना पर हँसना उनके स्खलित होते मानवीय मूल्य, संवेदनहीनता, उदण्डता और निष्ठुरता को दर्शाता है।

'एक और नमकहराम' में भी इसी संवेदनहीनता को उजागर किया है। आज के आधुनिक समाज में प्रेम व भावात्मक लगाव जैसे मूल्यों का कोई मतलब नहीं रह गया है, हर रिश्तों व संबंधों की गहराइयों को पूँजी की संपन्नता की बराबरी से जोड़कर देखा जाता है। रमाकांत दरबान को तीनों बहनें प्रेम से 'सितार की खँटी' कहती थी और रमाकांत भी उन्हें अपनी बेटियों के समान प्रेम करता था। लेकिन उनका पापा अपने को ऊँचे दर्जे का मानता है इसलिए अपनी बेटियों को रमाकांत दरबान के साथ खेलने पर मना करता है और रमाकांत दरबान को डाँटता हुआ 'नमक हराम' बोलता है। होली के अवसर पर जब माँ अपनी बेटी रजनी को बैलून फुलाने पर डाँटती है तो छुटकी (छोटी बच्ची) समझती है कि यह भी 'नमक हराम' है।

"कहानी के साथ समय का कुछ अजीब सा संबंध है। कहानी शायद समय की कला है, समय के साथ कहानी अनेक प्रकार की कलाएँ दिखाती है। कभी वर्षों को समेटकर एक क्षण में बाँध देती है, कभी क्षण को खोलकर वर्षों में फैला देती है, कभी समय के दायरे को तोड़ती है तो कभी टुकड़ों को जोड़कर एक दायरा बनाती है।"[12] 'आपकी हँसी, 'आक एगारसी', 'न्यू ईयर्स ईव' आदि कहानियों में लेखिका ने अपने समय के समूचे तंतु-जाल को समेटने का प्रयास किया है। 'आक एगारसी' कहानी यथार्थ अन्वेषण की प्रक्रिया पर एक विमर्श है जो व्यक्ति को अपने समय की सच्चाईयों से साक्षात्कार करवाती है। इस कहानी में आगे आने वाले समय की गंभीर

समस्याओं पर चिंतन किया है। आक एगारसी एक पात्र का नाम है जो अपने बारे में नरेटर को बताता है-''मैं आपकी पृथ्वी का ही वासी हूँ , किंतु आज की पृथ्वी का नहीं, भविष्य की पृथ्वी का वासी। मेरा समय आपसे सौ साल आगे है।''[13] और ''मेरे नाम का अर्थ भी यही है 'आ' का अर्थ आने वाला और 'क' का अर्थ कल। 'एगारसी' यानी आपसे ग्यारह पीढ़ियों बाद का मनुष्य''[14] नरेटर- एगारसी को भविष्यद्रष्टा मानकर उससे तरह-तरह सवाल करता है, पिता के बारे में पूछने पर एगारसी बताता है- ''हमारे यहाँ पिता का अर्थ सिर्फ वीर्य है जो कोई औरत एक सुंदर, बुद्धिमान लड़की पैदा करने के लिए बैंक से लेती है। वैसे मैं जानता हँ कि मेरे पिता मुझसे छह पीढ़ियों पहले एक महान वैज्ञानिक थे जिन्होंने विज्ञान का इस्तेमाल दुनिया को नष्ट करने के लिए या लोगों को नई चीजों के प्रति कभी न बुझने वाली तृष्णा जगाने के लिए नहीं बल्कि इस दुनिया को सुंदर व स्वस्थ बनाने के लिए किया था।''[15]

आक एगारसी स्पष्ट करता है कि आपकी पीढ़ी ने विज्ञान का हमेशा दुरूपयोग किया है। वह वर्तमान समय में भ्रूण हत्या, बढ़ते भ्रष्टाचार, पतित होते नैतिक मूल्य, शोषण व अन्याय जैसी गंभीर समस्याओं पर चिंतन करता हुआ नरेटर को बताता है कि वर्तमान पीढ़ी ने प्रकृति व मानव जीवन के सभी नियमों को तोड़कर अपने समय को बहुत ही पेचीदा और मूल्यहीन बना दिया है जिसका परिणाम आने वाली पीढ़ियाँ भुगतेगी। एगारसी पात्र के माध्यम से लेखिका यह भी स्पष्ट करती है कि वर्तमान समय में जो व्यक्ति अपना कार्य ईमानदारी से कर रहा है, उसे अपमानित किया जाता है, इसी कारण से नरेटर के मित्र को कार्यालय से निकाल दिया जाता है। एगारसी पात्र के माध्यम से लेखिका वर्तमान पीढ़ी की गलत नीतियों से उपजी समस्याओं का भविष्य पर पड़ने वाले दुष्परिणामों का विश्लेषण किया है। 'आक एगारसी' पात्र के द्वारा लेखिका अपने समय को देखने की दृष्टि देती है। एगारसी इस कहानी में भविष्यद्रष्टा और चेतना बनकर आया है जो वर्तमान पीढ़ी को अपनेसमय व भविष्य का सही दिग्दर्शन करा सके।

'उद्विग्नता का एक दिन', 'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर', 'इन लोगों ने धावा बोल दिया है' और 'दूसरे किले में औरत' आदि कहानियों में लेखिका अलग-अलग रूपों में सामाजिक समस्याओं को उठाया है। ''रिपन' स्ट्रीटेर परवीन अख्तर' में कलकत्ता जैसे महानगर में आज के सभ्य समाज के बीच पनपती सांप्रदायिकता व जातिभेद के दंश को संवेदनशील तरीके से उठाती है। अंजलि चौधरी कॉलेज के जमाने से परवीन अख्तर की अच्छी दोस्ती है। परवीन अख्तर सुशिक्षित है और कलकत्ता शहर के 'रिपन स्ट्रीट' पिछड़े इलाके में रहती है। वह अपना घर बदलना चाहती है अतः अपनी सभी सहेलियों को अक्सर घर ढँढ़ने को कहती है इसी कारण

धीरे-धीरे उसका नाम 'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर' पड़ जाता है। परवीन अख्तर मुसलमान जाति की होने के कारण कोई भी उसे घर देने को तैयार नहीं होता है। अंजलि के मामा इसी वजह से अंजलि को परवीन अख्तर से कोई संबंध नहीं रखने की सलाह देते हैं- ''मामा चौंक पड़ा- परवीन? क्या नाम है तुम्हारी सहेली का? परवीन अख्तर है मामा। उसके पिता गलीचों का व्यवसाय करते हैं।... लेकिन वह तो मुसलमान है। तुम्हारी भांजी से कहो कि ऐसे-वैसे लोगों से दोस्ती न रखें- ऑल मुस्लिम्स आर फैनैटिक्स; सारे मुसलमान कट्टर धर्मांध होते हैं।''[16] परवीन को इस बात का एहसास हो जाता है। इसी कारण वह अंजलि चौधरी को बिना बताए शादी कर लेती है। पंद्रह साल बाद मिलने पर पुनः परवीन अख्तर उसे मकान ढँढ़ने की बात करती है। परवीन द्वारा लेखिका वर्तमान समाज में फैलती सांप्रदायिकता व जातिभेद की गंभीर समस्या को सामने रखती है।

'इन' लोगों ने धावा बोल दिया है', रोजगार की तलाश में ग्रामीण परिवेश से शहरों में आकर कष्टकारक जीवन व्यतीत करते लोगों की स्थितियों को उजागर करती है। श्रीमती शीला तयाल अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका हैं और कलकत्ता महानगर के तीन सौ साल पूरे होने पर अंतरराष्ट्रीय पत्रिका के लिए 'कलकत्ते की अर्थव्यवस्था-1918 से अब तक: विगत गौरव की कथा।' विषय पर लेख लिखना चाहती है, जिसकी दृष्टि उसे अपने घर में काम करने वाली लक्खी नौकरानी से मिलती है, जो रोज अपने बीमार पति, सास व छोटी बेटी को छोड़कर भीड़भाड़ भरी बस में अनेक कष्टों को झेलते हुए बीस किलोमीटर दूर से श्रीमती शीला तयाल के घर काम करने आती है। लक्खी का जीवन एक मशीनी पुर्जे के समान बनकर रह जाता है- ''उफ! शीला दी, जितना कष्ट मुझे इस भीड़ भरी बस में बैठकर कलकत्ते आने-जाने में होता है, उतना तो जीवन में किसी चीज के लिए नहीं होता। हाड़-हाड़ टूटने लगता है।"[17] कलकत्ता के सभ्य-शहरी लोगों का मानना है कि ये लोग अवैध रूप से संपूर्ण कलकत्ता पर अधिकार जमाने लगे हैं। अतः किसी सरकारी नियम के तहत इन्हें गिरफ्तार किया जाए। "पहले तो उत्तर कलकत्ते में ही आस-पास के गाँवों से आए 'भिखमंगे' दिखाई देते थे पर अब 1930 में चौरंगी, पार्क स्ट्रीट के फिरंगी इलाकों पर भी इन लोगों ने धावा बोल दिया। बहुत जरूरी है कि एक ऐसा बिल पास किया जाए कि इन्हें गिरफ्तार कर इनके ठिकानों पर पहुँचा दिया जाए।"[18] लेखिका स्पष्ट करती है कि भले ही तीन सौ सालों में कलकत्ता ने अपना पूर्ण विकास कर लिया हो लेकिन लोगों की स्थिति आज भी दयनीय बनी हुई है। स्पष्ट है कि सन 1918 से अब तक अर्थात आधुनिक युग में भले ही हम विकास के नये पैमाने तय कर लिया हो लेकिन लक्खी जैसी औरतों की स्थिति में कोई बदलाव

नहीं आया है। बावजूद विकास के नाम पर इन बेबस-मजबूर लोगों को अपने रोजगार से बेदखल और विस्थापित किया जा रहा है।

बदलते समकालीन सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में आज की हिंदी कहानी ने युगीन प्रवृत्तियों को किस तरह से व्यक्त किया है इस संदर्भ में ऋषिकेश लिखते हैं- ''इसके लिए कथाकारों के मन में वे समस्याएँ अवश्य उठनी चाहिए जो आने वाले कल का आभास दे सकें। किसी पुरानी इमारत को ढहते देखना सत्य का एक अंश है, पर पूर्ण सत्य वह तभी होगा, जब हम इसको देख सकें कि ढह जाने के बाद आखिर उस जगह की नींव कैसे खुदेगी और खड़े होने वाले ढाँचे का प्रारूप क्या होगा?''[19]

अलका सरावगी ने 'दूसरे किले में औरत', 'एक और नमक हराम', 'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर' आदि कहानियों समकालीन जीवन में पनपती सामाजिक विषमता को उठाते हुए भविष्य के प्रति सजग रहने की चेष्टा करती है।

अलका सरावगी की कहानियों में स्त्री-जीवन की विडंबना और अस्मिता-बोध से जुड़े सभी पक्षों का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता और गहनता के साथ हुआ है। लेखिका ने स्त्री-जीवन की आशाओं, आकांक्षाओं, संघर्षों और स्वप्नों का यथार्थ चित्रण मुख्यतः दो तरह से किया है। प्रथमः उन्होंने भारतीय समाज की रूढ़िवादी व्यवस्था के बीच परंपरा वमर्यादा के नाम पर दयनीय व घुटन भरा जीवन व्यतीत करती स्त्री-जीवन की विडंबना को उठाया है- 'ये रहगुजर न होती' में नरेटर की दादी, माँ व अन्य स्त्रियाँ बाबा की तानाशाही के चलते अपने ही घर में पराधीनता का जीवन गुजारने को विवश हैं। ''उनसे बदला लेने के लिए आपने उनकी माँ को- अपनी औरत को तीन साल इस कमरे में कैद रखा, ताकि वह किसी से न मिल सके। वह तीन साल तक अपने कमरे में ले जाए जाने के लिए कहती रही, पर आपने उनकी एक नहीं सुनी।''[20]

'एक व्रत की कथा' और 'लाल मिट्टी की सड़क' कहानी में लेखिका एक बंद भारतीय समाज में स्त्री होने की विडंबना और उससे जुड़े अपमान को दर्शाती है। दोनों कहानी की 'मैं' पात्र बचपन से ही अपनी दादी व माँ के जीवन को पुरुषों की मर्जी के अनुसार चलता देखती है। उनके जीवन की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं रहती है। 'एक व्रत की कथा' की पात्र अपनी माँ व सास के जीवन को परंपरा के नाम पर हमेशा दबा हुआ देखती है। कोई भी स्त्री पुरुषों के पहले खा, सो नहीं सकती है तो 'लाल मिट्टी की सड़क' की वंदना पात्र बचपन से ही अपनी माँ के जीवन को अपने पिता के बहुत ज्यादा दबाए जाने के सामने निःसहाय व दबा-कूचला देखती है- ''बचपन से ही उसने माँ को पिता की प्रखर बुद्धि के सामने पुरुष की श्रेष्ठता को बिना प्रतिवाद के स्वीकार

करते देखा था। माँ स्वयं धन्य भाव से ही पिता की हर मर्जी चलने देती थी। पीड़ित होने का भाव माँ में बहुत कम ही नजर आता था। वह तो खुद बड़े होते-होते जब उसने अपनी मर्जी की निरंकुशता को समझा, तो वह अपने को कमजोर पक्ष में पाया- उसे अपने एक दुर्बल अस्तित्व यानी एक औरत होने का अर्थ समझ में आने लगा और साथ ही दिमाग में यह प्रश्न भी यदि मैं लड़का होती तो।''[21]

'एक पेड़ की मौत' में जगन्नाथ बाबू की माँ अपने पति की मौत के बाद भारतीय समाज की भोंड़ी परंपरा व मर्यादा के चलते अमानवीय जीवन व्यतीत करती है। ''उनकी माँ ने विधवा होने पर अनाज, नमक और चीनी खाना तथा चप्पल पहनना छोड़ दिया था। जिस लगन से उन्होंने अपने पति की सेवा की थी, उससे भी अधिक दृढ़ता से उन्होंने अपने कुल की कई सौ साल हुई एक सती- जमुली सती- के प्रचार-प्रसार में अपना जीवन लगा दिया था।''[22] लेखिका स्पष्ट करती है कि भारतीय समाज में स्त्री को हमेशा ही नजरअंदाज करके रखा गया है, और पुरुष की श्रेष्ठता हमेशा समाज पर हावी रही है उसी की परिणति नारी-जीवन की विडंबना है। 'एक और नमक हराम' की रजनी अपने पापा के डर से खेलने-कूदने के लिए घर से बाहर नहीं निकलती है। 'टिफिन' कहानी की विद्या घर की चारदीवारी के बीच अकेलेपन व तनाव भरा जीवन व्यतीत करने को मजबूर है। 'बहुत दूर हैआसमान' में नरेटर अपनी आठ साल की बेटी गूल्लू के जीवन पर लगी रोक देखकर स्त्री-जीवन की विडंबना के बारे में सोचती है- ''पर आह! क्या यही! क्या यही जिंदगी है लड़कियों की। क्या मेरी गुल्लू अपनी मर्जी से खेल-कूद नहीं सकती। क्या लड़कियों को इतना भी अधिकार नहीं? तो क्या मैं यह मान लूँ कि लड़कियों को बचपन से ही खुली हवा नहीं मिल सकती।''[23] स्त्री-जीवन की इसी विडंबना को लेखिका 'पार्टनर' कहानी में प्रतीकों के माध्यम से दर्शाती हैं- चिरमठी का पेड़ स्त्री के मामूलीपन का प्रतीक है जबकि केवड़ा संपन्नता और पुरुष की श्रेष्ठता का प्रतीक है। भारतीय समाज की रूढ़िवादी परंपरा का प्रतीक है जिसकी बेल में स्त्री का जीवन उलझा हुआ और पराधीन है।

लेकिन दूसरी तरफ लेखिका अपनी कहानियों में स्त्री-विमर्श को दूसरा आयाम देती है अपने पात्रों के माध्यम से वह रूढ़िगत परंपरा और मर्यादा का विरोध करती है, अपने अस्तित्व व अस्मिता की तलाश करती है। 'एक व्रत की कथा' की 'मैं' आधुनिक विचारों की है अतः वह परंपरा का अतिक्रमण कर 'बछवारस' उपवास का विरोध करती है -अरे भूख लगी हो, तो खाना ही धर्म है। औरत हो या आदमी। पिता व पति की प्रत्येक नकारात्मक बातों का तर्क पूर्ण प्रतिकार करती है। 'लाल मिट्टी की सड़क' भारतीय समाज की रूढ़िवादी व्यवस्था के बीच अपने अस्तित्व

और अस्मिता-बोध की तलाश करती स्त्री का वर्णन है। इसमें लेखिका ने बताया है कि वर्तमान समय में स्त्री के समक्ष दो बड़ी समस्याएँ हैं, पहली-इस बंद सामाजिक व्यवस्था के बीच अपनी अस्मिता की तलाश करना और- दूसरी इस अस्मिता-बोध को तलाशने की प्रक्रिया के बीच अपने सामाजिक संबंधों को भी बचाए रखना। वंदना बचपन से ही अपनी दादी व माँ के जीवन को पिता की निरंकुश मर्जी के अनुसार चलता देखती है, वह जैसे-जैसे बड़ी होती जाती है समाज में जगह-जगह स्त्री होने की दुर्बलता का सामना करना पड़ता है, लेकिन वंदना अपने ढंग से उसका विरोध भी करती है। महावारी के दिनों में वह माँ की नाराजगी और पिता की अप्रसन्नता के बावजूद अपनी जिद से घर में पूरी स्वतंत्रता के साथ रहती है। अपने आपको दुर्बल मानने से इंकार करती है। ''क्या एक व्यक्ति के रूप में मेरी कोई सत्ता नहीं। जिस एहसास को वह वर्षों से जीवन के अर्थ की गहरी खोज के रूप में देखती आई थी, वह क्या सिर्फ एक कमजोरी भर है... बहुत पहले एक दिन 'यशोधरा' निकालकर 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी' और रामायण निकालकर 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी... पंक्तियाँ काट दी थीं। यह ठीक है कि वह एक बचकाना विद्रोह था, पर कहीं अपने को दुर्बल न मानकर जीने की चाह भी तो थी।''[24] सुरेश से शादी के बाद भी वंदना अपनी पढ़ाई जारी रखती है, सुरेश की हर गलत बात का प्रतिकार करती है- पिता से लेकर पति के घर तक अपनी दबती अस्मिता को देखकर वंदना को अपने जीवन की निरर्थकता का बोध होता है और अंततः वह अपने जीवन की तलाश व अस्मिता-बोध को जानने के लिए 'लाल मिट्टी की सड़क' पर निकल जाती है। ''फिर चली आई हूँ मैं अकेले- बिना किसी पुरुष के पिता नहीं, पति नहीं, पुत्र नहीं.... भले ही इस बार एक दिन के लिए ही पर यह भी क्या कम है? वंदना का दिमाग अब पूरी तरह चेतकर जैसे जिंदगी का हिसाब ले रहा था।''[25]

'टिफिन' कहानी में भी लेखिका स्कूल में पढ़ने वाली सारिका के माध्यम से नारी-अस्मिता को दर्शाया है। सारिका कहानी में राजेंद्र यादव का 'सारा आकाश' पढ़कर अपनी दादी से प्रश्न करती है- ''अच्छा दादी, बताओं मैं क्यों पढ़ रही हूँ? मुझे भी वही करना है न जो तुम और माँ बिना पढ़े कर रही हो? फिर क्या फायदा पढ़ने लिखने से 'सारा आकाश' की प्रभा भी पढ़ी लिखी है। पर उसका पति व ससुराल वाले कितना तकलीफ देते हैं। उसका पढ़ा-लिखा होना ही उसका सबसे बड़ा दोष है।''[26] वंदना व सारिका पात्र के माध्यम से लेखिका नारी-जीवन की विडंबना व उनके अस्मिता-बोध को तलाशती है।

अलका सरावगी की कहानियों में समाज में व्यक्ति के टूटते हुए संबंधों का यथार्थ चित्रण हुआ है। 'ये रहगुजर न होती' में संयुक्त परिवार के विघटन, टूटते मानवीय मूल्य और पारिवारिक

अंतर्विरोध को दर्शाया है। 'खिज़ाब' की दमयंती एक ऐसी आत्मकेंद्रित महिला है जो स्वयं स्वतंत्र रहना चाहती है, लेकिन वही स्वतंत्रता अपने परिवार के लोगों-बेटे, बहू और अपनी पुत्री गीता को नहीं देती है अतः सभी उससे दूर हो जाते हैं। ''दमयंतीजी ने प्रेम और स्वतंत्रता में स्वतंत्र रहने का चुनाव कर लिया है। अपने इर्द-गिर्द देखकर उसे कई बार महसूस होता है कि प्रेम सारी सहूलियतें और सुरक्षाएँ भले ही दे सकता है, पर स्वतंत्रता छीन लेता है। संबंधों की निकटता से सुरक्षा तो जरूरी है ही पर उतनी ही घुटन भी है।''[27] यही मानवीय जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है, दमयंती प्रेम और स्वतंत्रता में से स्वतंत्र रहने का चुनाव करती है इसी कारण हर प्रकार के सामाजिक संबंधों से दूर हो जाती है। 'संभ्रम' की कनक मौसी भी अपने प्रति लोगों के प्रेम को तो स्वीकारती है लेकिन अपने ही देवरों के प्रेम को नकारती है। 'मौत का एक दिन मुअय्यन है...' की नरेटर इसी संबंधों की अराजकता के चलते अपने पति से झगड़ा करने के बाद आत्महत्या कर लेती है।

वर्तमान समय में भूमंडलीकरण और आधुनिकता के प्रभाव में आकर व्यक्ति किस रूप में अपने मानवीय मूल्यों, परंपरागत मर्यादा से दूर होता जा रहा है। इस पीढ़ियों के मध्य पनपते मूल्यों के अंतर को लेखिका ने 'न्यू ईयर्स ईव' कहानी में दर्शाया है- ''आज की हिंदी कहानी की दो विशेषताएँ सबसे प्रखर रूप में उभरकर आ रही है- एक तो आज उसका क्षेत्र या कहें फलक इतना विराट हो गया है और उसमें भिन्न क्षेत्रों की इतनी विविधवर्णी संपदा आ रही है कि देखकर आश्चर्य होता है कि भिन्न-भिन्न रूपों में कहानी अपने वर्तमान समय में हस्तक्षेप कर रही है, दूसरे आज हम जिस अपसंस्कृति, पश्चिमी आयातित संस्कृति को विकास के नाम पर ग्रहण कर रहे हैं उसके खतरे क्या हो सकते हैं, वह किस प्रकार हमारे मूल्यों को क्षरित, सामाजिक ढाँचे को विशृंखलित और भाषा को भ्रष्ट कर रही है।''[28] अलका सरावगी ने अपनी कहानी 'न्यू ईयर्स ईव' में पीढ़ियों के मध्य पनपते मूल्यों के अंतर और समाज पर बढ़ते पाश्चात्य प्रभाव को रेखांकित करती है। प्रबोध कुमार 'न्यू ईयर' की शाम को अपने घर पर पार्टी का आयोजन करता है जिसमें वह अपने परंपरागत संस्कारों और भारतीय मूल्यों को भुलाकर शराब व डांस पार्टी का फूहड़ प्रदर्शन करता है।

प्रबोध कुमार घर के हॉल में अपने परिवार का वंशवृक्ष की तस्वीर बनाकर रखता है लेकिन पार्टी के आयोजन में वह सजावट के लिए हॉल से तस्वीर हटाकर उसकी जगह ग्लासपेटिंग्स लगा देता है। प्रबोध कुमार का हॉल से तस्वीर हटाना नयी पीढ़ी के पारंपरिक मूल्यों के क्षरण को दर्शाता है। वंशवृक्ष के बारे में पूछने पर विधा बताती है- ''सविता की ओर देखते हुए

पागलों की तरह खिलखिलाकर हँसते हुए बड़ी मुश्किल से बीच में रूककर चारों बोतलों को दिखाते हुए कहा- वह वंशवृक्ष भाग गए सब खानदानी पुरखों.. इन चारों से डर कर... और सविता के गले लगकर फिर खिलाखिलाकर हँस पड़ी।''[29] निष्कर्षतः अलका सरावगी की सभी कहानियाँ अपने-अपने ढंग से प्रभावित और अपने समय की लगभगसभी समस्याओं को संदर्भित करती हैं। समकालीन जीवन की विषम भयाक्रांत स्थितियों को बड़ी सहजता से अभिव्यक्त करती है।

इस बात का ज़िक्र पहले भी किया गया है कि अलका सरावगी अछूते यथार्थ जीवन की श्रेष्ठ कथाकार हैं और जीवन-सत्य पर अधिक बल देती हैं, अतः जीवन के अनेक अछूते, अनकहे, अनदेखे, पहलुओं को अपनी कहानियों का कथ्य बनाया। उनके कथ्य-शिल्प की मुख्य विशेषता यही है कि वे जीवन को अपनी संपूर्ण व्यापकता और समग्रता में देखने की दृष्टि प्रदान करती हैं। ''वस्तुतः जिसे हम तंत्र या शिल्प की भंगिमा समझते हैं वह कथाकार की जीवन-दृष्टि की भंगिमा है, उसके बोध की विशेषता है। वस्तुओं, घटनाओं, व्यापारों और भावनाओं के निरंतर बदलते हुए जीवन संदर्भ को चित्रित करने के लिए कथाकार निरंतर नए मार्ग ढूँढ़ता है, निरंतर नए माध्यमों और तंत्रों का प्रयोग करता है। वस्तुतः जिसे हम कहानी की शिल्प-विधि कहते हैं, वह जीवन के अनिवार्य क्रियात्मक स्थापत्य की ही अभिव्यक्ति है।''[30] अलका सरावगी अपने समकालीन कथाकारों से आगे बढ़कर कहानी की नयी भाषिक-संवेदना और अनुभूति की चेतना को प्रभावी तरीके से उजागर ही नहीं करती बल्कि शिल्प को भी नया मोड़ देती हैं। लेखिका की अभिव्यक्ति की कलात्मकता को निम्न शीर्षकों के माध्यम से विश्लेषित कर सकते हैं।

अलका सरावगी की कहानियों में कथावस्तु की नवीनता व्यक्ति, परिवार और समाज के तीनों स्तरों पर स्पष्ट दिखाई पड़ती है। लेखिका की कहानियों में अछूते सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति है, परिवर्तित जीवन-मूल्य व आधुनिकता-बोध है, आधुनिक यथार्थ जीवन की विद्रूपताएँ व सामाजिक विषमता है, स्त्री की अस्मिता की तलाश और युगीन संक्रमण की मनःस्थितियों का चित्रण है, मानवीय संबंधों में बढ़ती अरागात्मकता और आधुनिक जीवन की संवेदनहीनता है। अर्थात लेखिका ने अपनी कहानियों में कथावस्तु का चयन नये ढंग से किया है जिसमें समय व समाज की सभी समस्याओं व विषमता को अलग-अलग कोणों से उठाया है। ''नये कहानीकार जीवन की छोटी-छोटी मजबूरियों पर कहानी आधारित करते हैं। ऐसे हमारे सामान्य जीवन के प्रतिनिधि चित्र हैं और इन चित्रों का अंकन आज की कहानी की बड़ी विशेषता है।''[31]

हाँलाकि अलका सरावगी का शिल्प काफी दूर तक पारंपरिक प्रतीत होता है और कहानियों का मूल-धर्म भी किस्सागोई ही बना हुआ है लेकिन वे अपनी इस पारंपरिकता के भीतर भी कथानक की अभिव्यक्ति में एक खास किस्म का नयापन छोड़ती हैं।

'जोड़-घटाव' कहानी अकादमिक जगत व समाज की दकियानूसी मानसिकता से मुखातिब करवाती हैं। कथानक के नाम पर इसमें कोई विशेष घटना-वैचित्र्य नहीं है और न ही कोई रहस्य-रोमांच या व्यंग्य की कचोट है, बल्कि वर्तमान समय में विश्वविद्यालयों में पनपती अराजक स्थितियों व भ्रष्टता का चित्रण है। लेकिन सरल कथानक में भी कहानी बड़ी सहजता और गंभीरता के साथ हमारी चेतना पर छा जाती है। 'मंहगी किताब' में इसी आधुनिक जीवन की विसंगतियों और व्यक्ति के स्वार्थ-केंद्रित दोहरे चरित्र को नये रूप में उजागर करती हैं। इस कहानी में नरेटर सुशीला जी- स्वार्थ केंद्रित दोहरे चरित्रवाली महिला- और उसके साथ रहने वाली लड़की के संबंधों को एक खेल के रूप में देखता है और अपने आप से शर्त लगाता है कि अगर लड़की सुशीला जी को पूर्णतः अपना लेती है तो वह एक मँहगी किताब खरीद लेगा। अंततः अनेक उतार-चढ़ाव के बावजूद वह उस मंहगी किताब को खरीद लेता है। इस प्रकार चरित्र के दोहरे मापदंडों को लेखिका इस कहानी में एक खेल के रूप में उजागर करती है जो उनकी शिल्पगत वैविध्य को दर्शाता है।

अलका सरावगी जीवन के अनेक ऐसे अनकहे, अनछुए, पहलुओं पर कहानियों लिखी हैं जिन पर आज तक किसी अन्य कथाकार की दृष्टि नहीं पहुँच सकी है। ''कहानी की बात किसी भी कोण से उठायी जा सकती है- कहानी का शिल्प एककोण है भाषा दूसरा, यथार्थ की अभिव्यक्ति तीसरा और सांकेतिकता चौथा। कोण और भी है और हर कोण से विचार कई भूमियों पर किया जा सकता है, परंतु किसी भी एक उपलब्धि से कहानी-कहानी नहीं बनती। कहानी की आंतरिक अन्विति का निर्माण इन सभी उपलब्धियों के सामंजस्य से होता है।''[32] 'न्यू ईयर्स ईव' में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव और टूटते मर्यादामूलक जीवन-मूल्यों का स्पष्ट संकेत है। प्रबोध कुमार द्वारा नये साल के अवसर पर अपने घर में शराब व डांस पार्टी का आयोजन करना अपने मूल्यों से क्षरित होने का प्रतीक है। प्रबोध कुमार अपने वंशवृक्ष के पुराने बिंब को सुरक्षित नहीं रख पाता है और सारे मूल्यों को भुलाकर शराब पीने व फूहड़ता का प्रदर्शन करने लगता है। अपने वंशवृक्ष की तस्वीर को घर से हटा देता है। इस तरह कहानी के माध्यम से लेखिका पीढ़ियों में पनपते मूल्यों के अंतर को उजागर करती है।

'उद्विग्नता का एक दिन' और 'दूसरे किले में औरत' भूमंडलीकरण के प्रभाव और महानगरीय जीवन की विडंबना को नये रूप में प्रस्तुत करती है। 'उद्विग्नता का एक दिन' में वकील चाचा की बेटी व पत्नी अति महत्वाकांक्षी है, अतः वकील चाचा की हैसियत से बढ़कर भौतिक वस्तुओं की माँग करती है। इसी कारण वकील चाचा की मौत हो जाती है- ''मेरी वाइफ की अब 'लेटेस्ट' फरमाइश यह है कि एक 'डबल डोर' फ्रीजर खरीदा जाए। हमारा पुराना फ्रीज तो ठीक-ठाक ही है। पर सत्यानाश हो इन एडवरटाइजिंग कंपनियों का.... अच्छा ही हुआ, मर गया। बेचारे को मुक्ति मिली।''[33] इसी प्रकार 'बीज' कहानी में पूँजीवादी व्यवस्था के चलते समाज में पनपती बाल जीवन की विसंगतियों और पारिवारिक विषमता को नये कोण से देखने का प्रयास किया है।

अलका सरावगी ने अपने समय की समस्याओं को बहुत ही नजदीक व बारीकियों से देखा और जीवन की विविधवर्णी समस्याओं के अनुरूप कहानी कथ्य का निर्माण किया। लेखिका की व्यापक जीवन-दृष्टि व परिवेश-बोध के प्रति विकसित चेतना उनके कथ्य की नवीनता व अभिव्यक्ति के नयेपन का मुख्य कारण है। ''आज की कहानियों में यह जो नवीनता दिख पड़ती है, वह आज की दृष्टि और संदर्भ की नवीनता है। आज की समस्याओं और उनसे उलझने तथा सहने की नवीनता है। इस प्रकार जीवन की समस्याओं और दृष्टि की वास्तविक नवीनता ने अभिव्यक्ति के नए आयाम उभारे हैं।''[34] निश्चय ही अलका सरावगी की कहानियाँ अपने समय का वैचारिक आख्यान है, जो हमें अपने वर्तमान और परिवेश की विभिन्न विषम स्थितियों से साक्षात्कार करवाती हैं।

अलका सरावगी की कहानियों में कथ्य एवं शिल्प संबंधी जो परिवर्तन आया है वह बदले हुए परिवेश के मुताबिक है। ''परिवेश की वास्तविकता और अनुभूति की प्रामाणिकता वाली कहानियों ने सारी कहानी की संवेदना और उसके मिजाज को ही नहीं बदल दिया, उसके स्वरूप और शिल्प को भी एकदम नये अर्थ और अभिप्राय दिए हैं।''[35] आज हमारा समय जहाँ एक ओर आधुनिक होने की कोशिश कर रहा है, वहीं दूसरी ओर इस आधुनिकता के परिणामस्वरूप सामाजिक समस्याएँ जटिल हुई हैं, मानवीय मूल्यों में परिवर्तन हुआ है, संबंधों में अरागात्मकता और पारिवारिक अंतर्द्वंद्व पनपा है। अलका सरावगी ने समाज में होते इन सभी परिवर्तनों को आत्मसात किया और अपनी कहानियों में स्थान दिया। अर्थात अलका सरावगी की कहानियों में परिवेश का चित्रण-आंतरिक और बाह्य-दोनों स्तरों पर हुआ है। आंतरिक परिवेश को वह कथ्य

के आंतरिक विधान व पात्रों की मनोगत चेतना से जोड़ती है जबकि बाह्य परिवेश को घटनाओं और संदर्भों के समानांतर प्रस्तुत करती हैं।

लेखिका अपने परिवेश के प्रति सजग और चौकन्नी है इसी कारण पारिवारिक विघटन व तनाव के चलते समाज में पनपते अंतर्विरोध और जड़ता को 'बीज', 'टिफिन','एक व्रत की कथा', 'ये रहगुजर न होती', 'संभ्रम', 'खिजाब', 'दूसरी कहानी' और'कनफेशन' आदि कहानियों में उजागर किया है। ये सभी कहानियाँ पारिवारिक संदर्भों की है जिसमें अपने समय की अलग-अलग समस्याएँ हैं। लेखिका ने सामान्यतः इन सभी कहानियों में पारिवारिक वातावरण की सृष्टि की है। ''माँ वैसे भी किसी से कुछ कह भी कहाँ पाती थीं। शुरू से ही वे अपने पति और सास दोनों से दब गई थीं। अपनी शादी के बाद उसे अब समझ में आया था कि दादी कितनी भी तेजस्वनी और भली क्यों न रही हों पर माँ को उनकी इच्छा से ही उठना-बैठना पड़ता होगा। वह खुद तो किसी का इतना हुक्म बजाने की कल्पना भी नहीं कर सकती थी। अब उसे कभी-कभी माँ से सहानुभूति भी होती थी। वे सब भाई-बहन अपने स्कूल के जलसों में अपने शानदार व्यक्तित्व वाले पिता से ही सबको मिलाना चाहते थे। और घर आने वाले मित्रों को दादी से। उसने अब सिहरकर सोचा, उफ् माँ को कैसा लगता होगा।''[36] इस पारिवारिक वातावरण द्वारा लेखिका संबंधों के बीच पनपते अंतर्द्वंद्वों, पात्रों की मानसिक मनोदशा, परंपरा और मर्यादा के नाम पर विडंबनापूर्ण जीवन व्यतीत करती स्त्रियों की दयनीय अवस्था को उल्लेखित करती हैं।

''नये साहित्यकारों ने अपने परिवेश और समाज को बहुत नजदीक से देखा है। इसी कारण वे जिंदगी को तथा जिंदगी के जीने के दर्द को तीव्रता के साथ अपनी कहानियों में उतारा है।''[37] 'आपकी हँसी', 'टिफिन', 'इन लोगों ने धावा बोल दिया है', 'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर', 'एक और नमक हराम' आदि कहानियों में लेखिका ने जो समस्याएँ उठाई हैं उनका संबंध आज की परिस्थितियों और समकालीन जीवन की विद्रूपताओं से है अतः इन्हीं के मुताबिक वातावरण की सृष्टि की है। 'आपकी हँसी' में आधुनिक समाज में व्यक्ति की एक-दूसरे के प्रति समाप्त होती सहृदयता और टूटती संवेदना का चित्रण है।'इन लोगों ने धावा बोल दिया है' में सामाजिक विषमता और 'रिपन स्ट्रीटेर परवीर अख्तर' में-समाज में फैलती सांप्रदायिकता और जाति-भेद के परिवेश का चित्रण है।

अलका सरावगी अपनी कहानियों में अछूते यथार्थ की अभिव्यक्ति पर अधिक बल देती हैं। अछूते यथार्थ से मेरा तात्पर्य बदली हुई समय व समाज की परिस्थितियों और जीवन की विडंबनाओं से है। अतः लेखिका की कहानियों में जो कथ्य का निरूपण व पात्रों का चित्रण हुआ

है वह उनके नजदीकी यथार्थ व परिवेश की उपज का परिणाम है। राजेंद्र यादव के अनुसार- ''पात्र और परिवेश सब कुछ अपना और परिचित होना चाहिए क्योंकि आज वही सबसे अधिक प्रामाणिक है। उसमें रहकर, उसकी बदलती सापेक्षताओं में ही हम किसी संवेदना और अनुभूति को, विचार या आइडिया और दृष्टि का रूप देंगे, पहले से ही आइडिया लेकर उसे किसी भी देशकाल पात्र पर आरोपित करना दुहरा झूठ है।....स्वानुभूति की प्रामाणिकता से गुजर कर अगर हम किसी विचार, अर्थ, सृष्टि या दर्शन तक पहुँचते हैं तो वह हमारी अपनी उपलब्धि होती है। यही कारण है कि आज भी कहानी में एकभी ऐतिहासिक या अनजिए विदेशी की कहानी नहीं है, प्रायः वे स्थितियाँ भी हैं जो लेखकीय परिवेश का अंग है।''[38]

'बहुत दूर है आसमान', 'दूसरे किले में औरत', 'न्यू ईयर्स ईव' कहानियों के पात्रों की मानसिक अवस्था व वातावरण भूमंडलीकरण और पाश्चात्य प्रभाव को संदर्भित करता है। 'बहुत दूर है आसमान' में लेखिका निखिल व नरेटर के माध्यम से परिस्थिति चित्रण पर अधिक बल देती है। वातावरण- परिस्थितियाँ किस कदर आदमी को अपनी जकड़ में लेकर उसकी चेतना पर हावी हो जाता है इस तथ्य को उजागर किया है। ''अनजाने डर, दबाई हुई आशंकाएँ, तरह-तरह के संदेह सब एक साथ उसके ऊपर चढ़कर उसका दम घोंटने लगते। एक विराट भय उसे सुन्न कर जाता। उसे लगता कि किसी तरह सुबह हो जाए जिससे वह वापस खुद हो सके।''[39] नरेटर की यह मानसिक परिवेश की स्थिति आधुनिक जीवन की जटिलताओं और विसंगतियों को उजागर करती है। आज का परिवेश इतना भयाक्रांत हो गया है कि व्यक्ति अपने घर में ही अपने आपको असुरक्षित महसूस करने लगा है, इसी कारण नरेटर अपनी आठ साल की बच्ची को घर से बाहर निकालने से मना करती है। 'दूसरे किले में औरत' कहानी में ड्रीम हाउस एसोसिएशन में काम करनेवाली स्त्री के माध्यम से भूमंडलीकरण के प्रभाव को दर्शाती है। और 'न्यू ईयर्स ईव' में नववर्ष पार्टी के आयोजन के परिवेश का चित्रण है, जिसमें प्रबोध कुमार पात्र अपने मर्यादामूलक पारंपरिक मूल्यों की उपेक्षा कर शराब-डांस पार्टी का आयोजन करता है। प्रबोध कुमार पात्र द्वारा लेखिका समाज पर पड़ते पाश्चात्य प्रभाव और पीढ़ियों के मध्य पनपते मूल्यों के अंतर को स्पष्ट करती है। 'जोड़-घटाव', 'पिस्सू और कलम घिस्सू', 'कलम तंत्र की कथाएँ' आदि कहानियों में लेखिका विश्वविद्यालय परिवेश का चित्रण किया है। इन कहानियों में लेखिका पात्रों के माध्यम से विश्वविद्यालय में फैलती अराजकता, शिक्षा का राजनीतिकरण, समाज मेंफैलता भ्रष्टाचार और लेखकीय जीवन की विडंबनाओं का हलफिया बयान किया है।

'जोड़-घटाव' में कथानक के नाम पर कोई विशेष घटना वैचित्र्य नहीं है बल्कि छात्रों व शिक्षकों के बीच पनप रही जोड़-घटाव अर्थात दाँव पेचों की झाँकी है जो व्यक्ति को अकादमिक जगत की दकियानूसी प्रवृत्तियों से मुखातिब करवाती है। इस कहानी के दो भाग हैं- प्रथम भाग- विश्वविद्यालय में स्थिति कैंटीन का है जहाँ प्राध्यापक सुबोध व मोहन एम.ए. प्रथम वर्ष की छात्रा सुधा को अपने स्वार्थ हीतार्थ प्रभावित करते हैं। दूसरा भाग-सेमिनार का है जिसमें अकादमिक जगत में फैलती जातिगत विषमता का वर्णन है। इन दोनों ही भागों के केंद्र में विश्वविद्यालय परिवेश में पनपती अराजक स्थितियों और छात्र जीवन की विडंबना का चित्रण है। ''पहले की कहानी व्यक्ति को अथवा समाज को अपने आस-पास में देखती थी, आज उसे उसके परिवेश में देखने की प्रवृति है....पिछली कहानी की तुलना में आज का कहानीकार जटिल यथार्थ को अभिव्यक्त करता है।''[40]

'मिसेज डिसूज़ा के नाम', 'संभ्रम', 'खिजाब' और 'यह भी सही है वह भी सही है' आदि कहानियों लेखिका ने परिवेश बोध की प्रमाणिकता के साथ मानवीय जीवन को देखने की कोशिश की है।

'पार्टनर', 'वाइल्ड फ्लावर हॉल' और 'एक पेड़ की मौत' वातावरण प्रधान कहानियाँ है। इन कहानियों के शिल्प में वातावरण की विशेष प्रधानता है, वातावरण स्वयं- कहानी का इष्ट बनकर पात्रों के चरित्र को अपने में अंतर्भुक्त कर लेता है। पात्रों के मनोभावों पर वातावरण का स्थायी और गहरा प्रभाव इस प्रकार पड़ता है कि उनका व्यक्तित्व ही बदल जाता है। 'पार्टनर' कहानी में पहले लड़के को उगता हुआ सूरज देखना पसंद नहीं था लेकिन लड़की दोस्त के संपर्क में आने पर वह प्रकृति से रागात्मक संबंध स्थापित करने लगता है। ''जब दूर-दूर तक धरती का फैलाव हो और बीच में कोई पेड़-पौधा तक उस फैलाव में बाधा न डालता हो, तो धरती के किनारे से निकलते लाल सूरज के गोलों को देखना जीवन के शाश्वत अनंत कालक्रम को देखना है। लड़के ने इस बात को बिना लड़की के साथ अगली सुबह सूरज को देखते हुए जाना।''[41] 'पार्टनर' कहानी में वातावरण का चित्रण इतना सजीव व जीवंत है कि वातावरण स्वयं पात्रों का पार्टनर बनकर कहानी में उपस्थित हुआ है।

'एक पेड़ की मौत' जीवन प्रवाह की दूसरी ही मुद्रा है जिसमें जीवन की सार्थकता छुपी है। इसमें लेखिका ने जगन्नाथ बाबू की अनुभूति की प्रामाणिकता और संवेदना के माध्यम से प्रकृति व मानवीय जीवन के रागात्मक संबंधों को दर्शाती है- ''एक पेड़ की मौत कहानी प्रतीकात्मकता के साथ-साथ पात्र और परिवेश की सघन रागात्मकता चित्रित करती है।''[42]

लेखिका की कहानियों में वातावरण कथ्य व संदर्भों के अनुरूप अपने जीवंत व सजीव रूप में उपस्थित हुआ है। 'मन्नत' में धर्म के नाम पर लूट का वातावरण उपस्थित है- ''एक युवक, जो काफी देर से उनके साथ चल रहा था हिंदू-मंदिर के पंडों की तरह एक खाता ले आया था और उनसे कुछ हिंदू दाताओं के नाम बताते हुए दान देने की पेशकश करने लगा था। नीलिमा की उम्मीद के विपरीत समर जी ने उससे खाता लेकर अपने नाम पते सहित सौ रुपये भेंट दिए।''[43] इसी तरह 'वाइल्ड फ्लावर हॉल' और 'पार्टनर' में पिकनिक वातावरण का सजीव चित्रण हुआ है। अलका सरावगी अपने परिवेश के प्रति सजग व स्पष्ट रही हैं, इसी कारण उनकी कहानियों में वातावरण की सृष्टि अनेक रूपों व स्तरों पर हुई है। बाहरी वातावरण की दृष्टि से जगह-जगह उनकी 'एक पेड़ की मौत', 'इन लोगों ने धावा बोल दिया है', 'दूसरे किले में औरत', 'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर'आदि कहानियों में कलकत्ता शहर का परिवेश और वनस्पति- पेड़-पौधे, पक्षी जगह-जगह विविध रूपों में चित्रित हुए हैं जो लेखिका की अनुभूति की प्रामाणिकता व परिवेश के प्रतिसजगता की दृष्टि को दर्शाता है।

अलका सरावगी ने अपने कहानी कथ्य में वर्तमान परिवेश व आधुनिक-बोध से उपजे स्त्री-मनोविज्ञान और उसके आंतरिक संघर्षों को सफलता से प्रस्तुत करती हैं, लेकिन अपने वर्णन-चित्रण में वह कभी पुरुष-विरोधी नहीं दिखाई पड़ती हैं। परिस्थितियों, प्रसंगों एवं घटनाओं के अनुरूप उन्होंने पात्रों का चित्रण किया है। 'बीज' कहानी में तीन महीनों की लंबी बीमारी से नरेटर का स्वभाव चिड़चिड़ाया और उकताया हुआ हो जाता है, जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण नकारात्मक हो जाता है। उसके स्वभाव के चिड़चिड़ेपन को झेलते हुए भी उसका पति अविनाश नरेटर का पूरा ख्याल रखता है- ''वह सोचने लगी कि सचमुच अविनाश कितने धीरज से उसकी बीमारी को, उसके पल-पल बदलते मूड़ को और उसकी चिड़चिड़ाहट झेल रहे हैं... कितनी कोशिश करते हैं, खुश दिखने की मेरे सामने मन-ही-मन चिंता करते हैं, पर हमेशा बोलते रहते हैं, कि बस इस सप्ताह बुखार छूट जाएगा.... कितनी सहनशीलता से मेरी चिड़चिड़ाहट को झेल लेते हैं।''[44] 'दूसरी कहानी' में अपर्णा का बेटा जिंदगी की नाइंसाफी का शिकार है, अपर्णा उसकी जीवन-दशा सुधारने के लिए हर पल प्रयासरत रहती है। हाँलाकि लेखिका नौ वर्षीय सुदर्शन की शारीरिक दशा में कुछ बदलाव कर सकती थी लेकिन वह अपने वर्णन में तटस्थ बनी रही, इसी कारण कहानी जीवन के प्रति जिजीविषा के मूल्य को व्यापक रूप में संदर्भित कर सकी। इसी तरह 'इन लोगों में धावा बोल दिया है' में लक्खी को जीवन की अनेक समस्याओं से जूझते हुए दिखाया है। 'एक और नमक हराम' में लेखिका बूढ़े चौकीदार रमाकांत के वर्णन में भी थोड़ी संवेदनशीलता नहीं दिखाई जो रजनी व छुटकी से अपनी बेटियों के समान प्रेम करता है, लेकिन

उसी रमाकांत दरबान को रजनी के पापा 'गद्दार', 'नमक हराम' अपशब्द बोलकर घर की नौकरी से निकाल देते हैं। रमाकांत पात्र के तटस्थ वर्णन द्वारा लेखिका सामंती परिवेश की मानसिकता और सामाजिक विषमता को दर्शाती है और सिद्ध करती है कि वर्तमान समाज में पूँजी और सत्ता के साथ ही सम्मान जुड़ा हुआ है। 'आपकी हँसी' में भी नत्थू बाबू के घर काम करने वाले आदमी की दयनीय बेबस स्थिति के प्रति तटस्थ रही, उसके प्रति थोड़ी भी सहृदयता दिखाने पर कहानी अपने प्रतिपाद्य से भटक सकती थी। वर्णन की इसी तटस्था के कारण कहानी आधुनिक जीवन की विसंगति व संवेदनहीनता को व्यापक रूप में उजागर कर सकी।

'बहुत दूर है आसमान' आधुनिक समय में समाज के न बदलने की विडंबना और परिवेश में पैदा होती असुरक्षित स्थितियों को केंद्र में रखकर लिखी गईं है। लेखिका ने इस कहानी कथ्य के शिल्प में तटस्थता और परिस्थिति-चित्रण पर अधिक बल दिया है।

लेखिका चरित्र-चित्रण में अपनी सहानुभूति किसी भी पात्र के साथ नहीं रखती बल्कि खुलकर तटस्थता से चरित्र का विश्लेषण करती हैं- ''निखिल ने एक लंबी साँस लेकर कहा- देखो, हमें थोड़ा व्यावहारिक होकर तो सोचना ही पड़ेगा। तुम कितनी भी बात करो बराबरी की, पर आखिर बलात्कार तो औरतों के साथ ही होता है न। औरत को सुरक्षा तो अधिक चाहिए ही। मैं भी नहीं चाहता कि ऐसी दुनिया हो, पर यही हकीकत है उस दुनिया की जिसमें हम और तुम रहते हैं।''[45] निखिल का यह कथन स्त्री विरोधी नहीं बल्कि आज के समय की सच्चाई का हलफिया बयान है। 'लाल मिट्टी की सड़क' में वंदना अपने जीवन की तलाश व अस्मिता की खोज में अपने पति को छोड़कर सविता के घर आ जाती है लेकिन वह हर पल अपने पति सुरेश के प्रति चिंतित भी रहती है। इसी तरह के चित्रण में तटस्थता 'टिफिन' की विद्या, 'संभ्रम' की कनक मौसी, 'खिजाब' की दमयंती, 'मंहगी किताब' की वह लड़की आदि पात्रों के वर्णन में दिखाई है। अलका सरावगी ने अपनी कहानियों में समकालीन जीवन की विडंबनाओं और स्त्री की संघर्षपूर्ण मनः स्थितियों का तटस्थ चित्रण किया है।

अंतश्चेतना का प्रवाह एक मानसिक प्रक्रिया है इसके द्वारा कथाकार पात्रों के मानसिक अंतर्द्वंद्व एवं मस्तिष्क में उठने वाले नितांत सूक्ष्म भावों को व्याख्यायित करता है। यह शैली आधुनिक व्यक्ति की सूक्ष्म मानसिकता एवं क्षण के अनुभव को प्रस्तुत करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई है। अलका सरावगी ने लगभग अपनी सभी कहानियों में इस शैली का प्रयोग करते हुए अछूते यथार्थ को पकड़ने की कोशिश की है। 'लाल मिट्टी की सड़क' में वंदना अपने जीवन की तलाश और अकेलेपन की मुक्ति के लिए सविता जी के घर चली आती है, वहाँ रात के

सन्नाटे में उसे अपने बचपन की वे सभी घटनाएँ याद आती हैं जिसमें वह अपने जीवन को घुटते हुए देखती है। शादी के बाद सुरेश का तानाशाही रवैया वंदना को अपने बचपन की पीड़ा का बोध कराता है। कथ्य द्वारा लेखिका उजागर करती है कि व्यक्ति का अतीत कभी समाप्त नहीं बल्कि स्मृतियों में संचित रहता है और परिस्थितियों की टकराहट से पुनर्जीवित होकर वर्तमान को प्रभावित करता है।

'बहुत दूर है आसमान' में नरेटर अपनी आठ वर्षीय बच्ची गुल्लू के जीवन को सामाजिक विषमता की आड़ में घुटते-दबते पराधीन देखकर उसे स्त्री-जीवन की विडंबना का एहसास होता है- ''उसका अपना बचपन उसके सामने घूमने लगा- किसी तरह वह घर में घंटों ऊबकर दूर आसमान में उड़ते पंक्षियों को देखा करती थी।... काश मैं लड़का होती, काश, पापा औरों के पापा जैसे होते, काश मैं इस दुनिया को बदल सकती।''[46] इसी प्रकार 'मौत का एक दिन मुअय्यन है, नींद क्यों रात भर नहीं आती' कहानी में नरेटर को चौरंगी रोड पर तेजी से चलती लड़की को देखकर अपनी पत्नी की याद आती है जिसमें दोनों की मामूली-सी कहा-सुनी के बाद नरेटर की पत्नी जहर खा कर आत्महत्या कर लेती है। इस कथ्य द्वारा लेखिका ने यह दर्शाया है कि जिससे हम जीवन में सबसे ज्यादा प्रेम करते हैं, उसमें किसी प्रकार की कोई कमी या दुःख बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं। इसी कारण नरेटर की पत्नी आत्महत्या कर लेती है।

चेतना प्रवाह शिल्प से कथानक में सूत्रबद्धता और प्रवाह बना रहता है। पात्रों की अतीत की स्मृतियों के घट-जोड़ के माध्यम से कथा अपने प्रतिपाद्य की ओर अग्रसर होती है। 'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर' में ब्यूटी पार्लर में परवीन अख्तर को देखकर अंजलि चौधरी को पंद्रह साल पुरानी दोनों की दोस्ती की अनेक बातें याद आती हैं। अंजलि चौधरी की स्मृतियों के घटनाक्रम द्वारा लेखिका समाज में फैलती सांप्रदायिकता व जातिभेद की विषमता को उद्घाटित करती है। 'ये रहगुजर न होती' कहानी में भी नरेटर लंबे समय बाद जैसे ही अपनी पुरानी हवेली में प्रवेश करती है वैसे ही उसे अपने बचपन के दिन याद आते हैं। जिसमें अपने बाबा की निरंकुश मर्जी के कारण उनका परिवार टूट-बिखर जाता है।

अलका सरावगी अपने परिवेश के प्रति सजग और समाज के प्रति प्रतिबद्ध है इसी कारण पारिवारिक मतभेद और तनाव के चलते समाज में पनपते मानवीय अंतर्विरोध और जड़ता को नरेटर की स्मृतियों के माध्यम से उजागर किया है।

'अंधेरी खोह में' वर्तमान समय की विसंगतियों को उभारा है। पात्र मिसेस शुक्ला को कुटुमसार गुफा के अंधेरे को देखकर स्त्री-जीवन की विवशता की याद आती है।'वाइल्ड फ्लॉवर

हॉल' की वह पात्र अपने पति अजय व सुमन भाभी व प्रदीप भैया के साथ शिमला के हिल स्टेशन पर घूमने जाती हैं। 'वाइल्ड फ्लावर हॉल' पर काटेज में अकेली रहने पर 'वह' पात्र को अजय की अपूर्णता का बोध होता है। 'बीज' की 'मैं' पात्र को भी बीमारी हालत में अपनी चचेरी बहन गीता की पागलपन से व दादी की कैंसर की पीड़ा से हुई मौतें याद आती हैं- ''मैं क्या इसी तरह पड़े-पड़े पागल हो जाऊँगी। यह सोचते-सोचते उसे अपनी चचेरी बहन गीता याद आ गई। गीता बहुत सुंदर व होशियार थी, पर पता नहीं कैसे उसे अचानक पागलपन के दौरे आने लगे थे.... उसे याद आया कि डेढ़ महीने तक दादी बीमार रही थीं- कैंसर की पीड़ा से जूझती। उन्हें पूरा होश नहीं रहा था, उनका दिमाग कभी बहुत अतीत में जाने लगा था कभी शून्य हो जाता था.... फिर उसे लीला मौसी याद आई, जो बरसों से किड़नी की तकलीफ पा रही थी और मौत के कगार पर बैठी थी।''[47] अर्थात् वह 'पात्र को अपने जीवन की सभी नकारात्मक बातें याद आती है इसी कारण वह जीवन के प्रति आस्थाहीन और निराश हो जाती है लेकिन जैसे ही उसे अपनी पीढ़ी में पनपते पागलपन के बीज का भय महसूस होता, वह जीवन के प्रति सचेत हो जाती है। स्पष्टतः लेखिका स्मृतियों की निराशा के बीच जीवनी की जिजीविषा के बीज की तलाश करती है।

''नये भावबोध में मनुष्य को, उसकी रागात्मकता तथा उसके मनोविज्ञान को केंद्रीय महत्व प्राप्त हुआ है। इसे अभिव्यक्त करने के लिए अंतश्चेतना का प्रवाह जैसी तकनीक का सहारा लिया गया है। अंतश्चेतना का प्रवाह एक मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें से गुजरते हुए चरित्रगत सोच की प्रक्रिया, विशिष्ट क्रम से आगे बढ़ती है। किसी विशिष्ट क्षण का अनुभव एक साथ उन सारे अनुभव क्षणों को प्रेरित करता है जो व्यक्ति की स्मृतिमें अंकित है।''[48] 'प्रतीक्षा के बाद' और 'पिस्सू और कलमघिस्सू' कहानियों को इसी संदर्भ में देखा जा सकता है। 'प्रतीक्षा के बाद'... में नरेटर को डॉ. बनर्जी के क्लिनिक में उसके जीवन से जुड़ी अनेक घटनाएँ याद आती हैं- ''न चाहते हुए भी वही फुटपाथ पर सोती हुई नौ- दस साल की लड़की उसे याद आ गई। वह रात दस बजे इस तरह बेखबर हो कर सो रही थी कि उसका हम उम्र एक लड़का उसके दिन-भर भीख माँगकर जमा किए हुए पैसा चुरा रहा था और उसे होश ही नहीं था। वह हक्का-बक्का देखता खड़ा रहा था कि क्या करे।''[49] इसी प्रकार अपनी बेटी की घटना याद आती है। 'पिस्सू और कलम घिस्सू' कहानी में लेखिका ने 'मैं' पात्र के मानसिक अंतर्द्वंद्व द्वारा साहित्यिक जगत में फैलती विसंगति नारी के प्रति संकुचित मानसिकता व राजनीतिक भ्रष्टता को उल्लेखित किया। कलम घिस्सूओं की मीटिंग में नरेटर को अचानक अपनी सहेली अरूणा की याद आती है जो उसे अंग्रेजी में साहित्य लिखने की सलाह देती है। इस अंतश्चेतना शिल्प के प्रयोग द्वारा लेखिका

पात्रों के मनोगत द्वंद्व से गुजरते हुए वर्तमान समय व समाज में फैली सामाजिक, राजनैतिक विसंगतियों और जीवन की विडंबना को उद्घाटित करने का सार्थक प्रयास किया है।

अलका सरावगी अछूते सामाजिक यथार्थ को प्रभावी तरीके से अभिव्यक्त करने हेतु अपनी कहानी कला में फैटेंसी शिल्प का प्रयोग यथासंभव किया है। ''फैटेंसी केवल 'ऐंद्रजालिकता' नहीं है, वह वास्तव के प्रति सर्वथा एक नवीन दृष्टि भी बन सकती है।....फैटेंसी कथा-शिल्प के रूप में उपयोग करने वाला लेखक निश्चय ही रचनात्मक प्रतिभा का कहानीकार होता है इसमें शक की कोई गुजांइश नहीं है। गुजारिश यह है कि फैटेंसी का प्रयोग कहानी में 'बोध' के लिए किया जाए, व्यंग्य के लिए नहीं।''[50] निश्चय ही अलका सरावगी ने अपनी कहानियों में फैटेंसी का प्रयोग अपने समय की विसंगतियों को उजागर करने के लिए किया है। 'आक एगारसी' कहानी में लेखिका इसी फैटेंसी का प्रयोग कर आधुनिक जीवन की विडंबनाओं को सहजता से रूपायित करती हैं। कहानी में नरेटर के मित्र हेमंत बाबू का पंद्रह वर्षीय बेटा सुमंत आने वाली ग्यारह पीढ़ियों का भविष्य द्रष्टा बनकर 'आक एगारसी' के रूप में कथ्य में उपस्थित हुआ है जो नरेटर को वर्तमान की विडंबना और भविष्य की समस्याओं से अवगत कराता है। एगारसी पात्र द्वारा नरेटर अपने समय को समेटकर क्षण में बाँध देता है। आज के समाज में पनपती भ्रूण हत्या, राजनीतिक भ्रष्टाचार, शोषण व अन्याय नशीले पदार्थों की बढ़ती माँग आदि समस्याओं की तरफ एगारसी पात्र हमारा ध्यान केंद्रित करता है। हमें एक नयी जीवन-दृष्टि भी प्रदान करता है कि वर्तमान पर ही व्यक्ति का भविष्य निर्भर है।

'' 'इन' लोगों ने धावा बोल दिया है' कहानी में भी लेखिका ने फैटेंसी का प्रयोग कर सामाजिक विषमता को उजागर किया है। अर्थशास्त्र की प्राध्यापिका श्रीमती शीला तयाल के सपने में गणेश जी आकर एस.टी. को लेख-लिखने की दृष्टि प्रदान करते हैं। 'एक व्रत की कथा' में नरेटर को उसकी सास 'बछवारस' की कथा सुनाती है कि एक सेठ-सेठानी अपने खोदे हुए तालाब को पानी से भरने हेतु अपने पोते की बलि देते हैं और फुदकड़ा करने पर बच्चा पुनः जीवित हो जाता है। इसी फैटेंसी प्रयोग द्वारा लेखिका परंपरा के बंधन और आधुनिक मूल्यों के टकराव को दर्शाती है। एक तरफ नरेटर है जो परंपरा का अतिक्रमण करती है। वहीं दूसरी तरफ उसकी सास है जो परंपरा के नाम पर जीवन भर कष्ट उठाती आई है। 'एक पेड़ की मौत' में मानवीय जीवन व प्रकृति के रागात्मक संबंधों को अभिव्यक्त करने के लिए इसकी किस्सागोई में आश्चर्यत्व और फैटेंसी शिल्प का प्रयोग किया है जगन्नाथ बाबू का दफ्तर के पिछवाड़े में लगे पेड़ से गहरी संवेदना जुड़ जाती है लेकिन जैसे ही जगन्नाथ बाबू अवकाश प्राप्त होते हैं उनके

तीन दिन बाद पेड़ की मौत हो जाती है। ''जगन्नाथ बाबू के मन में इस पेड़ की मौत ने एक ऐसा सवाल खड़ा कर दिया, जिसका उत्तर शायद किसी के पास नहीं होगा- क्या यह पेड़ भी उनसे प्रेम करता था और उनके वियोग में देह-त्याग का संकल्प करके उसके तीन दिनों में ही अपने को कटवा दिया।''[51] इसी पेड़ की मौत के माध्यम से लेखिका व्यक्ति व परिवेश के आपसी संबंधों और अनुभूति की प्रामाणिकता को स्पष्ट करती है।

कहानी की आंतरिक उपलब्धियों और उसकी मूल संवेदना को सांकेतिक व प्रतीकात्मक प्रयोग द्वारा ही उद्घाटित किया जा सकता है। ''जहाँ तक कहानी की आंतरिक उपलब्धियों का संबंध है, उनमें सांकेतिकता को कहानी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता है। यह सांकेतिकता आज की कहानी की या किसी एक भाषा की ही उपलब्धि नहीं, कहानी मात्र की एक अनिवार्य उपलब्धि है।''[52] अलका सरावगी की कहानियों में सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता का विकास अनेक स्तरों पर विभिन्न रूपों में हुआ है।

'पार्टनर', 'एक पेड़ की मौत', 'इन लोगों ने धावा बोल दिया है', 'दूसरे किले में औरत' आदि कहानियों का महत्व इसलिए नहीं कि ये विशेष भावभूमि से उठाई गई हैं बल्कि इनका महत्व कथ्य में अंतर्निहित संकेतों के कारण है।

'दूसरे किले में औरत' कहानी में नरेटर बहुमंजिला टावर पर बने 'ड्रीम हाउस एसोसिएशन' के दफ्तर में काम करने वाली औरत के माध्यम से कार्पोरेट जगत की चालाकियों, भूमंडलीकरण के प्रभाव और सामाजिक विषमता की ओर संकेत करता है। कहानी में हम पाते हैं कि नरेटर अपना घर बनाने के लिए 'ड्रीम हाउस एसोसिएशन' को पूरा पैसा दे देता है लेकिन तीन महीने बाद भी घर तैयार नहीं हो पाता है अतः वह परेशान होकर बार-बार दफ्तर जाता है लेकिन दफ्तर में काम करने वाली सुंदर-सजीली औरत की आश्वस्त भरी बातों में आकर अपनी सारी पेरशानी व झल्लाहट भूल जाता है- ''सुंदरता और सलीके का संगम हो, तो क्या कहते हैं न सोने में सुंगध। कौन मूर्ख है जो मंत्रमुग्धन होगा, आप यदि यहाँ विश्वास नहीं कर कर सकते, तो जनाब आप ईश्वर पर भी विश्वास नहीं कर पाएंगे जब वह साक्षात आपके सामने आ खड़ा होगा। मैंने निश्चय किया कि करूँगा विश्वास। ईश्वर पर नहीं, इस सुंदरी पर.... लेकिन यह क्या उसकी काली साड़ी और काली चप्पल के बीच झाँकती एड़ियाँ एकदम फटी हुई, काली बिवाइयों से भरी। अगले ही क्षण वह मुझे भवानीपुर की तंग गलियों के एक झड़ते मकान टूटे आँगन में बाल्टी भर पानी लेकर सीढ़ियों पर चढ़ती दिखाई पड़ी।''[53] लेखिका स्त्री के दोहरे रूप द्वारा सामाजिक विषमता व समाज के यथार्थ की ओर संकेत करती है।

" 'इन' लोगों ने धावा बोल दिया है' का संकेत लक्खी चरित्र के माध्यम से उभरता है। जो पंद्रह किलोमीटर दूर से भीड़ भरी बस में सफर करके एस.टी. के घर काम करने आती है। लक्खी पात्र सांकेतिक अर्थवत्ता से युक्त है, जो उन मजदूर लोगों की दयनीय दशा की ओर संकेत करती है जो रोजगार की तलाश में अनेक समस्याओं से जूझते हुए शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। 'पिस्सू और कलमघिस्सू' में वर्मा जी राजनीतिक भ्रष्टचारिता का संकेत बनकर कहानी उभरता है। अलका सरावगी की ये सभी कहानियाँ-आज के समय की सभी समस्याओं अर्थात् सामाजिक विषमताओं, पाश्चात्य प्रभाव, भूमंडलीकरण का प्रभाव, सामाजिक अंतर्विरोध आदि का पूर्णतः प्रतिनिधित्व करती है। अलका सरावगी की कहानियाँ मानवीय चेतना से सीधी जुड़कर अनुभूति के गहरे स्तरों को छूने में समर्थ हो सकी हैं।

प्रतीक कथाकार के रचनात्मक अनुभवों को रूप देने वाला प्रमुख उपादान है। अपनी अभिव्यक्ति परक भाषा में लेखक इनका प्रयोग कर अनुभवों को प्रभावी, सक्षम और गहन बनाता है। अलका सरावगी ने 'बीज', 'लाल मिट्टी की सड़क', 'पार्टनर', 'एक पेड़ की मौत'आदि कहानियों में प्रतीकों के माध्यम से अनुभूति के इसी गुण धर्म को प्रकट करने की कोशिश की है। 'एक पेड़ की मौत' में पेड़ प्रतीक के माध्यम से पात्र और परिवेश के रागात्मक संबंधों तथा जीवन के आंतरिक सत्यों को उद्घाटित करती है। कथ्य में जगन्नाथ बाबू की पारिवारिक कहानी जो मंतव्य प्रकट नहीं कर पाई वह पेड़ की मौत प्रतीक के माध्यम से उद्घाटित हुआ कि आम व्यक्ति की भाँति पेड़-पौधे और पक्षियों में भी संवेदना और लोक-जीवन से जुड़ाव होता है तथा उनका जीवन भी गतिशील और क्रियाशील रहता है। कहानी में देखते हैं कि पेड़ की और जगन्नाथ बाबू की आपस में एक-दूसरे से गहरी संवेदना जुड़ गई थी, अतः नौकरी से निकाल देने के बाद पेड़ को न देख पाने के कारण वे उदास रहने लगते हैं। जगन्नाथ बाबू का वकील निमाई घोष पेड़ और जगन्नाथ बाबू के बीच जुड़ी संवेदना को समझता है- "जगन्नाथ बाबू, बचपन में एक कहानी सुनी थी कि बुद्ध को एक पीपल के वृक्ष के नीचे निर्वाण प्राप्त हुआ था- तब समझ में नहीं आया था कि इस बात का उस वृक्ष से क्या संबंध है। लेकिन अब सोचता हूँ कि तो लग रहा है कि हम सभी एक ही अस्तित्व के तो हिस्से हैं। ये वृक्ष ऑक्सीजन छोड़ रहें, तो हम श्वास ले रहे हैं, हम श्वास छोड़ रहे हैं, और हमारे अंदर वही तो रस है जो इनमें है- जो घास में है जो फूल में है। आपने हमारे और इनके बीच की लय का अनुभव कर लिया है, जगन्नाथ बाबू।"[54] 'एक पेड़ की मौत' जीवन प्रवाह की दूसरी ही मुद्रा है जिसमें जीवन की सार्थकता छुपी हुई है।

'लाल मिट्टी की सड़क' व 'अंधेरी खोह में' इसी प्रतीकात्मक पद्धति में लिखी गई कहानी है जिसमें स्त्री की अस्मिता की सोच व जीवन की विवशता को प्रतीकों के माध्यम से दर्शाया है। 'लाल मिट्टी की सड़क' में घटना जैसी कोई चीज नहीं है बल्कि समाज की रूढ़िवादी व्यवस्था के बीच स्त्री-जीवन की विसंगतियों को लेकर वंदना पात्र के मन में उठनेवाली आशंकाओं का प्रसंग विशेष है। जिसके भीतर कहानी अपनी पूरी जीवंतता के साथ सामने आती है। वंदना रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था को तोड़कर 'लाल मिट्टी की सड़क' पर अपने जीवन की तलाश में निकल जाती है। कहानी में 'लाल मिट्टी की सड़क' स्त्री-मुक्ति का मार्ग प्रतीक बनकर उपस्थित है। 'अंधेरी खोह में' स्त्री-जीवन की विवशता को प्रतीकों के माध्यम से उभारा है। कहानी की पात्र मिसेज शुक्ला अपने पति के साथ कुटुमसार गुफा देखने जाती है, गुफा की अंधेरी खोह में जाकर उसे अपने जीवन की विडंबना याद आती है- ''आदिवासी लड़का बता रहा था कि गुफा में एक जगह पानी में मछलियाँ हैं जो अंधी ही पैदा होती हैं क्योंकि उन्होंने कभी बाहर की रोशनी देखी ही नहीं। मिसेज शुक्ला ने इस बात को अपने लिए एक साहित्यिक अनुभव बनाने की कोशिश की।''[55]

'पार्टनर' भी प्रतीकात्मक रूप से स्त्री-जीवन की विडंबना से जुड़ी हुई कहानी है। 'चिरमठ' का पेड़ स्त्री-जीवन के मामूलीपन का प्रतीक है, जबकि केवड़ा शक्ति का प्रतीक है। ''तभी उसे चिरमठ का केवड़ा वाला गीत याद आया जिसमें लड़की की माँ लड़की के पिता से कहती है कि हमारे आँगन में तो चिरमठी का मामूली सा पौधा है जबकि हमारे समधी के आँगन में तो केवड़ा फूलता है।''[56] अर्थात आज साधन संपन्नता वाले सामाज में भी स्त्री का जीवन केवड़े की बेल के समान उलझा हुआ है। 'टिफिन' कहानी में भरपूर पॉकेट खर्च मिलने के बाद भी विद्या का घर छोड़कर भाग जाना पारिवारिक अंतर्विरोध की विडंबना को दर्शाता है। 'न्यू ईयर्स ईव' में प्रबोध कुमार द्वारा हॉल से अपने वंशवृक्ष की तस्वीर हटाना व न्यू ईयर के दिन अपने दोस्तों के बीच शराब पार्टी करना पीढ़ियों के मध्य पनपते पतनोन्मुख मूल्यों का प्रतीक है। 'आपकी हँसी' में नत्थू बाबू के घर काम करने वाले व्यक्ति की सरलता व जीवन की दुर्घटना पर शहरी लोगों का ठहाका मारकर हँसना आज के समाज में पनपती स्वार्थपरकता और टूटती संवेदना को दर्शाता है।

3.3 उपन्यासों का तात्विक विवेचन

अलका सरावगी के संपूर्ण उपन्यास अपने समय के प्रमाणिक दस्तावेज हैं। 'कलि-कथाः वाया बाइपास', 'शेष कादम्बरी', 'कोई बात नहीं', 'एक ब्रेक के बाद', 'जानकीदास तेजपाल मैनशन', 'एक सच्ची झूठी गाथा' और 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास समग्र जीवन

की विधा है जिसमें वे इतिहास, राजनीति, धर्म व आधुनिकता की नयी व्याख्या ही नहीं करती बल्कि अपने समय की सभी विसंगतियों और विद्रूपताओं को अलग-अलग कोणों से उठाती हुई हमारे सामने रखती है और विषमता के विरूद्ध चेतना पैदा करती हैं जो उनके उपन्यास कथ्य की सार्थकता को सिद्ध करता है।

3.3.1 कथ्य, संवाद, देश-काल-वातावरण, भाषा-शैली के आधार पर

अलका सरावगी का 'कलि-कथा' उपन्यास लगभग ढाई शताब्दी (1751-2000) के इतिहास का जीवंत दस्तावेज है। कलकत्ता शहर में वास करती मारवाड़ी जाति को आधार बनाकर लेखिका आजादी के पचास साल पूर्व से लेकर पचास साल बाद तक के इतिहास की नयी व्याख्या ही नहीं करती बल्कि इतिहास की तह में छुपे अनेक नए तथ्यों को भी उजागर करती हैं। साथ ही यह अवधारणा भी स्थापित करती हैं कि हर व्यक्ति इतिहास का अंग नहीं बनता लेकिन उसकी कथा में इतिहास के अनेक अछूते पहलू छुपे हुए होते हैं। ''इतिहास मामूली आदमियों की कथा नहीं कहता, पर हर इतिहास मामूली आदमियों से पटा पड़ा होता है जो इस इतिहास से जूझते हुए जीवन काटते हैं।''[57] उपन्यास में लेखिका किशोर और शांतनु के वार्तालाप के रूप में 1757 ई. का प्लासी का युद्ध, सेनापतियों द्वारा नवाब के साथ विश्वासघात, जगतसेठों का अंग्रेजों के साथ संबंध आदि इतिहास के पक्ष को नए रूप में प्रस्तुत करती हैं- ''23 जून, 1757 नवाब सिराजुद्दौला की सेना की मुख्य कमानें मीर जाफर, यारलुत्फ खान और राय दुर्लभ के हाथों में थीं। ये तीनों षड्यंत्र में शामिल होने के कारण नहीं लड़े। ..... अंततः सिराजुद्दौला का भी दिमाग फिर गया और उसने भी भागने का फैसला किया।''[58] रामविलास की कथा के माध्यम से लेखिका 1860 ई. से लेकर 1926 ई. तक की भारतीय इतिहास की घटनाओं-1863 का छपनिया अकाल जिसकी मार से राजपूताने के लोग निर्वासित हुए। 1905 का बंग-भंग आंदोलन, मारवाड़ी और अग्रेजों के संबंध, भारतीयों पर अंग्रेजी हूकुमत का अमानवीय अत्याचार आदि का वर्णन किया है।

'नाइंटीन फोर्टी टूः अ लव स्टोरी' परिच्छेद में 1941 ई. में हुए द्वितीय विश्वयुद्ध, जर्मनी का रूस पर हमला, जापान द्वारा अमेरिका व इंग्लैण्ड पर आक्रमण एवं सिंगापुर पर बमबारी और इन अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं का देश पर पड़े प्रभाव को भी लेखिका ने रेखांकित किया है। 'अकाल कभी होता नहीं' परिच्छेद में बंगाल के अकाल व इसके प्रभाव से समाज में पैदा हुई सामाजिक विकृति, अमेरिकन सेना द्वारा वेश्यावृति व शोषण को बढ़ावा देना आदि को उल्लेखित किया है। इसी प्रकार 'द ग्रेट कैलकटा किलिंग' परिच्छेद में अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति

के परिणामस्वरूप 1946 में फैला सांप्रदायिक दंगा, हिंदू-मुस्लिमों का तनाव, मुस्लिम लीग, आर्य वीर दल, हिंदू शक्ति-संघ आदि द्वारा दंगों को फैलाना व देश का विभाजन आदि प्रमुख घटनाओं का सूचनात्मक विवरण लेखिका ने किया है।

इसी तरह 'शेष कादम्बरी' में भी कादम्बरी द्वारा देवीदत्त मामा पर लिखित रिपोर्ट के माध्यम से देश के इतिहास व राजनीतिक घटनाओं से रू-ब-रू करवाती है। देवीदत्त एक ऐसा पात्र है जो पूर्णता की तलाश में गांधी, नेहरू, एम. एन. राय, लोहिया आदि लोगों का अनुगामी बनकर देश-विदेश में भटकता रहता है। 'शेष कादम्बरी' उपन्यास का 'एकअदृश्य आदमी' और 'एक शताब्दी की खोज: वाया एक आदमी' परिच्छेद इसी देवीदत्त पर आधारित है जिसमें लेखिका देश व दुनिया की तमाम राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय घटनाओं को उभारती हुई 'एक शताब्दी की खोज' करती हैं-''इस 'अदृश्य आदमी' में पिछली शती से लेकर नई शती में संचरण करते हुए शती की जिन प्रमुख घटनाओं का उल्लेख होता है उनमें लखनऊ के प्रसिद्ध कांग्रेस अधिवेशन से लेकर लार्ड चेम्सफोर्ड के निमंत्रण पर प्रथम महायुद्ध की कांफ्रेस में गांधी जी की शिरकत, रौलेट बिल पर गांधी जी और देश की प्रतिक्रिया, 13 अप्रैल 1919 का जलियांवाला हत्याकाण्ड, एम.एन. राय से भेंट, 1930 में गांधी जी का नमक सत्याग्रह आंदोलन....... कथा के केनवास को व्यापक घनत्व प्रदान करते हैं।''[59] इतना ही नहीं बल्कि इमरजेंसी की घटना, गांधी का चंपारन आंदोलन, चौरा-चौरी काण्ड, 1930 ई. में प्रेमचंद का बंबईया फिल्मी संसार, नेहरू, लोहिया का समाजवाद, 1948 ई. में गांधी की हत्या, दूसरे महायुद्ध में जापान द्वारा अंग्रेजों की हार, बर्मा में सुभाष चंद्र बोस द्वारा 'आजाद हिंद फौज का गठन' आदि घटनाओं की पुनर्व्याख्या भी लेखिका करती है।

रूबी गुप्ता के बुआ के प्रेमी मि. वियेना की किताब के माध्यम से आजादी के पूर्व की भौगोलिक-आर्थिक पृष्ठभूमि को भी दर्शाती हैं- ''उन्नीसवीं शताब्दी की शुरूआत की बात है, यानी अभी से करीब एक सौ चालीस साल पहले..........अठारह सौ तीस में ब्रिटिश सरकार ने बंगाल की अफीम को बढ़ावा देने के लिए मालवा की अफीम पर बहुत बड़ा टैक्स लगा दिया। तब कलकत्ते में बसना ज्यादा फायदेमंद हो गया। अठारह सौ पचास तक तुम्हारे खानदान के दफ्तर कलकत्ता, मालवा, बंबई, मिर्जापुर, फर्रूखाबाद, पटना के अलावा चीन तक में खुल गये.....यह शहर अठारह सौ पचास तक 'सिटी ऑफ पैलेसेस' बनने लगा-पुराना हाईकोर्ट, सेंट जॉन चर्च, गर्वमेंट हाउस, राइटर्स बिल्डिंग, इंडियन म्यूजियम-कलकत्ते की ये सारी भव्य इमारते उसी समय के आसपास बनी हुई हैं।''[60]

अर्थात मि. वियेगा के माध्यम से उस समय की आर्थिक-स्थिति व भौगोलिक-इतिहास का उद्घाटन होता है। '' 'शेष कादम्बरी' में दो तरह का इतिहास बोध दिखाई देता है। एक है 'ट्रैवलॉग' प्रजाति का रूमानी इतिहास जो मिस्टर वियेना और उनकी काल्पनिक पुस्तक के माध्यम से रूबी दी को मिलता है। दूसरा इतिहास है बीसवीं सदी के भारत का जादुई इतिहास जिसमें यथार्थ के साथ एक अद्भुत स्वप्नशीलता भी है। यह देवीदत्त मामा के माध्यम से उनके द्वारा संयोजित इतिहास है।"[61]

डॉ. धर्मवीर भारती ने लिखा है- ''मानवता के विकास का पक्ष लेकर ही महान कलाकार को राजनीतिक संकीर्णता के विरूद्ध लड़ना पड़ता है।"[62] अल्का जी के उपन्यास'"कलि-कथा: वाया बाइपास' का अमोलक पात्र मानवतावादी मूल्यों से प्रेरित है और आजादी के बाद सांप्रदायिक दगों केखिलाफ लड़ता हुआ 1992 ई. में हुए बाबरी मस्जिद दुर्घटना काण्ड में मारा जाता है।"[63] अमोलक और शांतनु के माध्यम से लेखिका स्वाधीनता आंदोलन में कांग्रेस के नरम व गरम दल की क्या भूमिका रही है? सुभाष चन्द्र बोस और गाँधीजी किस रूप में स्वाधीनता आंदोलन का प्रतिनिधित्व कर रहे थे? आदि राजनीति घटनाक्रम के इतिहास को यथा-तथ्य दर्शाया है। चूँकि 'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास कलकत्ता में वास करती मारवाड़ी जाति पर आधारित है। ''दूर देश से आने वाली चिड़ियों की तरह अपनी जन्मभूमि से बहुत दूर स्थानांतरण कर आ बसी एक जाति-मारवाड़ी और एक शहर कलकत्ता महानगर के साझे इतिहास में ही उनकी कथा का मर्म है।"[64] अर्थात् उपन्यास के केंद्र में राजपूताना प्रदेश और कलकत्ता महानगर है अतः इन दोनों प्रदेशों का भौगोलिक इतिहास भी लेखिका की नजरों से नहीं बच सका है। भिवानी शहर; अब हरियाणा में युद्ध के बारे में बताती हैं कि भिवानी शहर को अंग्रेजों ने दिल्ली में रहते हुए व्यापार-व्यवसाय के लिए 'मंडी भिवानी' के नाम से बसाया था। ''मारवाड़ी अस्मिता के प्रकल्प के अलावा अनायास ही जो दूसरा प्रकल्प जुड़ गया है वह है कलकत्ता शहर के इतिहास का प्रकल्प। आजादी के इतिहास की भांति भारतीय नवजागरण के प्रमुख केंद्र कलकत्ता नगर का इतिहास भी लेखिका की नजर से नहीं बच पाया है।"[65] कलकत्ता शहर के इतिहास को उद्घाटित करती हुई लेखिका बताती है कि गंगा किनारे तीन गांवों के दलदल को साफ कराकर जॉब चार्नक ने कलकत्ता शहर बसाया था।

विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अलका सरावगी ने 1857 के गदर से लेकर 2000 ई. तक के इतिहास की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रमुख घटनाओं को समेटने का प्रयास किया है।'कलि-कथा' में व्याप्त भौगोलिक, राजनीतिक, व्यक्तिपरक और घटनापरक इतिहास को देखते हुए

आलोचकों ने इसे 'इतिहास-कथा' का नाम दिया है लेकिन इतिहास के साथ लेखिका ने इसमें पात्र रामविलास, ज्युनियर हैमिल्टन, मामा-मामी और स्वामी जोगेश की कथा के माध्यम से मानवीय संबंध, प्रेम और संवेदना के ऐसे तत्वों का उल्लेख किया है जिससे इतिहास का आधिक्य होने के बावजूद भी इसका साहित्यिक-पक्ष कमजोर पड़ता दिखाई नहीं देता है।

उपनिवेशवाद और पश्चिमी अपसंस्कृति का अंधानुकरण आज के समय की बड़ी सच्चाई है। आजादी प्राप्ति के बाद यह अपने भिन्न-भिन्न रूप में भारतीय समाज, संस्कृति तथा आर्थिक संसाधनों पर अपना आधिपत्य जमाने की कोशिश कर रहा है और कहना न होगा की कुछ हद तक उपनिवेशवाद ने सफलता भी प्राप्त कर ली है। अलका सरावगी ने 'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में मारवाड़ी परिवार की तीन पीढ़ियों की कथा के माध्यम से भारतीय संस्कृति के उतार-चढ़ाव और उपनिवेश से पनपते खतरे को उजागर करने का सार्थक व सफल प्रयास किया है। अपनी तीसरी जिंदगी अर्थात बाइपास ऑपरेशन के बाद किशोर बाबू देश की विषमता भरी स्थिति, राजनीतिक भ्रष्टता, मूल्यों का विघटन, आर्थिक उदारीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की घुसपैठ और संस्कृति का पश्चिमीकरण आदि को देखकर 'जड़ भरत' के रूप में 'आउटसाइडर' होकर बैठ जाते हैं।

किशोर बाबू के बचपन का मित्र शांतनु-जो पहले सुभाष चन्द्र बोस का कट्टर समर्थक और विदेशी संपत्ति का प्रबल विरोधी था वही शांतनु आजादी के बाद विदेशी पूँजी की सहायता से एन.जी.ओ. खोलकर अकूत संपति बटोर लेता है-देश और समाज की बाते उसके लिए बचकानी सी हो जाती है- ''मैं एक एन.जी.ओ., गैर सरकारी सेवा संस्थानद्ध चलाता हूँ डॉक्टरी पास करने के बाद मैंने आदिवासियों के बीच चालीस-साल काम किया। अब मैं पिछले पाँच-सालों से कलकत्ता रहने लग गया हूँ। 'आई लिव अलोन' में दोनों बेटे विलायत में हैं। एक डॉक्टर है मेरी तरह, और छोटा स्विटजरलैंड से एम.बी.ए. कर रहा है।''[66] इस संदर्भ में सत्यदेव त्रिपाठी लिखते हैं-''शांतनु जो आजादी के विकास का वर्ग भेदी विद्रूप है, वही शांतनु जो देश विरोधी तरीके से अंग्रेजों की योजनाओं द्वारा कमाई अपनी पैतृक संपति को त्यागने के लिए तत्पर था, अब एन.जी.ओ. के माध्यम से आदिवासी के विकास के नाम पर अकूत विदेशी संपत्ति कमाकर अफसरी रोबदाब वाला कैपिटलिस्ट बन गया है।''[67] अर्थात् उपनिवेशवाद ने भारतीय संस्कृति और उसके मूल्य को ध्वस्त कर दिया हैं। शांतनु ही नहीं बल्कि उपन्यास में वर्तमान युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले किशोरबाबू के बेटे और बहु के मूल्य भी बदल चुके हैं। किशोर बाबू

की बहु ग्रामीण परिवेश की रहती हुई भी 'पाँच सौ रूपये' प्रतिमाह 'ब्यूटी सैलुन' में खर्च करती है।

डॉ. शंभुनाथ लिखते हैं- ''उपभोक्तावादी समाज का आदर्श वह व्यक्ति नहीं है, जो सरल और ईमानदार है। वह है जो खूब झूठ, कृत्रिमता और ढोंग से जी सके। कुछ भी बेच सके, कुछ भी खरीद सके।''[68] किशोर बाबू का बेटा बड़ा मुनाफा कमाने के लिए कंपनी को 'बीस गांधी' की रिश्वत देने को तैयार है। अर्थात नयी पीढ़ी के लिए 'बीस गाँधी' कोर्डवर्ड है। जिसका मतलब है बड़ी रिश्वत। उपभोगवादी जाल में फँसकर ही किशोर बाबू की बेटी गर्भपात करवाती है, बहु बच्चा नहीं पैदा करना चाहती अतः थर्मामीटर का पारा निगल जाती है। बड़े अनुपात में भ्रूण हत्या हो रही है। यह सब संस्कृति के मूल्यों का विघटन है जो पश्चिमी की अपसंस्कृति और नव-उपनिवेश का परिणाम है।

अलका सरावगी ने 'कलि-कथा: वाया बाइपास' में नव-उपनिवेश के दूसरे रूप को भी दर्शाया है। आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मकड़जाल देश में फैला हुआ है और समाज का मध्यम वर्ग एवं नयी पीढ़ी इसकी प्रबल पक्षधर बनी हुई है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आजादी की वर्षगाँठ को व्यवसाय का माध्यम बनाकर करोड़ों रुपये देश से लूट रही हैं। किशोर बाबू के बेटे केलिए 15 अगस्त आजादी दिवस का मतलब है, विदेशी कंपनी की 'फ्रीडम फौर्ड गाड़ी' जिसको उसने फाइनेंस कंपनी से कर्ज लेकर खरीदा है। '' 'फ्रीडम'-लड़के ने हंसते हुए कहा....समझे नहीं आप यह 'फ्रीडम फौर्ड' की चाबी है....... लोग पता नहीं क्या-क्या खरीद लेते हैं। नकली कंपनी बनाकर बाजार से करोड़ों रुपये शेयर उठा लेते हैं। कहीं कारखाना बनता नहीं, लेकिन गर्वमेंट से करोड़ों रुपये 'लोन' पर ले लेते हैं........एक गाड़ी सिर्फ छह लाख की गाड़ी-किस्तों पर खरीदकर मैंने बहुत बड़ा गुनाह किया है?''[69] इतना ही नहीं, ये कंपनियाँ इससे भी आगे बढ़कर मादक पदार्थों का प्रसार कर रही है जो देश की सांस्कृतिक परंपरा और शुचिता के खिलाफ है- ''दुनिया की एक बहुत बड़ी ड्रींक बनाने वाली कंपनी अपना विज्ञापन करने के लिए पार्लियामेंट में एक पचास फुट लंबी पीतल की बोतल रखेगी। फिर उसमें से सबको ड्रिंक पिलाई जाएगी और उस बोतल को रखने के लिए एक स्मारक बनाया जाएगा। सोचिए, कितना रुपया खर्च होगा-पचास फुट लंबी बोतल-पचास सालों केलिए।''[70] उपर्युक्त उद्धरण द्वारा लेखिका देश की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालती है और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की करतूतों को उजागर करती है।

इस नव उपनिवेश के दौर में भारतीय-संस्कृति कैसे फैशन का पर्याय होती जा रही है, जहाँ गीता जैसे धार्मिक ग्रंथ भी फैशन के तौर पर प्रयोग में होने लगे हैं। इसका उल्लेख भी

लेखिका ने किया है- ''आज कैसे अपनी संस्कृति भी फैंशन और बिकाऊ होती जा रही है, किशोर बाबू को इसका पता भी अपने घर में ही चल जाता है, जब देखते हैं कि उनके बच्चे उनके अंग्रेंजी में गीता पढ़ने और उस पर कुछ लिखने को बतौर सांस्कृतिक फैशन ले रहें है....अपनी संस्कृति का इससे ज्यादा उपयोग और क्या हो सकता है? यह आधुनिक कलि-कथा यानी कलि-युग कथा।''[71] लेखिका सिद्ध करती है कि आजादी के पूर्व देश गुलाम था और संस्कृति स्वतंत्र लेकिन आजादी के बाद इस नव-उपनिवेश दौर में स्थिति बदलकर विपरीत हो गई है आज हम आजाद है और हमारी संस्कृति पराधीन, जिसका उपयोग विदेशी कंपनियाँ अपने बड़े लाभार्थ कर रही हैं। लेकिन उपन्यास के अंत में लेखिका गांधीवादी अमोलक को जीवित कर इस उपनिवेश और अपसंस्कृति से लड़नेका एक आशावाद संदेश देती है जिसके संदर्भ आलोचक सूरज पालीवाल लिखते हैं-''बाईपास के रास्ते बंद करके अपने स्रोत तलाशने की घोषणा से उपन्यास का अंत होता है, जो निश्चित ही बड़े लक्ष्य की ओर ले जाता है। उदारीकरण के इस दौर में विदेशी कंपनियों का विरोध कर देशी कारखानों को सुद्दढ़ करने की इच्छा-देश के भावी विकास में सहायक होगा..... इस देश में आश्वस्ति का वातावरण होगा।''[72]

'कलि-कथा: वाया बाइपास' में अमोलक पात्र के माध्यम से लेखिका गांधीवादी-मूल्यों की उपस्थापना और गांधी-द्दष्टि का प्रसार करती है। '''कलि-कथा: वाया बाइपास' का सबसे अहम पक्ष है, गांधी द्दष्टि का प्रसार। अलका मानती हैं कि इस पतनशील देश में अब भी गांधी ही प्रासंगिक हैं। गांधी को भूला कर इस देश की नैतिक, शुचिता संपन्न और यहाँ की राजनीति को स्वच्छ बना पाना नामुमकिन है। इस देश में जहाँ भी हिंसा होती है, गांधी मरते हैं...किसी विचार की हत्या नहीं हो सकती। गांधी मर सकते हैं गांधी की द्दष्टि नहीं मर सकती।''[73]

उपन्यास में अमोलक गांधीवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। स्वाधीनता आंदोलन के दौर में लोगों द्वारा आजादी प्राप्ति के लिए अपनाये जा रहे हिंसात्मक गतिविधियों को अमानवीय करार देते हुए सत्य व अहिंसा पर जोर देता है। ''गांधी जी का अहिंसा व सत्याग्रह का मार्ग कायरों की कायरता छिपाने की नीति नहीं है जैसा की गांधी जी के विरोधी समझते हैं, बल्कि वह बहुत गहरी आत्मिक-शक्ति का मार्ग है।''[74] स्वाधीनता आंदोलन में अमोलक के पिता-गिरफ्तार हो जाते हैं लेकिन अमोलक अपने पिता के बारे में न सोचकर देश की स्थिति और लोगों की दयनीय दशा के बारे में चिंतित रहता है। संपत चाचा के साथ मिलकर अकाल पीड़ितों की दिन-रात सेवा करता है। 'एक मिनट खाने-सोने तक की फुरसत नहीं है' अपने जीवन के बारे में न सोचकर हमेशा दूसरों के बारे में सोचता है। ''अमोलक के लिए जीवन का यह पक्ष जैसे है ही

नहीं। देश, समाज, जाति-तमाम दुनिया भर की फिक्र है। उसे। पर पता नहीं, वह अपने जीवन के बारे में कुछ सोचता है या नहीं.....अगर सचमुच विचार किया जाए तो एक कौर भी गले से नीचे नहीं उतारा जा सकता। इतना अन्याय है चारों ओर। आदमी जैसे आदमी का मांस खा रहा है। अमोलक की इस तरह की बातें किशोर को हतप्रभ कर जाती है।''[75]

अमोलक हर परिस्थिति में मनुष्यता व 'अहिंसा परमोधर्म' के सिद्धांत का पालन करता है। 1946 में मुस्लिम लीग व कांग्रेस में मतभेद तथा देश बंटवारे को लेकर सांप्रदायिक दंगे भड़क उठते हैं जिसमें अपनी मौत की परवाह न करते हुए अमोलक लोगों की मदद करता है। ''वे लोग पुलिस की मदद से मुसलमानों के मुहल्ले में रहने वाले हिंदुओं और हिंदुओं के मुहल्ले में रहने वाले मुसलमानों को निकाल रहे हैं।.....एक सारजेंट को साथ लेकर अमोलक कुछ लोगों के साथ पैदल घूम रहा है। बड़ा सेवा भाव है इस लड़के में। कितना पुण्यवान है।''[76] इतना ही नहीं बल्कि आजादी के बाद देश में उपजती विषमता से अमोलक काफी आहत होता है। शोषण का विरोध, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी अपनाने पर जोर देता है। राजनीतिक-भ्रष्टाचार की खुली आलोचना करता है-''आजादी के बाद तो उसका दिमाग बिलकुल खराब हो गया था। ..... नेहरू को, राजेन्द्र को, बड़े-बड़े मंत्रियों को। मुझे एक बार सड़क पर मिला तो कहने लगा-सारे अंग्रेजों के पिट्टू और दलाल गांधी टोपी पहनकर कांग्रेस में घुस आए हैं। नेहरू ने वे सारे अफसर भी ज्यों-के-त्यों रख लिए हैं, जिन्होंने अंग्रेजों के साथ मिलकर हम पर जुल्म किए थे।''[77] हालांकि 'संस्कृत वाले पण्डित' को अमोलक की ये बातें बचकानी ओर निरर्थक लगती है जो उसकी भ्रष्ट व पतित मनोवृत्ति को दर्शाता है। 1992 में सांप्रदायिक मतभेद मिटाने के क्रम मे बाबरी मस्जिद काण्ड में विधर्मियों के हाथों अमोलक की मौत हो जाती है।

बाइपास सर्जरी के बाद किशोर बाबू देश की स्थिति और अपसंस्कृति से काफी आहत होते हैं और अमोलक की आत्मा से साक्षात्कार करते हैं। और उपन्यास के अंत में अमोलक पुनः जीवित हो जाता है। लेखिका द्वारा अमोलक को जीवित करना यह दर्शाता है कि गांधी मूल्य कभी अप्रासंगिक व मर नहीं सकते। इसी संदर्भ में सत्यकाम लिखते हैं-''बाबरी मस्जिद को बचाते समय लाठी खाकर मर जाने वाले अमोलक को जिंदा कर उपन्यास लेखिका ने यह सिद्ध किया है कि कट्टरपंथी लाख चाह ले पर हिंदुस्तान की धर्मनिरपेक्षता बुनावट को वे नहीं उघाड़ सकते।''[78] किशोर बाबू की मनोग्रंथि में अमोलक का आना और विदेशी एन. जी. ओ. से गरीबों के नाम पर अकूत संपति कमाने वाले अपने मित्र शांतनु की आलोचना करना तथा अपमानित होकर चले आना। इस संदर्भ पर सत्यदेव त्रिपाठी लिखते हैं- ''गांधीवादी मूल्यों के प्रति चाहे जैसा

सलुक हो पर बार-बार उसके प्रासंगिक होने की उर्वरता का स्पष्ट संकेत अलका सरावगी ने किया है।'' [79] अर्चना गौतम लिखती हैं- ''अमोलक का मारा जाना उसका मरना एक प्रतीकात्मक है अर्थात गांधीवाद का खत्म होना। स्वतंत्रतापूर्व जो गांधीवादी विचार थे वे स्वतंत्रता के बाद खत्म हो गये थे किंतु अमोलक को जीवित दिखाकर लेखिका सिद्ध करना चाहती है कि आज भी गांधीवादी विचार प्रासंगिक है।''[80]

''अमोलक एक सच्चे गांधीवादी की तरह अपना जीवन जीता है। उसकी मृत्यु एक रूपक है। यह रूपक आजाद भारत में गांधी और गांधीवाद की हत्या है। अमोलक का उपन्यास के अंत में जीवित हो जाना भी रूपक है, इस रूपक का संदेश यह है कि गांधीवाद को कितना ही अप्रासंगिक बनाने की कोशिश की जाए वह मर कर फिर से जीवित होगा।''[81] समग्र विश्लेषण से सिद्ध होता है कि लेखिका अमोलक पात्र द्वारा गांधी-सिद्धांतों के महत्व को उजागर ही नहीं करती बल्कि आज के विसंगति भरे समय और समाज के बीच उनकी सार्थकता को भी दर्शाती है कि गांधी दर्शन समस्या का बाइपास नहीं बल्कि स्थायी पूर्णकालिक समाधान है।

'शेष कादम्बरी' में भी गांधीवादी मूल्यों का प्रसार नजर आता है। रूबी गुप्ता का मामा देवीदत्त चंपारन आंदोलन से ही गांधी जी के साथ रहता है लेकिन जलियाँवाला हत्याकाण्ड में डरकर उनसे अलग हो जाता है। उसके बाद देवीदत्त सुभाष चन्द्र बोस से लेकर एम. एन. राय, लोहिया, कम्युनिष्ट पार्टी के संपर्क में आकर देश-विदेश की यात्रा करता रहा लेकिन इन सबसे ऊबकर कुछ समय बाद पुनः गांधी में मिल जाते हैं। ''उसके बाद देवीदत्त अगले छह दिनों तक गाँधी जी के पीछे-पीछे घूमते रहे। आजादी के दिन देवीदत्त ने गांधी जी की तरह चौबीस घंटे का उपवास रखा और चरखा कातते रहे। उसके बाद 30 जनवरी 1948 तक, यानी जब तक गांधी जिंदा रहे, देवीदत्त अपना बोरिया-बिस्तर और कैमरा लेकर गांधी के पीछे-पीछे घूमते रहे, जैसे वे अपनी किशोरावस्था से शुरू कर अपनी जवानी के दिनों तक घूमे थे। किंतु बिरला हाऊस में गांधीजी के पार्थिव शरीर का फोटो उनके कैमरे में नहीं। इसका कारण यह है कि देवीदत्त ने यह कभी नहीं माना की गांधी मर सकता है। उसी तरह जैसे बुद्ध कभी मर नहीं सकता।''[82] और यहीं पर 'गांधी अमर रहे' की अभिव्यंजना स्पष्ट होती है।

''उपन्यास का वास्तविक लक्ष्य जीवन को उसकी विरूपता में पकड़ना है- वह विरूपता चाहे सामाजिक-जीवन की देन हो या व्यवस्था की, कर्मकाण्ड की देन हो या अपसंस्कृति की वह किसी को भी नहीं बख्शता। हर तरफ उसकी दृष्टि जाती है।''[83] अलका सरावगी अपने सभी उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विरूपता को उभारने का

सार्थक प्रयास किया है। 'एक ब्रेक के बाद' में कार्पोरेट जगत और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की लूट के कारणों की पड़ताल और देश की आर्थिक विपन्नता की स्थिति को दर्शाती है। उपन्यास का पात्र गुरूचरण अपने सहयोगी प्रसिद्ध 'मार्केटिंग कंसल्टेन्ट' के.वी. शंकर अय्यर से पूछता है- ''अच्छा बताइये, क्या आप सचमुच सोचते हैं कि हमारे देश की तरक्की का मतलब यह होगा कि गरीबी की रेखा के नीचे के छब्बीस प्रतिशत लोगों का पेट भरने लायक हम हो जायेंगे? छब्बीस प्रतिशत यानी कि तीस करोड़ लोग। इतने सारे लोगों की जिंदगी कैसे बनेगी, जो सड़क के कुत्तों जैसी ही जिंदगी जी रहे हैं?''[84] इतना ही नहीं बल्कि ये बड़ी कंपनियाँ अपने मुनाफे के लिए 'स्पेशल इकोनामिक जोन' के नाम पर करोड़ों किसानों को अपनी परंपरागत जमीन से उजाड़ रही हैं। 'कार्बन क्रेडिट' के नाम पर उनका दोहरा शोषण कर अपने लाभ को बढ़ा रही है। आज स्थिति इतनी विडंबना दायक हो गई है कि देश का अमीर-वर्ग ज्यादा अमीर बनता जा रहा है और गरीब ज्यादा गरीब। आदि सभी स्थितियों को लेखिका दर्शाती है।

'शेष कादम्बरी' में लेखिका 'रंडी की मंड़ी' परिच्छेद में सामाजिक-आर्थिक विषमता और समस्याओं को उल्लेखित करती है। सामाजिक विषमता के चलते ही उपन्यास की मुख्य पात्र रूबी गुप्ता से लेकर सविता, सायरा, मायाबोस, कल्याणी हालदार आदि औरतें दयनीय-जीवन व्यतीत करने को मजबूर हैं। मनोरंजन व्यापारी पात्र सामाजिक विषमता के कारण ही रोजगार की तलाश में दर-दर भटकता रहता है, माया बोस जैसी देश की तमाम औरतें पेट की भूख मिटाने के लिए वेश्यावृत्ति का धंधा करने के लिए मजबुर है ''सब कहती हैं, नीना दीदी, हमें कोई नौकरी दिला दीजिए, तो हम यह काम छोड़ दें। रेट इतने गिरा दिए हैं कि नई लड़कियों ने दस रुपये तक में काम करने को तैयार हैं। कभी-कभी एक ग्राहक भी नहीं मिलता पूरे दिन। पर रूबी हम क्या कर सकते हैं। जब तक यह कैंसर की जैसी जानलेवा गरीबी नहीं हटती, यह सब उपरी काम है। .... बहुत रास्ते खोजे,पर फिर यही।''[85] अपर्णा बनर्जी के घर नौकरानी का काम करने वाली चौहद वर्षीय कल्याणी हालदार इसी गरीबी से तंग आकर आत्महत्या कर लेती है।

सविता और सायरा इन्हीं सामाजिक समस्याओं के बीच शोषित और प्रताड़ित रहती हैं। इन दोनों पात्रों के माध्यम से लेखिका ''सामाजिक समस्याओं और विद्रूपताओंपर विचार करती हैं।-नशाखोरों और नशीली दवाओं का धंधा, सांप्रदायिकता की समस्या,'मिडिल क्लास' मैंटेलिटि और 'अपर क्लास' मैंटेलिटि की सोच, छूआ-छूत, राजनीति में राजनेताओं की संतति का वर्चस्व, आदि। वैयक्तिक कथा के इन्हीं व्यापक सदर्भों में उपन्यास अपने युग-जीवन के तीखे सवालों से टकराता हुआ अपनी विशिष्ट दृष्टि- 'विजन' का परिचय देकर कथा को सार्वभौमिकता प्रदान

करता है।''[86] 'कलि-कथा: वाया बाइपास' में भी लेखिका इस सामाजिक-आर्थिक विषमताओं को रेखांकित करती है। 'अकाल कभी होता नहीं' परिच्छेद में एक तरफ पुतुल नर्स है जिसके पास तन ढकने को कपड़े नहीं है अतः वह अपने घर में निर्वस्त्र बैठी रहती है। किशोर बाबू के घर काम करने वाली नौकरानी परिवार की भूख मिटाने के लिए रोटियाँ चुराती है जबकि दूसरी तरफ किशोर बाबू के दोस्त मिश्रा साहब की बेटी है जो अपने दोस्त के साथ मिलकर 'मॉल' से बड़ी शॉपिंग करती है। बेटे की बहू हजारों रुपये ब्यूटी सैलून पर खर्च करती है, बेटा मंहगी 'फ्रीडम फोर्ड' गाड़ी खरीदता है। यह गरीबी बनाम अमीरी का अनुपात इस देश में लगातार बढ़ रहा है।

'कोई बात नहीं' में लेखिका जेजे उर्फ जैकसन, जीवन चांडाल, जतीन दा और शीर्षेन्दू पात्रों की कहानी द्वारा सामाजिक विषमता को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करती है।जे जे उर्फ जैकसन 'एग्लों-इंडियन' दंपति की संतान था लेकिन आजादी के बाद भारत में जाति-प्रथा और रंगभेद की प्रताड़ना के चलते अपना नाम 'जयकिशन' रखता है।

'जीवन-चांडाल' समाज की जातिगत-मर्यादा के चलते उपेक्षित है और नौ वर्षीय अनाथ बच्ची के साथ 'रेप' करने वाले को मौत के घाट उतारकर अन्याय के खिलाफ हथियार उठा लेता है -''मैंने तुम्हें यह इसलिए सुनाया कि तुम समझ सको कि जीवन चांडाल सही था या गलत, एक ऐसी दुनिया ने उसे पैदा किया था, जिसका सरकार, पुलिस कोर्ट किसी पर भी रत्ती-भर विश्वास नहीं रह गया था। वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी की गरीबी और भूख से पैदा हुआ था। उसे पता था कि उसके जैसे लोगों के लिए कहीं कभी कुछ बदलने वाला नहीं है। इसलिए उसने हथियार की ताकत को जाना, तो वह उसके सहारे उस नौ साल की लड़की को न्याय दिलाना चाहता था-ऐसा न्याय, जिसे पाने का उसके पास कोई और रास्ता नहीं था।''[87] इस पात्र के माध्यम से लेखिका भारतीय-संस्कृति के काले पक्ष को उजागर करती है। मनोरंजन दत्त गरीबी और भूखमरी से परेशान होकर चोरी करने लगता है। समाज-सुधार के लिए हिंसात्मक गतिविधियों में लिप्त हो जाता है। शीर्षेन्दू की पत्नी को पुलिस वाले बेवजह 'थर्ड डीग्री' देकर टॉर्चर करते हैं जिससे वह अपनी शारीरिक व मानसिक क्षमता खो देती है। शीर्षेन्दू द्वारा 20 सालों की कानूनी लड़ाई के बावजूद भी उसके साथ निष्पक्ष न्याय नहीं होता है। ''जतीन दा आजाद भारत की ऐसी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने वर्तमान से झुँझला उठा हो, 'वर्तमान' की सच्चाई को जाति, धर्म के गलियारे से उखाड़ लिया हो, वर्णाश्रम उपज की जाति-व्यवस्था..... औपनिवेशिक-सांस्कृतिक दोनों से बनी गलित सांस्कृति चेतना से रूठा हुआ हो।''[88] इस प्रकार लेखिका अपने सभी

उपन्यासों में सामाजिक-आर्थिक विषमता व उनसे उपजी सामाजिक-विसंगतियों और समस्याओं को यथार्थ रूप से अभिव्यक्त कर हमें सोचने के लिए मजबूर करती है।

अलका सरावगी का ‘शेष कादम्बरी’ उपन्यास उन स्त्रियों के जीवन-संघर्ष और व्यथा-कथा का बयान करता है जो आज भी भारतीय समाज में किसी न किसी रूप में प्रताड़ित और उत्पीड़ित होने के बावजूद भी अपने होने की तलाश करती है। उपन्यास की मुख्य पात्र कलकत्ता निवासी-धनी मारवाड़ी परिवार की सत्तर वर्षीय रूबी गुप्ता है जिसका जीवन हमेशा अनेक प्रकार की पीड़ाओं-यातनाओं और मानसिक तनावों में गुजरा है, लेकिन अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में ‘परामर्श’ जैसी समाज सेवी संस्था बनाकर उसके माध्यम से समाज से सतायी-दुत्कारी, पीड़ित और प्रताड़ित महिलाओं की सेवा कर ‘अपने होने के अर्थ को तलाशती है’ अपनी अस्मिता की खोज करती है। ‘आइडेंटिटी क्राइसिस’ इस उपन्यास के मूल केंद्र में है। ‘आइडेंटिटी क्राइसिस’ की शिकार रूबी गुप्ता को बचपनसे ही अपने खालीपन और अकेलेपन का अहसास होता है। रूबी गुप्ता के वास्तविक माता-पिता शिशुवस्था में ही रूबी गुप्ता को अपने करीबी ‘सतपीढ़िया शाह’ अमीर रिश्तेदारों को सौंप देते हैं। करीबी रिश्तेदार कानूनी रूप से रूबी को ‘गोद’ नहीं लेते लेकिन जीवनभर अपने पास रखते हैं।

रूबी को पालक पिता का प्यार तो सदैव मिलता है परंतु पालक माँ द्वारा हमेशा उपेक्षित रहती है। ‘क्या सचमूच माँ उसे इसीलिए प्यार नहीं करती कि वह सचमूच में उसकी माँ नहीं है।’ इसी दर्द के साथ रूबी का बचपन सतपीढ़िया शाह की अमीरी में गुजरता है। अठारह वर्ष की आयु में रूबी को आदिल नाम के मुस्लिम लड़के से प्रेम हो जाता है जो समाज और भविष्य से डरकर रूबी गुप्ता को छोड़कर विदेश चला जाता है। सुधीर से शादी करने के बाद ससूराल में सौतेली सास द्वारा रूबी गुप्ता ‘सतपीढ़िया शाह’ के नाम पर हमेशा शोषित और अपमानित रहती है। अचानक सुधीर की मौत से रूबी गुप्ता और भी निःस्सहाय हो जाती है। दोनों बेटियाँ-गौरी और जया ने भी रूबी गुप्ता को हमेशा अपने से दूर ही रखा जिससे औलाद होते हुए भी औलाद सुख से वंचित रही अर्थात बचपन से लेकर किशोरावस्था और फिर शादी के बाद की छोटी-छोटी दुर्घटनाओं और हादसों ने रूबी गुप्ता के जीवन को तोड़कर निरर्थक और सारहीन बना दिया।

इस प्रकार रूबी गुप्ता ने हमेशा अपनी अस्मिता पर चोट खाते देखा। आत्महत्या का विचार मन में आने पर रूबी गुप्ता वासुमणि की संस्था ‘गुड़ फ्रेंडस सोसायटी’ से जुड़कर समाज-सेवा का कार्य करती है लेकिन वासुदेवमणि से मतभेद होने पर ‘गुड फ्रेंडस सोसायटी’ को छोड़कर ‘वामा स्टड़ी ग्रुप’ से जुड़ जाती है लेकिन यहाँ भी रूबी गुप्ता अदिती वासवानी जैसे धनी

महिलाओं द्वारा छली जाती है जो समाज सेवा के नाम पर ऐशो-आराम करती हैं। इन सबके बावजूद रूबी गुप्ता को जीवन की राह मिल जाती है और जीवन के अंतिम चरण में अपनी स्वयं की सामाजिक संस्था 'परामर्श' खोलकर न केवल समाज द्वारा प्रताड़ित स्त्रियों का सही मार्गदर्शन करती हैं बल्कि अपने जीवन की तलाश भी करती हैं।

इसी संदर्भ में रवीन्द्र त्रिपाठी लिखते हैं- ''रूबी गुप्ता की कहानी एक ऐसी औरत के 'कुछ होने की कोशिश' की जीवन यात्रा का वृतांत है जिसका बचपन और जवानी कईं तरह की मानसिक पीड़ाओं से गुजरी.....और अंत में निजी प्रयास से शुरू की गई संस्था 'परामर्श'के माध्यम से स्त्रियों की पीड़ा और समस्याओं को दूर करने में मदद देती हुई 'अपने होने' को महसूस करती है।''[89] यहीं से रूबी गुप्ता 'रूबी दी' में रूपांतरित हो जाती है।

'परामर्श' संस्था में रूबी दी की मुलाकात सविता, सायरा, आभा जैन, माया बोस, कल्याणी हालदार, फरहा आदि दुखीयारी औरतों से होती है जो भिन्न-भिन्न रूप में समाज में शोषित व प्रताड़ित ही नहीं बल्कि अमानवीय जीवन व्यतीत करने को मजबूर हैं। इन्हीं औरतों के माध्यम से लेखिका 'स्त्री-जीवन की आयरनी' को प्रस्तुत करती है। ''शेष कादम्बरी-मुख्य रूप से उन उत्पीड़ित स्त्रियों की ही दुख गाथा है जो जीवन के होने के अर्थ की खोज करती सत्तर साल की रूबी गुप्ता की 'परामर्श' संस्था से जुड़ी है। सविता, सायरा, फरहा ऐसी ही स्त्रियाँ हैं जो तरह-तरह की शारीरिक-मानसिक यंत्रणाओं का शिकार रही हैं और जिनके लिए होने की कोई बड़ी सार्थकता नहीं है।''[90] सायरा मंद बुद्धि रहती है और अपने सगे भाई द्वारा शारीरिक शोषण के चलते गर्भवती हो जाती है। आभा जैन अपनी बीस वर्षीय इकलोती बेटी की आत्महत्या से परेशान रहती है- जिसका कारण जानने के लिए वह रूबी दी के पास आती है। अपर्णा बनर्जी के घर नौकरानी का काम करनेवाली चौहद वर्षीय कल्याणी हालदार पर चोरी का आरोप लगाने के कारण वह आत्महत्या कर लेती है। फरहा खान अपने पति की नपुंसकता से पीड़ित और परेशान है जो यातना सहकर भी नामर्द पति के साथ जीवन गुजारने को तैयार रहती है।

लेकिन इन सभी औरतों के कष्टों में माया बोस और सविता की दास्ताँ रूबी दी की मनोचेतना को झकझोरकर रख देती है। माया बोस रिटायर्ड प्राध्यापक की बेटी है और शहरमें जाकर वेश्यावृत्ति का काम करती है। इसका कारण जानने पर माया बोस अपने जीवनका नंगा और कटु सत्य रूबी दी को बताती है-''आठ साल की उम्र में मेरा जीवन नष्ट किया उस आदमी ने। कोई और नहीं, एकदम करीबी रिश्तेदार है वह। घर में रहने वाला साँप। मैंने शादी करली, तो साँप को कौन पालेगा? और मुझे उसने विष कन्या बना दिया......और कौन रूबी दी, मास्टर

जी, रूबी दी मास्टर जी। आपको यह कथा मालूम है कि सृष्टि कर्त्ता ब्रफ़्रा अपनी पुत्री सरस्वती पर मुग्ध हो गये थे।''[91] माया बोस के जीवन को बर्बाद करने वाले सगे बाप का पालन करने के लिए मायाबोस 'कॉल गर्ल' बनकर कलकत्ता शहर की सड़कों पर पैदल घूमती है। इसी प्रसंग में लेखिका 'रंडी की मंडी' परिच्छेद में वेश्यावृत्ति की गंभीर समस्या की पड़ताल करती हुई स्पष्ट करती है कि अनेक सामाजिक संस्थाएँ वेश्याओं की दशा सुधारने के नाम पर अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और धन लिप्सा की पूर्ति कर रही हैं।

रूबी गुप्ता की भाँति सविता भी बचपन में पिता, सोतेली माँ, भैया-भाभी, और सास से प्रताड़ित और शोषित रहती है। परस्त्रीगामी-देश-विदेश की लड़कियों से यौन-संबंध का शौकीन उसका पति कुछ ही समय के लिए सविता के पास आता है लेकिन वह अनुभव सविता को 'रेप' से भी ज्यादा कष्ट देता है- ''मैं कैसे किसको बताती कि मेरे शरीर को कितना कष्ट दिया उसने। नहीं, रेप नहीं किया उसने मेरे शरीर का। खुद मेरी मर्जी के लिए वह निरे बेमन से सिर्फ दो-तीन मिनट के लिए आता था मेरे पास.....मैं इस तरह से सूखी हुई रहती कि रेप से भी ज्यादा कष्ट होता था मुझे।''[92] सविता के कष्टों को देखकर रूबी दी को उसमें अपना प्रतिरूप नजर आता है। जिस तरह की पीड़ा अपने परिवार में रूबी दी भोगती है उसी तरह की यातना सविता भोगती है। ''यदि कष्ट की कोई जाति होती है, तो उस नाते मैं सविता के इतने करीबी रिश्ते की हूँ, जितना दुनिया में शायद ही कोई किसी का होता है।''[93] इसी कारण वह अपनी अंतिम वसीयत में अपनी संपत्ति का पच्चीस प्रतिशत हिस्सा सविता को देने का हवाला देती है। ''शेष कादम्बरी की रूबी गाथा में सविता, फरहा, सायरा, माया बोस जैसे स्त्रियों का संपूरक महत्व है। सविता में तो रूबी अपना प्रतिरूप ही देखती है.......अलका इन सभी स्त्रियों के बहाने स्त्री-विमर्श के लिए तमाम मुद्दे तैयार किए हैं। बीच-बीच में यह भाव भी है कि स्त्री घर से बाहर तक कहीं सुरक्षित नहीं है।.......स्त्री-विमर्श में एक वास्तविक पक्ष यह भी प्रकट हुआ है कि स्त्रियाँ भी स्त्रियों की शोषक होती हैं।''[94]

'शेष-कादम्बरी' की भाँति 'कलि कथाः वाया बाइपास' में भी समाज में स्त्रियों के महत्वहीन और दुखद जीवन से जुड़े अनेक मर्मस्पर्शी संदर्भों को उठाया है। स्त्री की पूरी दुनिया इस उपन्यास में मौजूद है। किशोर की माँ बिमली, पत्नी, बेटियाँ, शांता भाभी, बड़ी मामी, कादम्बिनी, आदि के माध्यम से न केवल भारतीय समाज में नारी की पीड़ा व अकेलेपन को उजागर करती है बल्कि उनके दर्द को भी पहचानती है। ये सभी औरतें किसी न किसी रूप में पीड़ित और अपने ही घर में निर्वासित जीवन व्यतीत करने को मजबूर हैं।

किशोर बाबू रूढ़िगत परंपराओं और मर्यादा के चलते अपनी बेटियों को घर में बंद करके रखते हैं। ''बड़ी माँ, तुम बताओं कि पापा इस तरह क्यों सोचते हैं लड़कियों के बारे में? हम क्यों नही खेल सकते बगल के मकान की लड़कियों से? हम क्यों नहीं खड़े हो सकते बरामदे में? हम क्यों नहीं जा सकते सहेलियों के घर? हम क्यों कैद हैं पिजरें में बंद चिड़ियों की तरह? तुम क्यों कैद हो बड़ी माँ? तुमने क्या पाया ऐसा जीवन जीकर? किसके लिए जीवन जिया तुमने ऐसा? तुम क्यों सहती हो हर बात पर पापा की मर्जी?''[95] इसी रूढ़िगत मर्यादा के चलते किशोर अपनी जवान विधवा शांता भाभी का दूसरा विवाह नहीं करता, अतः वह घर की चार दीवारी के बीच बेबस जीवन व्यतीत करती हैं लेकिन उसकी पीड़ा को कोई नहीं समझता है। जोगेश चक्रवर्ती की प्रेमिका कादम्बिनी जातिवाद की बेदी पर बलि होकर आत्महत्या कर लेती है। किशोर की बड़ी मामी अपने पति की वेश्यावृत्ति से परेशान है और उनकी इस आदत को छुड़ाने के लिए स्तनों पर मेंहदी लगाने के टोटका-अंधविश्वास में अपनी जान दे देती है।

'कलि-कथा: वाया बाइपास ' में व्याप्त भारतीय-स्त्री की व्यथा के संदर्भ में ज्योतिष जोशी लिखते हैं- ''कलि-कथा: वाया बाइपास' की निर्मिति का एक पक्ष यह दृष्टि भी है जो स्त्री-मुक्ति का प्रश्न उठाती है। क्या स्त्री गुलाम है, क्या वह हमारी परंपरा के बोझ से खुद को मुक्त नहीं कर सकती? किशोर की विधवा भाभी, उनकी सुंदर मामी की भी यही नियति है जो अपना प्रतिरोध जीते जी दर्ज नहीं करा पाती।''[96] इसी नारी-जीवन की विडंबना को 'कोई बात नहीं' में लेखिका दादी के माध्यम से दर्शाती है।

दादी पारिवारिक मर्यादा व परंपरा के नाम पर अपने जीवन के अट्ठाईस साल अपार कष्ट झेलते हुए गुजार देती है। 'इस पार उस पार' परिच्छेद में लेखिका दादी की आपबीती के माध्यम से नारी-जीवन के कष्टों का बयान करती है। पंद्रह वर्ष की बाल्यावस्था में दादी की शादी हो जाती है, ससुराल में दादी परंपरा व मर्यादा के चलते घर में बंद रहने को मजबूर रहती है। ''पहले के लोग बहुओं के लिए बाघ हुआ करते थे। एक बार बुढ़ऊजी मतलब मेरे दादा-ससुर ने बरामदे से सड़क की तरफ झाँकते देख लिया, तो एकदम मेरी घेंटी मतलब गरदन पकड़ ली और बोले- एक खसम से जी नहीं भरा क्या?'[97] दादी-नारी जीवन के कष्टों को बखूबी समझती थी इसीलिए अपनी बहु को आगे पढ़ने-बढ़ने की पूरी आजादी देती है। अपनी बहु को वकील के रूप में देखकर दादी को बहुत खुशी होती है। ''मेरा सपना था कि मेरी बहु ऐसी हो, जो वह सबकुछ कर सके, जिसका मैं सपना भी नहीं देख सकती थी। तुम्हारी माँ में मेरा सपना फल गया।''[98] विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अलका सरावगी के उपन्यासों की सभी स्त्रियाँ समय व समाज की विषमताओं

से हर स्तर पर शोषित और पीड़ित हैं। अपने परिवार में ही पिता, भाई चिर-परिचित पवित्र संबंधों से निर्वासित और प्रताड़ित हैं। लेखिका इन स्त्री-पात्रों के माध्यम से प्रायः उन छोटी-छोटी वास्तविक समस्याओं को उठाती है जो अब तक स्त्री-विमर्श के दायरे में अनदेखी रह गई थी, जो लेखिका की सूक्ष्म दृष्टि का परिणाम है। इन औरतों के कष्टों और व्यथा-कथा के माध्यम से लेखिका स्त्री-विमर्श का नया आयाम रचती है जो हमें स्त्री-जीवन के कष्टों के प्रति नये रूप में सोचने-समझने का दृष्टिकोण प्रदान करती है।

अलका सरावगी की जीवन-दृष्टि व्यापक जीवनानुभव और अछूते-यथार्थ से जुड़ी हुई है। उन्होंने अपने उपन्यासों में इतिहास, संस्कृति और सामाजिक विसंगतियों के साथ भूमंडलीकरण व देश की आर्थिक विषमता को भी उभारने का सार्थक प्रयास किया है। 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास 'कार्पोरेट वर्ल्ड' की स्थितियों पर आधारित है जिसमें उन्होंने कार्पोरेट जगत के बदलते समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के साथ देश की आर्थिक-विषमता व बहुराष्ट्रीय-कंपनियों के दुष्परिणामों का हलफिया बयान किया है।

लेखिका ने दर्शाया है कि आज इंडिया का छोटा-बड़ा प्रत्येक क्षेत्र इन विदेशी बहुराष्ट्रीय-कंपनियों का गुलाम बना हुआ है। ये कंपनियाँ न केवल हमारी आत्मनिर्भरता को समाप्त कर रही हैं बल्कि हमारे पर्यावरण और वातावरण को भी व्यापक पैमाने पर क्षति पहुँचा रही हैं। इस उपन्यास में तीन प्रमुख पात्र हैं- के. वी. शंकर अय्यर, उपमन्यु भट्ट और गुरूचरण, ये तीनों पात्र देश के प्रसिद्ध 'मार्केटिंग कंसल्टेंट' है। जिनके माध्यम से लेखिका 'कार्पोरेट वर्ल्ड' के समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र की तमाम विसंगतियों और कारगुजारियों को उजागर करती है। 'ब्राम्फ्रण और श्वान' परिच्छेद में के. वी. शंकर अय्यर बताता है कि इस देश की सौ प्रतिशत जनता में से पंद्रह प्रतिशत उच्चवर्ग और बड़े पूँजीपतियों का है जो अपनी जिंदगी स्वयं चलाते हैं। पंद्रह प्रतिशत निम्न वर्ग या गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत करने वाले भारतीय है जिनके लिए सरकार प्रयास करती है बाकी देश की 70 प्रतिशत जनता गाँव व शहरों में निवास करने वाले मध्यम वर्ग की है जो देशका हर काम तय करती है। इसी 70 प्रतिशत जनता को विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ माध्यम बनाकर अपना बड़ा मुनाफा ही नहीं कमा रही बल्कि अपना आर्थिक साम्राज्य स्थापित कर रही हैं।

भारत शुरू से ही छोटे बाजारों का देश रहा है और इसी से देश की आम जनता जुड़ी हुई है, ये बड़ी कंपनियाँ इन्हीं छोटे-छोटे बाजारों को हथियार बनाकर अपना अर्थशास्त्र मजबूत कर रही हैं- ''अभी तक भारत छोटे-छोटे करोड़ों 'दुकानदारों का देश' था। प्रायः इन दुकानों को

बाप-दादों के जमाने से चले आए पुश्तैनी व्यापार के तौर पर बेटे-पोते चला रहे थे। किंतु अब वह समय आ गया है कि दुनिया के सबसे बड़े रिटेल या खुदरा मार्केट को संगठित कर उसका रस खींचने के लिए टाटा, आई.टी.सी. और रिलायंस ही नहीं, अमेरिका की वाल-मार्ट जैसी कंपनियाँ तक कूद पड़ी हैं। कहते हैं कि दस साल के अंदर-अंदर भारत का यह रिटेल सेक्टर 650 करोड़ रुपये का हो जाएगा।''[99] जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में काम आने वाली वस्तुओं का निर्माण कर ये कंपनियाँ लोगों की सुविधा के नाम पर उनकी आत्मनिर्भरता को तो समाप्त कर ही रही हैं बल्कि बड़े स्तर पर अपना लाभ भी कमा रही हैं। के. वी. की पत्नी फोन द्वारा 'रिलांयस फ्रेश' से सब्जियाँ मंगाती है, भट्ट की पत्नी परंपरागत संसाधनों को छोड़कर नई क्रॉकरी, इटालियन, मेक्सिकन, लेबनीन आदि विदेशी व्यंजनों और वस्तुओं पर केंद्रित हो गई।

आज का समय इंडिया की 'इकोनामिक बूम' का है, इस आर्थिक उछाल के चलते देश में मार्केट फैलता जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मायाजाल में देश काहर घर-परिवार फंसता जा रहा है। सब्जी बेचने वाले से लेकर नाई, मोची तक जिनकी आमदनी बहुत कम है- वे भी मोबाइल रखने लगे हैं, आदिवासी जंगल में टी. वी. देखकर नये सपने बुन रहा है। 'हिंदुस्तान लीवर' जैसी कंपनियाँ रोजमर्रा के काम आने वाली वस्तुएँ यथा-टूथब्रश, पेस्ट, दूध पाउडर, इलेक्ट्रॉनिक सामान आदि लेकर प्रत्येक घर-परिवार पर अपना कब्जा जमाये हुए हैं। अपने अर्थशास्त्र को मजबूत करने के लिए ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बड़ी 'विज्ञापन एजेंसियों' के माध्यम से अपने ब्राण्डों का उपयोगितावादी प्रचार द्वारा लोगों को धोखा देकर अपना बड़ा लाभ कमा रही हैं। उपन्यास के पात्र के. वी. व गुरूचरण के माध्यम से इस सच्चाई को उजागर करती है। ''अरे यार, तुम्हारी मल्टीनेशनल कंपनी इंडिया में क्या बेचती है? अरे क्या नाम है, भूल गया मैं, क्या नाम है तुम्हारे प्रोडक्ट का? 'पावरिक्स'। कितना बेचते हो एक साल में? दो सौ करोड़ का? चार सौ करोड़ का? और उसमें है क्या? थोड़ी सी चीनी, थोड़ा आटा, थोड़ा दूध, थोड़ा फ्लेवर-यही तो? उसे पिला-पिलाकर तुम इस देश का क्या भला कर लोगे? बेचारा गरीब मर-मरकर खरीदेगा कि 'पावरिक्स' उसे 'पॉवरफूल' बना देगा। वह सोचता रहता है कि सारे अमीर यही पी-पीकर ऐसे ताकत वाले बने होंगे। अरे बेटा, दाल-भात खा प्रभु के गुण गा। ये पॉवरिक्स किसी को ताकत नहीं देगा, न गरीब को, न अमीर को। यह तो खाली गुरूचरण की मल्टीनेशनल कंपनी को ताकत देगा।''[100] के. वी. अपनी पत्नी को बताता है कि टी. वी. पर अमन वर्मा फिनाइल की जगह 'हारपिक' इस्तेमाल करने पर जोर दे रहा है, और लोग प्रभावित होकर हारपिक खरीदने में लगे हुए हैं। जबकि हारपिक इतना प्रभावकारी नहीं है।

भट्ट के माध्यम से लेखिका स्पष्ट करती है कि ये विज्ञापन एजेंसियाँ लोगों की मानसिकता का अध्ययन कर अपने ब्राण्डों का प्रसार करती हैं। अपने मास्टर माइंड दिमाग की बदौलत भट्ट ने चैन्नई की 'एम्बर डिपार्टमेंटल स्टोर' की सेल का शुंभारंभ तमिल के प्रसिद्ध अभिनेता रविकान्त के जन्मदिन के अवसर पर रखा और डिपार्टमेंटल स्टोर का प्रचार इस तरह से किया कि आपको यहाँ 'आँसूओं' को छोड़कर सबकुछ मिलेगा-'ओनलीटीयर्स फ्रॉम एल्सवेयर'। जिससे प्रभावित होकर हजारों लोग सामान खरीदने पहुँचे और लगभग पाँच करोड़ की ब्रिक्री हुई। इसी प्रकार दिल्ली में के. वी. शंकर अय्यर ने 'इंडियन स्काई शॉप' का प्रचार किया और दुकान मालिक को करोड़ों का फायदा पहुँचाया।

आज देश के लोगों का भविष्य व जीवन शैली सरकारे नहीं बल्कि मल्टीनेशनल कंपनियाँ तय करती हैं। बाजारों में विभिन्न तरह का ब्राण्ड लाकर इन कंपनियों ने लोगों की सोचने व निर्णय करने की क्षमता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है और मानसिक रूप से अपना गुलाम बना लिया है। ''अब वे दिन गए जब इंडिया में सरकारी अफसर तय करते थे कि औरतें बाजार से कौन-सी क्रीम और लिपस्टिक खरीदेंगी और लोग किस टी.वी पर कौन-सा प्रोग्राम देखेंगे। अब तो देश के दस करोड़ मोबाइल फोन वाले परेशान हैं कि पचासों मॉडल से कौन-सा मोबाइल खरीदें..... दो करोड़ क्रेडिट कार्ड वाले परेशान हैं कि कौन सा एयरकंडीशन, कौन सा कैमरा, कौन सा वैक्यूम क्लीनर और कौन सा माइक्रोवेब खरीदें।''[101] अर्थात् आज 'मार्केट' के कंट्रोल में 'नेशन' हो गया है। ये बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हर स्थिति में अपना फायदा देखती हैं। देश के विकास के नाम पर 'स्पेशल इकोनोमिक जोन' सेज बनाकर ये कंपनियाँ लाखों किसानों को अपनी पैतृक भू-संपदा से बेदखल कर अपना मुनाफा बढ़ा रही हैं।

लेखिका ने यह भी दर्शाया है कि औद्योगिकीकरण के चलते बड़ी मात्रा में पर्यावरण प्रदूषण हो रहा है अतः वहाँ की सरकार 'कार्बन क्रेडिट' के नाम पर इन कंपनियों से बड़ा टैक्स वसूल रही है, ये कंपनियाँ इस टैक्स से बचने के लिए भारत जैसे विकासशील देशों से सस्ती मात्रा में 'कार्बन क्रेडिट' खरीदकर टैक्स से बचते हुए अपना लाभ कमा रही हैं। के. वी. की 'कार्बोवेज सिस्टम्स इंक' के.वी.एस. आई ऐसी ही कंपनी है जो यूरोप और अमेरिका में 'कार्बन क्रेडिट' बेचती है। लेखिका ने यह भी दर्शाया है कि आज का समय सूचना क्रांति और प्रौद्योगिकी का है, जिससे व्यक्ति इंटरनेट के जरिये दुनिया की समस्त जानकारियाँ जुटा सकता है, इसके चलते दुनिया की सीमाएँ टूटकर सिमट गई है।

समय के साथ देश का आर्थिक-परिदृश्य बड़े पैमाने पर बदल गया है "बंगलौर अब सिलिकौन वैली बन गया है, हैदराबाद अब साइबराबाद है चैन्नई गाड़ियों के कारखानों का नया ड्रीटोयट। तिरूपुर नया मैनचेस्टर बन गया है।"[102] लेखिका यह तथ्य भी उजागर करती है कि उत्तर-भारत की तुलना में दक्षिण-भारत ज्यादा सुरक्षित और शांतिप्रिय है इसी कारण विदेशी कंपनियाँ अपना कारोबार ज्यादा 'दक्षिण भारत' में ही स्थापित कर रही हैं। "पिछली बार चैन्नई की यात्रा में के. वी. तेरह सौ एकड़ में फैला 'महिंद्रा वर्ल्ड सिटी'का बिजनेस-आई.टी. पार्क देखकर आए थे। वहाँ नारायणमूर्ति इन्फोसिस दुनिया का सबसे बड़ा आई. टी. प्रोजेक्ट बना रहा है। चैन्नई में मल्टीनेशनल कंपनियाँ लाइन लगाकर खड़ी हैं, चाहे गाड़ियों की बी.एम.डब्ल्यू. फोर्ड या हुंडाई कंपनियाँ हो या इलेक्ट्रॉनिक की नोकिया, मोटरोला, सैमसंग। खरीददारों के पास में। जैसा पैसा अब साऊथ इंडिया में है, उसकी नार्थ वाले कल्पना भी नहीं कर सकते।"[103]।

कार्पोरेट जगत के फैलते अर्थशास्त्र के साथ लेखिका ने सिमटते समाजशास्त्र को भी उद्घाटित किया है। इंडिया की 'इकोनामिक बूम' के साथ ही लोगों में धैर्य व सहनशीलता के गुणों का लोप हो गया है। के. वी. शंकर की कामयाबी से उसके वर्ग के लोग बेहद दुःखी और ईर्ष्यावश 'साउथ इंडियन फाक्सेस' बोलते हैं। 'एम्बर डिपार्टमेंटल स्टोर' की एक दिन में पाँच करोड़ बिक्री करवाने वाले मास्टरमाइंड भट्ट को मालिक नौकरी से निकाल देता है। दिल्ली में 'माँ यशोदा डेयरीज' कंपनी को भट्ट अपने मैनेजमेंट की बदौलत काफी फायदा पहुँचाता है लेकिन डेयरी का मालिक अपने व्यक्तिगत फायदे के लिए षड्यंत्र के तहत भटट् को नौकरी से निकाल देता है। भोपाल में 'जिपर' कंपनी को भट्ट ने घाटे से उभारकर अच्छी पोजिशन में पहुँचाया लेकिन ईर्ष्यावश कंपनी का मालिक देवराय-भट्टपर आरोप लगाता है जिससे भट्ट नौकरी छोड़ देता है। कार्पोरेट जगत की आर्थिक उन्नति के बरक्स लेखिका ने देश की आर्थिक विषमता को भी दर्शाया है।

संपूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अलका सरावगी अपने उपन्यासों में मारवाड़ी जाति व समाज की ही नहीं बल्कि 'आज के समय' की स्थितियों का बयान करती हैं। उनके संपूर्ण उपन्यासों में वर्तमान समय की सभी प्रमुख समस्याओं की अनुगूँज सुनाई पड़ती है। उनके उपन्यासों का स्वर एक खत्म होते समय की तीखी अनुभूति कराने के साथ आनेवाले समय की गंभीर समस्याओं-परिणामों व आशंकाओं के प्रति हमें सजग व सचेत रहने की प्रेरणा देते हैं जो उनके उपन्यास-साहित्य को मूल्यबोधपरकता को सिद्ध करता है।

अलका सरावगी का 'कलि-कथा' उपन्यास अपने युग का प्रमाणिक दस्तावेज है। यह हमें समाज, इतिहास और राजनीति घटनाओं से तो परिचित कराता ही है साथ ही औपनिवेशिक प्रभाव और समकालीन समय से भी साक्षात्कार करवाता है। इस उपन्यास की मूल्यवत्ता के संदर्भ में उपन्यासकार विभूति नारायण राय लिखते हैं- ''अलका सरावगी ने उपन्यास की कथावस्तु में मारवाड़ी जाति के पात्र किशोर बाबू की कथा के द्वारा एक युग तथा उसके समूचे युगधर्म को वाणी दी गई हैं- जिसमें बंगाली व मारवाड़ी समाज की साझी संस्कृति है, दोनों संस्कृति के लोगों की बद्ध व मुक्त मानसिकता है, देश के 150 वर्षों का इतिहास और युगीन राजनीतिक घटनाक्रम है, अंग्रेजी शासन का अत्याचार और 1757 ई. का प्लासी का युद्ध है, बंगाल का अकाल और द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका है, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और भूमंडलीकरण का दुष्परिणाम है।'' [104] अर्थात् इस उपन्यास के कथ्य का फलक बड़ा व्यापक और बहुआयामी है जिसमें लेखिका समय व समाज की पड़ताल करने के साथ-साथ व्यापक जीवन की चर्चा भी करती है। इसी संदर्भ में अश्विनीकुमार दुबे लिखते हैं- ''कथा किशोर बाबू की है, या उनके माध्यम से एक भरे पूरे मारवाड़ी परिवार की कथा है, ये आजादी के पूर्व से आजादी के पचास साल बाद तक की मारवाड़ी परिवार की पूरी व्यथा-कथा है, यह इस काल-खण्ड में पूरे परिवार के सुख-दुःख, संघर्ष, अंग्रेजों से दोस्ती, दानशीलता और बिखरते मूल्यों का लंबा सिलसिला है, यह कथा।''[105]

अर्थात लेखिका ने कथ्य की दृष्टि से आजादी के पचास साल पूर्व से लेकर पचास साल बाद के बदलते परिदृश्य को हमारे सामने रखती हैं। एक मारवाड़ी परिवार को केंद्र में रखकर इतिहास, राजनीति, समाज, धर्म, आधुनिकता और बाजारवाद-भूमंडलीकरण की नयी व्याख्या करती हैं जिससे यह उपन्यास 'एक राष्ट्रीय रूपक' सिद्ध होता है। इन सभी पक्षों को उद्घाटित करने के लिए लेखिका ने उपन्यास के रचना-शिल्प में अनेक नवीन कथा-शिल्प प्रविधियों का प्रयोग किया जिससे मारवाड़ी परिवार के किशोर बाबू की मूलकथा 'बाइपास' होकर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय घटनाओं तथा युगीन परिवेश व संदर्भों से जुड़ जाती है।

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास की रचना-प्रक्रिया में लेखिका ने अनेक नवीन शिल्प-प्रविधियों का प्रयोग किया है। यह उपन्यास कहीं वाचक, कहीं आत्मकथात्मक तो कहीं संस्मरणात्मक शैलियों में अपनी किस्सागोई का निर्वाह करता हुआ शिल्प के स्तर पर ताजापन लिए हुए है। इसके कथानक गठन में एक अनगढ़पन दिखता है। ''अपने शिल्प में यह उपन्यास नायाब है तो विन्यास में नए आस्वाद का सूचक। किस्सागोई शैली में लिखित इस कृति में आत्मकथा, जीवनी, इतिहास और समाजशास्त्र की इतनी गहरी युक्तियाँ काम करती है कि सहसा

यकीन करना कठिन हो जाता है कि हम उपन्यास पढ़ रहे हैं या अपने ही समय की जिंदा तस्वीर देख रहे हैं।''[106] उपन्यास की यह प्रोगात्मकता कई रूपों में दिखाई पड़ती है। सबसे पहले उपन्यास के शीर्षक 'कलि-कथाः वाया बाइपास' को देखें तो यह अपने आपमें गहरी अर्थ-व्याप्ति रखता है। 'कलि-कथा' शब्द से अनेक ध्वनियाँ-प्रतिध्वनित होती है, जैसे-कलकत्ता की कथा, आने वाले कल की कथा, बीते कल की कथा, अकाल-कथा, कलियुग की कथा, युग की कथा। ''कलि-कथा' के कलि की अनेक ध्वनियाँ हैं- कलकत्ता, बीता कल, आनेवाला कल, अवतरित होता पौराणिक कलियुग आदि।''[107]

"'बाइपास' शब्द से भी कई अर्थ निकलकर सामने आते हैं- सुविधाजनक समझौतों का रास्ता, सीधा-साधा रास्ता, बाइपास शल्य सर्जरी, बाइपास ऑपरेशन आदि।"[108] परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं-''उपन्यास के युग संदर्भ को देखते हुए शीर्षक 'बाइपास' शब्द एक से अधिक अर्थों की व्यंजना करता है, उपन्यास शुरू होता है किशोर बाबू की 'बाइपास सर्जरी' जैसे प्रसंग केमाध्यम से......अंत में बाइपास की व्यंजना भी भिन्न है। राष्ट्रीय रूपक अर्थ में।''[109] इस प्रकार उपन्यास का शीर्षक अपने आप में कई अर्थों की अभिव्यंजना व्यक्त करता है जिसकी अनुगूँज अलग-अलग रूपों में उपन्यास में जगह-जगह बिखरी हुई है।

जिनमें लेखिका शीर्षकीकरण शिल्प का प्रयोग करते हुए प्रत्येक परिच्छेद का नामकरण किया है। इस उपन्यास में कुल पन्द्रह परिच्छेद है 'कलि-कथाः 1997', 'समवेयर इन द नार्थ', 'बीच वाला कमरा कहाँ है', 'कलि-कथाः 1940', 'जदि निर्वासने पाठाबेई', 'जिंदगियाँ बेमतलब', 'पुनः कलि-कथाः 1940', '7 नम्बर', 'प्रसन्न कुमार टैगोर स्ट्रीट'. 'कौल 1 जनवरी 2000 ईस्वी', '2 जुलाईः 1940', 'हिटलर और नेहरू', 'नाइंटीन फोर्टी टूः अ लवस्टोरी', 'अकाल कभी होता नहीं', 'द ग्रेट कैलकटा किलिंग', 'आजादी की छाँव मेंः उत्तर काण्ड' प्रमुख परिच्छेद हैं। समय, स्थान, कालक्रम और घटनाओं को आधार बनाकर लेखिका ने इन शीर्षकों का नामकरण किया है।

इसके कथानक गठन में लेखिका गहरी युक्तियों का प्रयोग करती हुई यह विश्वासदर्ज कराती है कि इस उपन्यास की कथा लेखन में वह माध्यम मात्र है। उपन्यास का नायक किशोर बाबू अपनी कथा लिखवा रहें हैं और लेखिका बकौल कथा लिख रही है। ''यह कथाकिशोर बाबू की कथा है और कथा-लेखक की उपस्थिति इसमें इतनी ही होगी जितनी कि खांटी शुद्ध किस्सागोई में होनी चाहिए। दरअसल कुछ एकदम नयी आधुनिकतम रचनाओं को पढ़ने के बाद इस कथा को लिखवाने के पहले किशोर बाबू ने कथा-लेखक से ऐसा कौल करवाया कि वह

बंगाल के ख्याति प्राप्त सुनारों की तरह बाईस कैरेट शुद्धि के गहनों जैसी कथा लिखे-यानी विशुद्ध सोने के चौबीस कैरेट में दो कैरेट की मिलावट करने जितनी ही कथा-लेखक को छूट है।''[110] तात्पर्य है कि कथा लेखक अपनी तरफ से केवल दो प्रतिशत कल्पना का प्रयोग करती है बाकि संपूर्ण हिस्सा कथा लिखवाने वाले नायक किशोर बाबू के जीवन का वास्तविक सच है। लेकिन दो प्रतिशत कल्पना का प्रयोग भी लेखिका इस कुशलता से करती है कि वह वास्तविक प्रतीत होती है।

इस उपन्यास की रचना प्रक्रिया में लेखिका अंतरपाठीय-शिल्प का प्रयोग करती हुई उपन्यास को बहुआयामी और बहुव्यापक बनाती है। 'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास कलकत्ता शहर में लंबे समय से वास करती मारवाड़ी जाति पर आधारित है लेकिन इसका फलक बहुव्यापक और बहुआयामी है जिसमें लेखिका ने मारवाड़ी जाति के पात्र किशोर बाबू की कथा के माध्यम से 1751 ई. से लेकर 2000 ई. तक के समय को संदर्भित करने का प्रयास किया है। ''कलि-कथा: वाया बाइपास' युद्ध की कथा है। नायक किशोर की जुबानी उसकी छः पीढ़ियों की माध्यम से। यह कलियुग स्वतंत्रता संग्राम से अब तक के 150 वर्षों का है। इसे मात्र 216 पृष्ठों में बांधना बाइपास की कथा के बिना संभव न था, इसलिए यह कलि-कथा बाइपासों की है और बाइपासों में है इतना कि यह कृति कलि-कथा का बाइपास भी है।''[111] उपन्यास को शुरू में पढ़ते समय ऐसा लगता है कि इसमें केवल मारवाड़ी जाति की कहानी है लेकिन जैसे ही उपन्यास का कथाक्रम आगे बढ़ता है वैसे ही सहज रूप से सिराजुद्दौला व 1757 ई. के प्लासी के युद्ध का अंतरपाठ, बंगाली व मारवाड़ी लोक गीतों का अंतरपाठ, अमेरिकन कहानीकार 'ओ हेनरी' की कहानी 'ऑफ्टर ट्वेंटी ईयर्स' सामाजिक अंतरपाठ जिसमें 1943 ई. के बंगाल के अकाल का वर्णन है। राजनीतिक अंतरपाठ जिसमें राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर की घटनाओं का सूचनात्मक विवरण है। ''कथानायक के साक्ष्य से 47 वर्ष पूर्व जिन प्रकांड घटनाओं में ले जाया गया है, वे हैं द्वितीय विश्वयुद्ध और कलकत्ता पर बमबारी, 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन, 1943 का बंगाल का अकाल, 1946 का मुस्लिम लीग का डायरेक्ट एक्शन डे और कलकत्ता का नरसंहार, 1947 का देश-विभाजन और स्वतंत्रता दिवस।''[112] आध्यात्मिक अंतरपाठ जिसके अंतर्गत लेखिका रामानंद उर्फ जोगेशचन्द्र चक्रवर्ती की प्रेम कहानी का चित्रण करती है। इसी प्रसंग में लेखिका सहजानंद जैसे पाखंडी साधु की कथा का थी वर्णन करती हुई धार्मिक पाखंडता को उजागार करती है। ये सभी अवांतर कथाएं किशोर बाबू की मूल कथा के साथ जुड़कर अनेक वर्तुलाकार काल चक्र की परतों को खोलती हैं।

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास की कथा इसके प्रमुख नायक किशोर बाबू की स्मृतियों का संयोजन है। किशोर बाबू की धारणा है- ''इस संसार में बीता हुआ कुछ भी खोता नहीं है। कैसे खो सकता है जब हम हैं अभी तक? ज्यादा-से-ज्यादा वह हमारे अंदर भीतर कहीं दूर पुराने दूर उजड़े शहरों की तरह ऊपर की परतों की तह में दफन हो जाता है...... बीती हुई एक घड़ी भी कभी मरती नहीं। वह कहीं अंदर दुबकी रहती है। और कहते हैं कि जिस समय आदमी मरता है वह एक फिल्म की रील की तरह अपनी जी हुई जिंदगी को फिर बचपन से अभी तक पूरी-पूरी देखता है। लेकिन रिलीज हुई फिल्म की तरह वह उसमें कुछ बदल नहीं सकता।''[113] किशोर बाबू को बाइपास सर्जरी के बाद उनके अतीत की अनेक घटनाएं और स्मृतियाँ याद आती हैं। किशोर बाबू की जीवन की अनेक स्मृतियाँ हैं, उनकी अनेक कहानियाँ हैं जो सब एक दूसरे से घुलमिल कर एकाकार हो गई है। जैसे ही वे वर्तमान की किसी घटना को देखते हैं वैसे ही वे अतीत में खो जाते हैं। इसी कारण उपन्यास का कथ्य कभी उनके वर्तमान में तो कभी अतीत में गमन करता रहता है। पूर्वदीप्ति शिल्पप्रयोग के माध्यम द्वारा लेखिका कथ्य में किशोर बाबू की अतीत से जुड़ी स्मृतियों और घटनाओं को उजागर करती हुई उपन्यास के कथानक को काल और दिक् की दृष्टि से अर्थ विस्तारित करती है।

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में नीड़ीकरण शिल्प का प्रयोग भी बखुबी देखा जा सकता है। चूँकि इस उपन्यास का फलक बहुत व्यापक है जिसमें लेखिका ने 150 वर्षों के इतिहास की सभी प्रमुख घटनाओं को समेटा है इसलिए उपन्यास की किशोर बाबू की मूलकथा के साथ अन्य पात्रों की कथाओं को भी गुम्फित किया है जिनमें प्रमुख है- घमंडीलाल व रामविलास की कहानी-इन दोनों पात्रों की कहानियों के माध्यम से लेखिका मारवाड़ी व अंग्रेजों के संबंधों को उजागर करती है। ''रामविलास की कहानी के द्वारा मारवाड़ी समाज अंग्रेज तथा आधी क्रिस्तानी और आधी हिंदुस्तानी आबादी के अंतःसंबंध और अंतर्विरोध पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।'' [114] हैमिल्टन व जुनियर हैमिल्टन की कहानी के माध्यम से यह उजागर करती है कि स्त्री और पुरूष के मध्य एक आदिम आकर्षण होता है जो किसी भी जाति व धर्म की सीमाओं को तोड़कर एक-दूसरे से जुड़ जाता है। इसी कारण है मिल्टन एक हिंदुस्तानी औरत प्रति आकर्षित होकर उससे शादी कर लेता है। किशोर के मामाओं की कहानी के द्वारा मारवाड़ियों की अर्थ केंद्रित प्रवृत्ति को उजागर करती है। जब पूरा देश आजादी की लड़ाई के लिए संघर्ष कर रहा था उस समय किशोर के मामा धन कमाने में लगे हुए थे। ''मामा जी लोगों को फौज की हरी वरदी, तारपोलिन और कंबल सप्लाई करनेका टेंडर मिल गया, जिसके कारण न काम का अंत है और न मुनाफे का। ..... गांधी-नेहरू सब जेल काट रहे हैं और अंग्रेजों की लड़ाई में मदद करना अपने देश से

द्रोह करना है। यहाँ सब चांदी काटने में लगे हैं। मंझले मामा पर काम का जैसे नशा सवार हो गया है। बीस बरस की आयु में विधुर होकर उन्होंने धन कमाना ही अपने जीवन का एकांतिक लक्ष्य बना डाला है।''[115] शांता भाभी, बड़ी मामी व किशोर की पत्नी की कहानी द्वारा मारवाड़ी समाजमें औरतों की दयनीय स्थिति को उजागर करती है। पुतुल नर्स व बनवारी दास की कहानी आर्थिक विपन्नता व विषमता को दर्शाती है, जोगेश चक्रवर्ती की प्रेम कहानी जातिभेद को प्रकट करती है। अमोलक व शांतनु की कहानी स्वाधीनता-आंदोलन की घटनाओं, बंगाल के अकाल, सांप्रदायिक दंगों व गांधीवादी मूल्यों के साथ पूँजीवाद के वर्गभेदी विद्रूपता को रेखांकित करती है। किशोर बाबू पात्र की कथा के साथ इन सभी कहानियों को जोड़कर लेखिका उपन्यास के फलक को देश व समाज से जोड़ते हुए उसे व्यापकता प्रदान करती है।

उपन्यास की रचना-प्रक्रिया में लेखिका ने कथ्य व भाषा के अनुरूप इसमें एकसाथ कई शैलियों का प्रयोग किया है जो इस उपन्यास की उल्लेखनीय विशेषता है। इस उपन्यास का कथात्मक वर्णन इतने रोचक ढंग से किया गया है कि कथारस के आस्वादन में कोई बाधा नहीं आती है। लेखिमिक उभार शिल्प का प्रयोग भी एक ऐसी ही नवीन प्रविधि है। कथा प्रस्तुति में लेखिका ने मुद्रण के विशेष प्रकार की सहायता ली है। जहाँ कथा-लेखक अनिवार्य रूप से कथा में हस्तक्षेप करता है वहाँ विशेष प्रकार के इटालियन द्वारा लैसंडाउन रोड़ का वर्णन भी इसी शैली में किया है। इसके अलावा 'कलि-कथा: 1940' परिच्छेद में 1757 ई. के प्लासी के युद्ध का वर्णन, जदि निर्वास ने पाठाबेई-कलिकाता' में अंग्रेजों का भारतीयों के साथ अमानवीय व्यवहार 'हिटलर व नेहरू' शीर्षक में किशोर बाबू का चिंतन 'द ग्रेट कैलकटा किंलिंग' में हिंदू-मुसलमानों के बीच 16 अगस्त, 1946 को फैले सांप्रदायिक दंगों का वर्णन, उपन्यास के अंत का 'पुनश्च', 'हिंजड़े और पार्टीशन' आदि सभी के वर्णन में लेखिका लेखिमिक उभार शिल्प का प्रयोग करती है।

कुछ जगह पर लेखिका 'जादुई यथार्थ' का भी प्रयोग करती है। बाबरी मस्जिदकांड में अमोलक मारा जाता है। मरने के बाद किशोर बाबू उसकी आत्मा से बात करते हैं। उपन्यास के अंत में चमत्कारिक रूप में अमोलक पुनः जीवित हो जाता है- ''लेकिन तुम तो बाबरी मस्जिद कांड में मर चुके थे न?.... नहीं मैं नहीं मरा था। जो मरा, वह तो मेरा 'डुप्लीकेट' था। मेरी ही जैसी शक्ल और अक्लवाला।''[116] यह प्रसंग उपन्यास को कुछ अविश्वसनीय बना देता है। इसी प्रकार अनेक जगह आत्मकथात्मक व पत्रात्मक शैली का प्रयोग भी करती है। ''इस उपन्यास का शिल्प शायद इसका सबसे मजबूत पक्ष है। 216 पृष्ठों में एक परिवार की छः पीढ़ियों के बहाने एक

जाति और राष्ट्र के डेढ़ सौ बरसों का इतिहास इसीलिए संभव हो सका।... एकालाप, स्मृति, डायरी, फ्लैश बैक, स्वप्न नोट्स आदि शैलियों को रोचक किस्सागोई में ढाला गया है।''[117] इस उपन्यास की शिल्पगत नवीनता के बारे में गोपाल राय लिखते हैं- '' 'कलि-कथाः वाया बाइपास' की संरचना में जो 'नवीनता' दिखायी पड़ती है, और जिससे हिंदी के कुछ आलोचक अभिभूत हैं, वह प्रथमतः दृश्यात्मक-परिदृश्यात्मक, प्रत्यग्दर्शन, डायरी, इतिहास, आत्मकथा आदि का मिश्रण ही है..... मुद्रण में विभिन्न 'फौंट' का उपयोग भी एक 'नयापन' ही है, पर उसकी सार्थकता संदिग्ध है, और उसे विश्वसनीय बनाने में लेखिका को सफलता नहीं मिली है। 'प्रत्यग्दर्शन' प्रविधि में नयापन लाने का प्रयास इस रूप में किया गया है कि किशोर बाबू का 'बाइपास सर्जरी' के बाद से एक झुटपुटी चेतना की स्थिति में ला दिया गया है, जिससे वे अपना अतीत जीवन जीने लगते हैं। एक 'नयापन' यह भी है कि किशोर बाबू एक अनुष्ठान के द्वारा अपने बालसखा अमोलक की आत्मा को बुलाने में सफल होते हैं, जो उनके भीतर, प्रवेश कर जाता है। एक और 'नयापन' कथा-संसार के 'भविष्य' में प्रक्षेपित करने की दृष्टि से भी है। इस पर 'जादुई यथार्थवाद' का जादू सिर पर चढ़कर बोलता दिखायी देता है। कुल मिलाकर 'कलि-कथाः वाया बाइपास' की संरचना मिश्रित कथा-प्रविधियों की संरचना है।''[117] इस संपूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 'कलि-कथा: वाया बाइपास'की रचना-प्रक्रिया में लेखिका ने अनेक नवीन शिल्प-प्रविधियों का प्रयोग किया है जिससे यह उपन्यास शिल्पगत प्रयोग की दृष्टि से प्रयोगात्मक सिद्ध होता है।

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में मुख्य रूप से उन स्त्रियों के दुःख की गाथा है जो किसी-न-किसी रूप में अपने परिवार में ही शोषित व उत्पीड़ित है। सविता, सायरा, माया बोस ऐसी स्त्रियाँ हैं जो तरह-तरह की मानसिक व घरेलू हिंसा की शिकार रहती हैं और अपनी मुक्ति के लिए रूबी गुप्ता की 'परामर्श' संस्था से जुड़ी हुई हैं। इन औरतों के माध्यम से लेखिका स्त्री-जीवन की विडंबना को दर्शाती है। लेकिन यह उपन्यास अपने व्यापक सरोकारों में 'स्त्री-विमर्श' तक ही सीमट कर नहीं रह गया बल्कि इसका फलक बहुत बड़ा है। जिसमें बीसवीं सदी का इतिहास है, ब्रिटिश साम्राज्यवाद है, आजादी की लड़ाई है, देशकाल की परिस्थितियाँ और भूमंडलीकरण का प्रभाव है, पीढ़ियों का अंतर्विरोध है, सामाजिक व आर्थिक विषमता है। इतने व्यापक पैमाने वाले कथ्य के लिए केवल रूबी दी की कथा पर्याप्त नहीं थी इसलिए लेखिका ने उपन्यास की संरचना में अनेक नवीन शिल्प-प्रविधियों का प्रयोग करते हुए उपन्यास को उसकी बहुआयामिता में प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है।

शीर्षकीकरण शिल्प का प्रयोग करते हुए लेखिका ने 'शेष कादम्बरी' उपन्यास की कथावस्तु को चौबीस परिच्छेदों में बांटा है। इनका क्रम है- ओ गो आमार एई जीबनेर शेष परिपूर्णता, एस.टी.डी कलकत्ता से दिल्ली-1, थिएटर रोड़ ओग झुका हुआ मकान, एस.टी.डी. कलकत्ता से दिल्ली-2, रोज की तरह नहीं, एस.टी.डी. दिल्ली से कलकत्ता -1, पोस्टमार्टम, मिस्टर वियेना और आठवाँ अध्याय, एस. टी. डी. कलकत्ता से दिल्ली-3, चाय और मुक्ति, रंडी की मंडी, सर पर छत और एक घटिया डायलॉग, सोलह छेदों वाली चलनी, एस. टी. डी. दिल्ली से कलकत्ता - 2, एक अदृश्य आदमी, कोथाय आलो कोथाय और आलो, रहस्य कथा, देखा प्रीति तुमने, चरैवेति-चरैवेति, कोई दूसरा नहीं, एस.टी.डी कलकत्ता से दिल्ली, आशियाना, आत्महत्या के विरूद्ध, और अंत में प्रार्थना। इन परिच्छेदों का नामकरण लेखिका ने स्थान, काल, घटना, नाम और पात्रों के मनोभावों के आधार पर किया है। इन संपूर्ण परिच्छेदों में सात छोटे-छोटे अध्याय हैं जिनमें एस.टी.डी. वार्तालाप होती है इसी क्रम में उपन्यास की कथा-गति करती है। एस.टी.डी. पर संवादशिल्प का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इन परिच्छेदों में परंपरागत किस्सागोई का निर्वाह करते हुए रूबी दी की कथा के साथ ऐतिहासिक दस्तावेजों को मिलाकर कथानक का ढाँचा खड़ा किया है।

उपन्यास में मुख्य रूप से-रूबी गुप्ता, कादम्बरी और सविता-तीन मुख्य पात्र हैं। रूबी गुप्ता एक ऐसी औरत है जिसका बचपन और जवानी अनेक प्रकार की पीड़ाओं और मानसिक तनावों से गुजरा है। जो अपने जीवन के अंतिम चरण में 'गुड फ्रेंडस सोसायटी', 'वामा स्टडी ग्रुप' और अंत में स्वयं की 'परामर्श' नामक समाजसेवी संस्था बनाकर दुखियारी औरतों की मदद करती है और अपने होने की तलाश 'अपनी अस्मिता की खोज' करती हैं। कादम्बरी-रूबी दी की नातिन है जो दिल्ली में अपने पत्रकार मित्र के साथ रहती हैं। सविता-अपने घर में माँ-पिता, भाई व पति द्वारा प्रताड़ित रहती है उसके दुःखों से द्रवित होकर रूबी दी उसे अपने पास रख लेती है। नातिन कादम्बरी रूबी दी को अपनी कथा लिखने के लिए प्रोत्साहित करती है लेकिन साथ ही उनके मन में यह संदेह भी छोड़ देती हैं- ''एक आदमी के जीवन में ऐसा होता भी क्या है कि उस पर कोई कथा लिखी जा सके। हर आदमी के अपने छोटे-छोटे दुख हैं, किसी और को उससे क्या लेना देना? एक जीवन के 'सैम्पल' से किसी समय की, युग की कहानी तो कही नहीं जा सकती। ....अब तो आपके दुःख को किसी खास टाइप का होना चाहिए, तभी उसकी कीमत है। जैसे दलित-दुख, स्त्री-दुख, सर्वहारा-दुख या 'सबाल्टर्न' दुःख अब सच पूछों, तो तुम्हारे जीवन में क्या दुख रहा होगा।''[118] हाँलाकि इससे रूबी दी को कष्ट होता है लेकिन इसके बावजूद भी वह अपनी कथा लिखती हैं। यह उपन्यास के कथानक का प्रथम पक्ष है जिसमें लेखिका रूबी

दी, सविता, सायरा, माया बोस, फरहा खान आदि औरतों के द्वारा स्त्री-विमर्श को दर्शाती है। रूबी दी की कथा को उनकी नातिन कादम्बरी पढ़कर उस पर एक पत्र-नुमा आलोचनात्मक समीक्षा लिखकर अपनी राय देती है- ''रूबी दी को अपनी कथा को बचाने के लिए अपने अहंकार का ध्वस्त करना होगा और यह तभी होगा जब वे इसे पहचानेगी, अपना मजाक उड़ा सकेगी, इसका आयरनी के साथ वर्णन कर सकेगी। तब होगा एक विशेष सत्य का उदय-दीप्तिमान और व्यापक सत्य। अपनी सृष्टि का उद्धार करो नानी, इसे सत्य की ओर बढ़ाओ।''[119] कादम्बरी के इस दृष्टिकोण के बाद कादम्बरी रूबी दी की कथा की पात्र नहीं बल्कि 'पार्टनर' बन जाती है। यही पर उपन्यास का रूप-विधान एक रैखिक से हटकर सघन और संश्लिष्ट बन जाता है। कथा-सूत्र एक-दूसरे से उलझ जाते हैं। कादम्बरी पुराने अखबारों, गजेटियरों और आलेखों को खोजकर देवीदत्त मामा पर जो 'ओबयुचेरी' लिखती है वह कथा का अंग बन जाता है। जो उपन्यास को व्यापकता प्रदान करता है।

उपन्यास का परिच्छेद 'एक अदृश्य आदमी' देवीदत्त के जीवन पर आधारित है जिसके माध्यम से लेखिका बीसवीं सदी के इतिहास, ब्रिटिश साम्राज्यवाद, देश के स्वाधीनता आंदोलन की घटनाओं और बाद की स्थितियों को रेखांकित करती है। देवीदत्त मामा का विवरण रूबी दी के कथा के समानांतर इस तरह रखा जाता है। जैसे छोटी रेखा के पास कोई बड़ी रेखा खींच दी गई हो। यह प्रसंग रूबी दी की कथा पर भारी पड़ जाता है। यहीं पर उपन्यास स्त्री-विमर्श के दायरे से निकलकर देश व दुनिया के वृहत्तर सन्दर्भों से जुड़ जाता है- ''कहना न होगा कि देवीदत्त मामा की समय की धुंध में खोयी कथा 'शेष कादम्बरी' की मुख्य कथा नहीं है, बल्कि अवांतर कथा है, राष्ट्र के रूप में एक 'इमैजिंड कम्युनिटी' की कथा। पर परिपूर्णता की खोज में यही अवांतर कथा एक वृहत्तर संदर्भ प्राप्त कर लेती है। इसके आलोक में खुद रूबी दी की कथा के दूसरे रहस्य खुलने लगते हैं।''[120]

यह लेखिका की नवीन कथा-शिल्प प्रविधियों का ही कमाल है जो रूबी दी की मूलकथा को अनायास दूसरी तरफ मोड़ देती है। हाँलाकि देवीदत्त मामा व रूबी गुप्ता की दोनों कहानियाँ, उपन्यास की कथा का समान अंश है लेकिन दोनों में कोई घुलावट नहीं परंतु-उद्देश्यपरकता में बराबर व महत्वपूर्ण है।

इस उपन्यास में लेखिका ने नीड़ीकरण शिल्प का बखूबी प्रयोग किया है। रूबी दी की कथा के बरक्स सविता, सायरा, माया बोस, फरहा खान, आभा जैन, मनोरंजन व्यापारी, कल्याणी हालदार, मि. वियेना, आदिल की प्रेम कहानी, मेघो के देश की प्रीति की कथा आदि अनेक

अवांतर कथा-प्रसंग है। इन सभी की अपनी अलग-अलग कहानियाँ है लेकिन ये सभी आपस में जुड़कर उपन्यास के कथानक का निर्माण करती है। कुछ पात्र उपन्यास में ऐसे हैं जो कुछ पल के लिए आते हैं लेकिन अपनी सार्थकता सिद्ध कर देते हैं। रूबी दी की बुआ का प्रेमी मि. वियेना जो 1830 ई. की भारतीय इतिहास की स्थितियों को उजागर करता है और प्रेम की पीड़ा से मुक्ति हेतु जल-समाधि ले लेता है। मेघों के देश की प्रीति जो दंगाइयों से डरकर कुछ समय के लिए रूबी दी के पास आती है और आपसी सद्भाव व प्रेम का पाठ सिखाती है। मनोरंजन व्यापारी की कथा देश में पनपती आर्थिक विषमता गरीबी और बेगारी को दर्शाती है।

अनेक स्थलों पर इस उपन्यास की बुनावट में असंगति नजर आती है। हिंदू-मुस्लिम मतभेद व सांप्रदायिकता को दर्शाने के लिए लेखिका ने अति-यथार्थवादी, काल्पनिक शिल्प का प्रयोग किया है जो बेमेल व असंगत प्रतीत होता है। जब-जब हिंदु-मुस्लिम वैमनस्य की घटना घटित होती है रूबी दी के अंतःवस्त्र अचानक सुखना बंद हो जाते हैं।

''रूबी दी के साथ सत्रह साल की उम्र से घटित होने वाली विचित्र घटना यह थी कि हर बार ऐसे मौकों पर उनके अंतःवस्त्र-अंदर पहनने के कपड़े-सूखने बंद हो जाते थे। वे धोए जाते और मकान के पिछवाड़े में दिन-रात घंटो सूखने के बावजूद उतने के-उतने गीले पड़े रहते।''[121] सत्तर साल की उम्र में सविता जब सायरा के साथ इस तरह का जातिगत भेदभावकरती है तब भी रूबी दी के कपड़े सूखना बंद हो जाते हैं। ''लेखिका ने यथार्थवादी शिल्प में कई जगहों पर अति यथार्थवादी शिल्प का भी सहारा लिया है। पर कईं जगह बेमेल ही दिखता है.... इस प्रविधि के माध्यम से लेखिका सांप्रदायिकता के विरूद्ध अपने पक्ष को रेखांकित करना चाहती है। अगर सिर्फ यही मकसद है तो सटीक कारण तो नहीं क्योंकि किसी महिला के अंतःर्वस्त्र के न सूखने का बिंब यौन संबंधी अर्थ के लिए रहता है और इस बिंब का सांप्रदायिक-विरोध से सिर्फ याद्दच्छिक संबंध ही बनता है।''[122] असंगति का दूसरा रूप वहाँ देखने को मिलता है कि उपन्यास की कथा की शुरूआत सविता नाम की लड़की से होती है जो अपने घर-परिवार के करीबी लोगों द्वारा प्रताड़ित है। रूबी दी उसकी दयनीय हालत देखकर अपने पास रख लेती हैं और उपन्यास के अंत में उसे छोड़ देती है। रूबी दी द्वारा सविता को यथावत हालात में छोड़ना असंगत लगता है।

'शेष कादम्बरी' की कथा इतिहास और स्मृतियों के द्वंद्व की कथा है। कादम्बरी सच कहती है- ''आदमी अपने इतिहास से नहीं बच सकता। उसकी ईमानदारी इसी में है कि वह इतिहास की स्मृतियों में उतरे, उन्हें बचाकर अपने ही जीवन को बचाए रखे ... हाँ, वर्तमान के

प्रति उसकी ईमानदारी इसी में है कि वह अपनी भावनाओं से कन्नी न काटे किन्ही मानी हुई धारणाओं के चलते। वह जिए अपनी भावनाओं को पूरी तरह। बिना डरे।''[123]

उपन्यास के कथा-सूत्र आगे-पीछे टूटते-जुड़ते हैं इन बिखरे हुए कथासूत्रों को लेखिका फ्लैश बैक तकनीकी प्रयोग के माध्यम से एक जगह संजोती है। उपन्यास की पात्र रूबी गुप्ता अतीत और वर्तमान की स्थितियों से गुजरती है। ''शेष कादम्बरी शिल्पगत प्रयोग की दृष्टि से रोचक है। उपन्यासकार ने अपनी रचना को सरल रैखिक क्रम में पेश नहीं किया है बल्कि फ्लेश बैक तकनीकी का इस्तेमाल करते हुए अतीत और वर्तमान को कई स्थलों पर जोड़ा है।''[124] इसके साथ ही देवीदत्त मामा से संबंधित परिच्छेदों में लेखिमिक उभारशिल्प व पत्रात्मक, डायरी शैली का प्रयोग किया है।

इस उपन्यास के शिल्प व भाषा के संदर्भ में भारत भारद्वाज लिखते हैं- ''इस उपन्यास की शिल्प एवं भाषा की तारीफ करनी ही पड़ेगी। कथा-प्रविधि में भी नयापन है। रूबी गुप्ता की आत्मकथा और कादम्बरी की कथा एक-दूसरे के विलोम नहीं, बल्कि पूरक है। कथा को जिस शिल्प में और भाषा के अनेक स्तरों का स्पर्श करते हुए बढ़ाया गया है वह विलक्षण है।''[125]

''शेष कादम्बरी' की भाषा में शास्त्रीयता और अभिव्यंजना का अनूठा मेल है। कविता की कांति वाले गंध का आवर्ती उत्कर्ष सम्मोहित करने वाला है। इन अंशों को गद्य-गीत की तरह पढ़ा जा सकता है। कई उपन्यासों से न केवल विषय-वस्तु के स्तर पर गहरा साम्य दिखाई देता है वरन भाषा की प्रतिध्वनि भी सुनाई देती है।''[126] निष्कर्षतः 'शेष कादम्बरी' उपन्यास निराली आख्यान शैली, किस्सागोई पारंपरिक शिल्प और कथ्य व भाषा की सुघड़ता के कारण हमेशा नवीन बना रहेगा।

'कोई बात नहीं' उपन्यास में लेखिका आजादी के बाद के भारत के 'सच' को समेटने का प्रयास किया है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम समय की लगभग सभी समस्याओं और सामाजिक विषमता को इसमें उल्लेखित किया है। 'कोई बात नहीं' एक सूत्र वाक्य है जो आजाद भारत में व्यक्ति को अपनी अस्मिता की तलाश और समाज में जगह पाने की प्रबल इच्छा को जन्म देता है। मुख्य रूप से इस उपन्यास में शारीरिक व मानसिक रूपसे कमजोर बच्चे शंशाक-और उसकी माँ के संघर्षों की कहानी है जो अपने बच्चे को 'नॉर्मल' दुनिया का अंग बनाने के लिए अथक परिश्रम करती है। पर व्यापक रूप से इस कथा का मर्म 'एक सुंदर सम्मानपूर्वक जीवन की आकांक्षा और इस हक की माँग है।' इस उपन्यास में स्वाधीन राष्ट्र की समस्या और मानवीय वेदना के साथ जिजीविषा व आत्मविश्वास की अनुगूँज सुनाई पड़ती है।

उपन्यास का प्रारंभ 'अकथ कहानीः पुर्वाचन' के निम्न उद्धरण से शुरू होता है- ''यह कथा एक तरह से कही जा रही थी कि तभी वह भीषण विस्फोट हुआ, जिसने इस कथा के परखच्चे उड़ा दिए। अब इस कथा- जो झुटपुटे अँधेरे के ताने में उम्मीद और रोशनी का बाना लगाकर बुनी जा रही थी-हजारों-हजार टुकड़े हो गए और वे सारे टुकड़े इस कदर छितर-बितर गए कि उन्हें पहचानना तक मुश्किल हो गया। उन टुकड़ों को फिर से जोड़कर वह कथा वापस नहीं बनाई जा सकती थी। इसलिए उस कथा को यदि अनादि काल से अब तक लिखी गई हजारों-लाखों कथाओं के बावजूद कहना जरूरी हो, तो उसे फिर से एकदम नए सिरे से ही कहा जा सकता था।''[127] लेखिका प्रारंभ से ही बड़ा 'विजन' साथ लेकर चलती है, इसीलिए अपनी बात वह नए तरीके से शुरू करती है। उपन्यास में मूलकथा शंशाक की है लेकिन मूल कथा में विस्फोट होता है। विस्फोट के फलस्वरूप मूल कथा के जितने टुकड़े बिखरे वहीं से एक नयी कथा शुरू होती है-जो आज के आजाद भारत की तमाम विसंगतियों को रचना के स्तर पर भिन्न-भिन्न रूपों में उद्घाटित करती है।

'कोई बात नहीं' उपन्यास का कथानक संरचना की दृष्टि से दो भागों में बंटा हुआ है, पहला-पूर्वकथा और दूसरा-उत्तरकथा। 'पूर्वकथा' का संपूर्ण भाग शशांक, जतीन दा और दादी पर आधारित हैं इसमें लेखिका व्यक्ति मन की उलझनों द्वारा 'सामाजिक सत्य' को पकड़ने व उद्घाटित करने की कोशिश करती है। शंशाक उपन्यास का मुख्य पात्र है।

शंशाक सत्तरह साल का ऐसा लड़का है जो जिंदगी की नाइंसाफी का शिकार है, वह शारीरिक व मानसिक रूप से अक्षम है इसलिए अन्य लोगों की तरह न तो चल सकता हैऔर न बोल सकता है। पूरे उपन्यास का ढाँचा शंशाक के कष्टों व उसकी जीवन-दशा सुधारने वाली माँ के संघर्षों के इर्द-गिर्द घूमता है। शंशाक से संपर्क रखने वाले व्यक्ति की अपनी एक नयी कहानी है। इन कहानियों को लेखिका पूर्वकथा के-'अथातो 'मन', जिज्ञासा', 'सरहदें, 'बाड़ें और चौहद्दियाँ यानी बाउंड्रीज', 'इस पार उस पार', 'वह क्या है जो इस जूते में गड़ता है', 'जे जे उर्फ जैकसन उर्फ जयकिशन', 'कहानी कहानी और अंतिम सपना' 'जीवन चांडाल यानी ढूंढूँ तुझे गली-गली', 'वाय डजन्ट ही लिव मी अलोन', 'तुझसे नाराज नहीं जिंदगी, हैरान हूँ'...... परिच्छेदों में चरित्रों और घटनाओं के प्रसंगानुसार व्यक्त करती है। इन सभी कहानियों के बीच शंशाक का 'मन' उलझ जाता है, इन्हीं कहानियों और घटनाओं के मार्फत लेखिका आज के समय के सच को बयान करती है।

'अथातो 'मन' जिज्ञासा' परिच्छेद में लेखिका मानवीय मन की पड़ताल करती है। शंशाक अपनी जिंदगी की नाइंसाफी के कारण अपने को अकेला और सीमित महसूस करता है और उसकी यह धारणा बन जाती है कि आदमी अपने मन में अकेला ही रहता है। लेकिन विक्टोरिया मेमोरियल में तालाब के किनारें एक अजनबी व्यक्ति द्वारा कागज की चिंदी पर लिखे वाक्य 'आदमी का मन एक गाँव है, जिसमें वहीं एक अकेला नहीं रहता' को पढ़कर उसकी धारणा बदल जाती है और ''तब शंशाक ने अपने मन में डुबकी लगाई, तो पाया कि उसके मन में दादी के विश्वास और माँ की अपनी मान्यताएँ तो थीं ही- और, उसके मन में आर्थर भी सारी जगह लेकर मौजूद था। उसे लगा कि इस गाँव से सबको निकाल दें, तो यह गाँव ही कहाँ बचेगा।..... मन में रहने वाले दूसरे लोगों से सिर्फ प्रेम ओर सहानुभूति के रिश्ते काफी नहीं, चीटियों की तरह एक-दूसरे पर विश्वास और सहयोग के रिश्ते बनाना बहुत जरूरी है।''[128] अर्थात् व्यक्ति का मन एक गाँव के समान होता है इसमें रहने वाले प्रियजनों के साथ सहयोगपूर्ण भावना का होना अपेक्षित है। 'सरहदें, 'बाड़ें और चौहद्दियाँ यानी बांउड्रीज' में वर्तमान समय की स्कूल-संस्कृति का वर्णन है।

कलकत्ता के प्रसिद्ध सेंट जोसेफ स्कूल में शंशाक जाति व रंगभेद का शिकार रहता है। जबकि उसका एंग्लों-इंडियन गरीब मित्र आर्थर समाज में सामाजिक विषमता का शिकार रहता है। दोनों की स्थिति समान है। इसीलिए आर्थर शंशाक की अपाहिज स्थिति पर दया नहीं दिखाकर समान व्यवहार करता है- ''देखो, तुम अपनी प्रॉब्लम के कारण बाकी लड़कों से अलग हो ठीक उसी तरह अर्थार 'भी' एक साँवला एंग्लो-इंडियन होने के कारण और उस पर भी एक गरीब एंग्लो-इंडियन' होने के कारण, एक तरह से सबसे अकेला है। इसी बात पर तुम दोनों की दोस्ती टिकी है।''[129] आर्थर आज के समय की विसंगतियों का शिकार है।

'इस पार उस पार' और 'कहानी-कहानी और अंतिम सपना' परिच्छेद में लेखिका दादी व माँ की स्थिति द्वारा नारी-जीवन की तीन पीढ़ियों की 'आयरनी' को दर्शाती है। दादी का जीवन बचपन से लेकर बुढ़ापा तक परंपरा व मर्यादा के चलते अपार कष्टों में व्यतीत हुआ। अतः वह नारी-जीवन की पीड़ा को बखूबी समझती है। इसकी पुनरावृति वह अपनी बहु में नहीं देखना चाहती इसीलिए उसे आगे बढ़ने की पूरी आजादी देती है। 'जे जे उर्फ जैकसन उर्फ जयकिशन' और 'ढूँढ़ूँ तुझे गली-गली' परिच्छेद इस उपन्यास का सबसे मजबूत पक्ष है जो इस उपन्यास को स्वाधीन राष्ट्र की समस्याओं के बरक्स खड़ा करता है। परिच्छेद में जैकसन व जीवन चांडाल की कथा-प्रसंगों द्वारा देश की सामाजिक विषमता, जाति व वर्णभेद, निम्न व दलित जातियों के साथ

हो रहे अन्याय, भ्रष्टाचार और एंग्लों-इंडियन के कष्टो-जैसी राष्ट्रव्यापी समस्याओं को संदर्भित करती है। जतीन दा का दोस्त जैकसन अंग्रेजी दंपति की संतान था जिसे अकेला छोड़कर उसकी माँ 'रोजी किड' इंग्लैंड चली जाती हैं। लेकिन जेजे को भारतीय समाज में जातिभेद के दंश को सहना पड़ता है अतः इसे बचने के लिए वह अपना नाम बदलकर जयकिशन रख लेता है। ''एक वर्णसंकर जाति बहुत तरह की बहुत सारी यातनाएँ झेलने को मजबूर होती है और खासकर भारत की जाति-प्रथा के प्रभाव में आकर यहाँ की एंग्लो-इंडियन जाति को अंग्रेजों ने भी बहुत नीची दृष्टि से देखा।''[130] जीवन चांडाल आजाद भारत की विकृति का प्रतीक है। जो भारतीय-समाज की संस्कृति के काले पक्ष को उजागर करता है। जीवन चांडाल नमोशुद्र; दलित व अस्पृश्यद्ध परंपरा की पाँच पीढ़ियों की पीड़ा को झेलता है और नौ वर्षीय बच्ची के साथ हुए बालात्कार से द्रवित होकर उसे न्याय दिलाने हेतु हथियार उठा लेता है। ''मैंने तुम्हें ये इसलिए सुनाया कि तुम समझ सको कि जीवन चांडाल सही था या गलत, एक ऐसी दुनिया ने उसे पैदा किया था, जिसका सरकार, पुलिस, कोर्ट किसी पर भी रत्ती-भर विश्वास नहीं रह गया था। वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी की गरीबी और भूख से पैदा हुआ था। उसे पता था कि उसके जैसे लोगों के लिए कहीं कभी कुछ बदलने वाला नहीं है। इसलिए जब उसने हथियार की ताकत को जाना, तो वह उसके सहारे उस नौ साल की लड़की को न्याय दिलाना चाहता था। ऐसा न्याय, जिसे पाने का उसके पास कोई और रास्ता नहीं था ।''[131]

इसी तरह की कहानी-मनोरंजन दत्त की है जो भुखमरी व गरीबी से परेशान होकर हिंसात्मक रास्ता अपनाता है । इन दोनों घटनाओं के द्वारा लेखिका सामाजिक विषमता के फलस्वरूप समाज में उभरते सामाजिक अपराध, अन्याय, अत्याचार लोगों में पनपते असंतोष को उजागर करती है।

उपन्यास की 'उत्तरकथा' शंशाक की माँ के कष्टों व संघर्षों पर आधारित है। दिमागी वायरस की वजह से शशांक 'संज्ञाहीन' हो जाता है। अपने बेटे को इस संज्ञाहीन स्थिति से बाहर निकालकर नार्मल दुनिया का अभिन्न अंग बनाने के लिए उसकी माँ पुरजोर कोशिश करती है। माँ के संघर्षों के बदौलत ही शंशाक अपने जीवन की पुनः नई शुरूआत करता है। 'व्हिल चेयर' व 'टाइपराइटर' की मदद से बारहवीं' की परीक्षा पास कर कॉलेज पहुँच जाता है। वह अब समस्याओं से कतराता नहीं बल्कि खुलकर सामना करता है, पहले का मंदबुद्धि शशांक आम लोगों से ज्यादा समझदार बन जाता है। लोगों की गलतियों को वह 'कोई बात नहीं' कहकर नजरअंदाज करने लगता है। यहीं पर उपन्यास के नामकरण की सार्थकता सिद्ध होती है।

'कोई बात नहीं' जीवन के प्रति नयी आस्था, हार न मानने की जिद, जिजीविषा व अस्मिता-बोध को प्राप्त करने का मूलमंत्र है। जो व्यक्ति को समस्याओं से सामना करना सिखाता है। प्रियदर्शन लिखते हैं- ''अलका सरावगी के इस उपन्यास के कई गहरे अर्थ उद्घाटित होते हैं। दुःख और विडंबना की एक अंत-सलिला इस समूचे उपन्यास की तह में महसूस की जा सकती है। लेकिन इस तह के ऊपर यह शंशाक के निजी अनुभवों के जरिए वे सामाजिक, आधुनिक और जातीय पूर्वग्रह भी खोलती चलती है जो हमारी दुनिया के कई रूपों में विद्यमान है और एक बेहतर दुनिया बनाने की कशमकश तीखा करती हैं।''[132]

उपन्यास का प्रत्येक पात्र किसी न किसी रूप में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विषमता की समस्या का सामना करता है और अपने तरीके से सुलझाने का प्रयास करता है। शंशाक' अपनी स्थिति के कारण जीवन से हार बैठता है जिसे जतीन दा विभिन्न कहानियों-घटना प्रसंगों द्वारा संबल प्रदान कर यह एहसास कराता है कि जीवन में उसकी भाँति अन्य लोग भी किसी-न-किसी रूप में दुःखी हैं। माँ नयी पीढ़ी की महिला है जो शंशाक के जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए 'मैकेनिज्म' तरीका इस्तेमाल करती है। खुद वकील बनकर शंशाक को जीवन के लिए प्रेरित करती है। शंशाक के जीवन में जितनी बड़ी भूमिका माँ की है उतनी पापा की नहीं। आरती मौसी ऐसी पात्र है जो दूसरों की कहानियाँ सुनकर 'कथा' लिखती है। कहना न होगा कि आरती मौसी उपन्यास में लेखिका का प्रतिरूप बनकर उपस्थित हैं। जो शशांक से हर बात जानकर एक 'कथा' लिखने का प्रयास करती हैं लेकिन उसे पूरी नहीं कर पाती इसका उल्लेख लेखिका उपन्यास के अंतिम परिच्छेद 'असमाप्तकथा' में करती है ''बाकी क्या रह गया है? यही जो आदमी की कमजोरियों की कथा है। उसके सचमूच आदमी न हो पाने का कष्ट है। उसे कहकर भी क्या होगा? पर मौसी नहीं मानेगी। शायद उसे लगता है कि बाकी कथा कहकर वह आदमी को एक पूर्ण इंसान बना देगी या फिर अपनी कथा को पूर्ण कथा।''[133] अर्थात् जीवन कभी पूर्ण नहीं होता। कथा आदमियों की कमजोरियों की होती है और हर आदमी में कुछ-न-कुछ कमजोरियाँ हमेशा बनी रहती है इसी रचना के स्तर पर लेखिका आदमी की इन कमजोरियों को कुछ हद तक दूर करने का प्रयास करती है। ''कोई भी लिखने वाला इससे अधिक क्या चाह सकता है कि कोई कथा पाठक के अंदर से गुजरकर उसे एक नया इंसान बना दे।' इसी की परिणीति 'कोई बात नहीं' है जिसमें लेखिका जीवन की सच्चाईयों को रचना-स्तर पर देखती हैं। 'कोई बात नहीं' उपन्यास 'अकथ कहानीः पुर्वाचन' से शुरू होकर 'असमाप्त कथा' पर समाप्त होता है। इसकी संपूर्ण आंतरिक व बाहरी रचना प्रक्रिया में ''किस्सा-कहानी, जीवन-प्रसंग विवरण, बयान-बहस की ऐसी अनेक लड़िया आख्यान प्रसंग में उभरकर आयी जिनका एक-

दूसरे से कोई प्रत्यक्ष संबंध या सरोकार नहीं रहा। वे भाषाबद्ध कहानी जीवन के बिंबों में परिणत होकर रचना के भीतर संबंधों को दृढ़ करने और आख्यानकार के संदेश को संप्रेषित करने के सार्थक घटक सिद्ध हुए।''[134] उपन्यास में वर्णित सभी घटनाएँ अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखने के बावजूद भी कथानक के कसाव को जोड़े रखती हैं।

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास के केंद्र में 'कार्पोरेट जगत' हैं। कार्पोरेट जगत में घट रहीं घटनाओं को मुख्य आधार बनाकर इस उपन्यास के कथानक का ताना-बाना बुना गया है। ''हिंदी में संभवतः पहली बार एक ऐसी रचना सामने आई है जिसमें उदारीकरण का लाभ उठाने वाले और उसे अंजाम देने वाले व्यक्तियों को चित्रित किया है... यह कार्पोरेट इंडिया का उपन्यास है।''[135] कथ्य की दृष्टि से उपन्यास में 'कार्पोरेट इंडिया' की व्यथा-कथा को दर्शाया है। विदेशी मल्टीनेशनल कंपनियों का जाल देश में फैलता जा रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन मल्टीनेशनल कंपनियों का हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। ये कंपनियाँ तरह-तरह के 'हवाई सपने' दिखाकर देश के लोगों की मानसिकता और आत्मनिर्भरता को गुलाम बनाकर अपना लाभ कमा रही हैं। आज ये मल्टीनेशनल कंपनियाँ इतनी शक्तिशाली हो गई हैं कि ये देश और देशवासियों की दिशा और जीवन-शैली तय करने लगी हैं अर्थात् 'मार्केट के कंट्रोल' में 'नेशन' हो गया है। लेकिन दूसरी ही तरफ इनके परिणामस्वरूप देश में आर्थिक विषमता फैलती जा रही है जहाँ देश की एक तिहाई जनता 'सड़क छाप' जैसा दयनीय जीवन व्यतीत करने को मजबूर है। कार्पोरेट जगत के बदलते इस अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र, कार्पोरेट जगत की वैचारिकता और धूर्तता को जिस भाव-भंगिमा और कथात्मक ढाँचे में ढ़ालकर प्रस्तुत किया है वह उपन्यास के शिल्पगत वैविध्य को दर्शाता है।

शिल्प-विधान की दृष्टि से 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास के कथानक को मुख्यतः तीन चरित्रों के माध्यम से देखा जाना चाहिए। के. वी. शंकर अय्यर, उपमन्यु भट्ट और गुरू-गुरूचरण, में तीनों पात्र कार्पोरेट जगत के बड़े मार्क्रेटिंग एक्जीक्यूटिव है जो अपने मास्टरमाइंड दिमाग की बदौलत किसी भी फर्म को बड़ा लाभ पहुँचा देते हैं। ये तीनों पात्र अपनी प्रवृतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, इन पात्रों के माध्यम से लेखिका कार्पोरेट जगत की यथार्थ स्थितियों और वैचारिकता को उद्घाटित करती है। भूमंडलीकरण और उदारीकरण के इस दौर में बाजार-विज्ञापन और उपयोगितावादी वस्तु के रूप में हुई व्यक्ति की स्थितियों को रेखांकित करती है।

कथानक निर्माण की दृष्टि से उपन्यास की कथा के दो स्तर हैं। प्रथम स्तर में परिच्छेद 'षष्टिपूर्ति, तृप्ति और के. वी.' 'ब्राफ्रण और श्वान', 'दुनिया है मुट्ठी में', 'मुझको यारो माफ करना मैं

नशे में हूँ', 'कार्पोरेट बनाम पोंगा पंथी भारत', के अंतर्गत के. वी.शंकरअय्यर और गुरू की कार्पोरेट कंपनियों को लेकर हुई वार्ता का वर्णन है जिसमें लेखिका कार्पोरेट जगत के समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र को दर्शाती है दूसरे स्तर में परिच्छेद 'रैट-रैस से बाहर', 'पानी-पानी-कितना पानी', 'भट्ट कथा', टीयर्स से दूध तक', 'भट्ट कथा: पहाड़ नदी और प्रेम डगरिया', और 'गुरूचरण-अजबदास' के अंतर्गत उपमन्यु भट्ट और गुरू की वार्ता का प्रसंग है जिसके माध्यम से लेखिक भूमंडलीकरण के दुष्परिणाम, कार्पोरेट वर्ल्ड के खतरे और प्रेम व मानवता के आधुनिक रूप को स्पष्ट करती है। 'गुरू' उपन्यास का सबसे सशक्त पात्र है जो एक ब्रेक के बाद के. वी. व भट्ट की कथा में अलग-अलग रूपों में उपस्थित रहता है इसी से उपन्यास में 'ब्रेक' आता है और इसी पात्र द्वारा लेखिका उपन्यास की मूल-संवेदना को उजागर करती है।

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास के सभी पात्र एक नयी जीवन-दृष्टि व तथ्य को प्रस्तुत करते हैं। के. वी. शंकर अय्यर शहर का सबसे बड़ा 'मार्केटिंग कंसल्टेंट' है। कार्पोरेट वर्ल्ड के संदर्भ में उसकी दृष्टि बड़ी व्यापक है अपनी प्रतिभा की बदौलत वह किसी भी कमजोर फर्म को ऊँचा उठा देता है। अतः कोई भी बड़ी कंपनी उसे रखने को हमेशा तैयार रहीं है लेकिन के. वी. कुछ स्वाभिमानी व्यक्ति है जो अपने ऊपर किसी की बॉसगीरी पसंद नहीं करता इसी कारण उसे कुछ समय बाद नौकरी बदलनी पड़ती है। 'इंडियन स्काई शॉप' में मिडल क्लास लोगों की आवश्यकता वाले सामान की बिक्री कर 'शॉप' को रातों-रात करोड़ों का फायदा पहुँचा देता है, लेकिन जल्दी ही 'इंडियन स्काई शॉप' को छोड़कर पुराने सहयोगी चोरड़िया की कंपनी से जुड़ता है जो हमेशा के. वी. को बराबर का सम्मान देता है। कुछ समय बाद चोरड़िया की कंपनी को भी छोड़कर अपनी खुद की 'कॉर्बन क्रेडिट' बेचने वाली कंपनी के. वी एस. आई 'कार्बो वेज सिस्टम्स इंक' खोल लेता है। और विदेशी मल्टीनेशनल कंपनियों को 'कॉर्बन क्रेडिट' बेचकर बिना परिश्रम करोड़ों रूपये कमाता है। के. वी कार्पोरेट जगत के सभी पहलुओं को पहचानता है उसका तर्क है कि दुनिया को समझने का तरीका जिसके पास है, समझो दुनिया की चाभी उसी के पास है। के. वी. उपन्यास का ऐसा पात्र है जो कार्पोरेट जगत व उदारीकरण के दुष्परिणामों को जानते-समझते हुए भी उन्हीं का पक्षधर रहता है। ''वे कोई अर्थ पिशाच नहीं बने हैं। सिर्फ जमाने से तालमेल मिलाकर चल रहे हैं। हर जगह खोखले, बासी, गंध मारते आदर्शों की दुहाई देना एक तरह की अलका सरावगी के उपन्यासों का कथ्य एवं शिल्प-विधान/195 हरामजदगी है, पाखंड है। हमारा इंडिया विकास के पथ पर बढ़ रहा है। उसके रास्ते में जो भी पत्थर आएँगे, उन्हें हटाना हमारा कर्तव्य है। किसी बड़ी लीग में शामिल होना, बड़ी-बड़ी कॉरपोरेट कंपनियों के लिए काम करना भला गुनाह कैसे हो गया? अगर वह कंपनी एक 'स्पेशल इकोनॉमिक जोन' यानी कि 'सेज'

बनाने के लिए दो-चार सौ किसानों को उजाड़र ही हैं, तो क्या के. वी. गुनहगार हैं? सरकार, कंपनी और किसान सब अपना-अपना फायदा देख रहे हैं। के. वी. को किसी से क्या मतलब और किसी को के. वी. से क्या।''[135] यही आज के समय की यथार्थ स्थिति है जिसमें व्यक्ति सिर्फ और सिर्फ अपना फायदा सोचता है। इसी के.वी. पात्र के माध्यम से लेखिका कॉर्पोरेट कंपनियों के सच्चे चरित्र को उजागर करती है।

के.वी. यह भी दर्शाता है कि यह समय इंडिया की 'इकोनामिक बुम' का है, इंडिया में मार्केट फैलता जा रहा है इसी कारण दुनिया की अनेक मल्टीनेशनल कंपनियाँ यहाँ खुलती जा रही हैं। ये मल्टीनेशनल कंपनियाँ तरह-तरह के हवाई सपने दिखाकर लोगों को लूट रही हैं। 'कार्पोरेट सोशल रिसपांसिबिलिटी' की समाज सेवा के नाम पर देश को धोखा दे रही हैं और अपना बड़ा मुनाफा कमा रही हैं। ''तुम लिखो कि तुम्हारी कंपनी सिर्फ मार्केट के बारे में नहीं सोचती। उसका 'विजन' उसके 'वैल्यूज' और उसकी 'वाइटैलिटी' इसमें है कि विकास को 'सस्टेनेबल' और 'इनक्लूसिव' बनाए तुम लिखो कि तुम्हरी कंपनी इस जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए देश के पानी और हवा को बचाने के लिए 'वॉटर पॉजिटिव' और 'कॉर्बन पॉजिटिव' हो गई हैं। बस 'सॉलिड वेस्ट' को खत्म करने में कुछ ही कदम चलना बाकी है।''[136] जबकि सच्चाई इसके विपरीत है के. वी. स्पष्ट करता है कि ये बड़ी कंपनियाँ हर स्थिति में अपना फायदा देखती हैं देश और समाज नाम की चीज से इन्हें कोई सरोकार नहीं है। इसी के. वी. के माध्यम से लेखिका 'नये विकास के मॉडल' और ग्लोबल सपने का विमर्श रचती है। इस रूप में के.वी. एक व्यक्ति नहीं रहकर कार्पोरेट जगत की विचारधारा का प्रतिरूप बन जाता है। इसी के द्वारा लेखिका कार्पोरेट जगत की सच्चाइयों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का देश पर कब्जा और उनकी धोखाधड़ी, देश में पनपती आर्थिक विषमता आदि को उल्लेखित करती हैं।

उपन्यास का दूसरा पात्र उपमन्यु भट्ट भी कार्पोरेट जगत के समाजशास्त्र को बंया करता है। भट्ट भी के. वी. की भांति मास्टरमाइंड दिमागवाला प्रतिभाशाली व्यक्ति है जो किसी की गुलामी नहीं करता 'एम्बर डिपार्टमेंटल स्टोर', 'माँ यशोदा डेयरीज' और 'देवराय जिपर' जैसी फर्मों को उसने अपने मास्टरमाइंड दिमाग की बदौलत करोड़ों का फायदा पहुँचाया लेकिन इन्हीं कंपनियों के द्वारा वह किसी-न-किसी रूप में छला गया और साजिश का शिकार होकर नौकरी को छोड़ता गया। इन कार्पोरेट जगत के षडयंत्रों को लेखिका 'भट्टकथाः टीयर्स से दूध तक' और 'भट्ट कथाः दाहिने हाथ में घड़ी' परिच्छेद में उजागर करती है। नौकरी छुटने के बाद भट्ट हमेशा गुरू के साथ पूरे भारत में घूमते रहता है।

के.वी. के मित्र रंगनाथन का चरित्र, व्यवहार भी कुछ इसी प्रकार का है। गुरूचरण उपन्यास का सबसे मजबूत पात्र है। उसके व्यक्तित्व व चरित्र के अनेक आयाम है। वह जादुई तरीके से उपन्यास कथानक में स्थित रहता है। के. वी. व भट्ट केसामने वह बदलते रूप में आता है। उपन्यास का प्रत्येक पात्र उसके बारे में सबकुछ जान लेना चाहता है लेकिन गुरू अपने बारे में कुछ नहीं बताता, यह रहस्य उपन्यास में अंत तक बना रहता है। गुरू कार्पोरेट जगत का बड़ा मार्केटिंग एक्जीक्यूटिव रहता है और कार्पोरेट तथा मल्टीनेशनल कंपनियों के अर्थशास्त्र पर के.वी. से हमेशा विमर्श करता है और अंतमें कारपोरेट जगत की विसंगतियों तथा देश की आर्थिक विषमता से व्यथित होकर नौकरी छोड़ देता है तथा आदिवासियों के सामाजिक हितार्थ लड़ाई लड़ता है। गुरू जीवन को एक 'कॉज' मानता है- "सुविधा के लिए पैसा जरूरी होता है- जैसे की समझ लो कि इस पहाड़की यात्रा करना। इस अर्थ में पैसा सुविधा भी है, आनंद भी है, पर जीवन का असली मकसद तो इसके लिए छोड़ा नहीं जा सकता। अब बस वही ढूँढ़ना बाकी रहा कि जिंदगी का असली मकसद क्या है।"[137] गुरू हमेशा स्वतंत्रता का हिमायती रहता है। के.वी.से लेकर भट्ट तथा शीरी व निर्मला जैसे अनेक लोगों से उसका संबंध रहता है लेकिन उनके बंधन को गुरू स्वीकार नहीं करता। जब मन किया तभी उठकर वह भारत-भ्रमण पर निकल पड़ता है और जंगल-पहाड़ नदियों की यात्रा करता रहता है। जैसे इसी में उनके जीवन की सफलता निहित है।

गुरू प्रेम के आधुनिक रूप को भी संदर्भित करता है। प्रेम के संदर्भ में उनकी दृष्टि बड़ी व्यापक और गहन है। प्रेम के जिस रूप की गुरू महत्वाकांक्षा रखता है वह किसी बंधन को नहीं बल्कि समर्पण को मानता है। ''मैं देखना चाहता हूँ कि क्या कोई औरत मेरे लिए मीरा बन सकती है? कोई राधा की तरह प्रेम कर सकती है? लोग शर्तों पर प्रेम करते हैं। तुम चाहो तो मैं चाहूँ। लोग माप कर प्रेम करते हैं। इतना/उतना/लोग कुनकुना प्रेम करते हैं। जिसे अपना कुछ बचाना हो, वह प्रेम का अर्थ नहीं जान सकता। लेकिन यह अर्थ किसी को जानना ही नहीं होता। लोग प्रेम के आभास को प्रेम समझ लेते हैं। इसलिए वह टिकता नहीं। प्रायः लोग तो जीवन में एक पल के लिए भी किसी से ऐसा प्रेम नहीं कर पाते, जो असल में प्रेम है।''[138] प्रेम के सच्चे रूप को प्राप्त करने के लिए गुरू, शीरी, निर्मला और रूक्मिणी जैसी औरतों के संपर्क में आता है जो गुरू से निःस्वार्थ सच्चा प्रेम करती हैं।

उपन्यास में प्रेम का सच व आधुनिक रूप तब सामने आता है जब नेपाल यात्रा के दौरान रूक्मिणी का पति भट्ट को गुरू व रूक्मिणी के प्रेम संबंधों के बारे में बताता है- ''गुरू से प्रेम

करने से पहले रूक्मिणी प्रेम का अर्थ ही नहीं जानती थी। वह एकदम अधूरी थी। मैं अपने कॉलेज के दिनों में एक लड़की से बेतहाशा प्रेम करता था, पर हमारी शादी नहीं हो सकी थी। इस बात के लिए रूक्मिणी ने तब तक माफ नहीं किया जब तक वह खुद गुरू से प्रेम नहीं करने लगी थी। गुरू के हमारे जीवन में आने से ही मैं और रूक्मिणी सच्चे दोस्त बन पाएं।''[139] रूक्मिणी के पति की यह दृष्टि नारी-विमर्श को दूसरा आयाम देती है। और प्रेम का आधुनिक रूप प्रस्तुत करती है।

गुरू उपन्यास का ऐसा चरित्र है जिससे सभी लोग प्रभावित रहते हैं। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में गुरू के भ्रमण के दौरान मौत हो जाती है और उसे ढँढ़ने के लिए भट्ट अपना कारोबार छोड़कर निकल पड़ता है। यहीं पर उपन्यास में 'ब्रेक' आता है। कार्पोरेट जगत की छद्म दुनिया के.वी. तथा भट्ट को बनावटी लगती है और भट्ट इस बनावटी दुनिया से मुक्त होकर प्रकृति सानिध्य व वास्तविक जीवन की तरफ लौट आता है।

परिवेश की दृष्टि से उपन्यास में वैविध्य है। पात्रों की स्थितियों व घटनाओं के प्रसंगानुसार परिवेश का चित्रण किया गया है। के.वी. की कथा के प्रसंग में कार्पोरेट वर्ल्डव बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभाव स्वरूप देश में पनपती उपभोक्तावादी-संस्कृति का वर्णन किया गया है वहीं भट्ट व गुरू की कथा के संदर्भ में प्राकृतिक वातावरण व परिच्छेद 'गुरूचरण अजबदास' में संथाल इलाका, पुरी जगन्नाथ, हेमुकुंड, बेलाघाट, गोविंदघाट, ऋषिकेश, देवप्रयाग आदि के भौगोलिक-परिवेश का चित्रण किया है।

अध्याय सारांश

स्पष्ट है कि अलका सरावगी अपनी कहानियों की रचना-प्रक्रिया में प्रतीकों का सफल प्रयोग कर जीवन के आंतरिक सत्यों व अछूते यथार्थ को उजागर करती है। अलका सरावगी ने अपने उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया में परंपरित कथा-शिल्प को तोड़ते हुए अनेक प्रकार की नवीन शिल्प प्रविधियों का प्रयोग किया है, जिससे उनके उपन्यासों में शिल्पगत वैशिष्ट्य देखने को मिलता है।

संदर्भ:

1. पाण्डेय, बलराज. (2001). कहानी आंदोलन की भूमिका. अनामिका प्रकाशन. पृ.92
2. सरावगी, अलका. (2019). कहानी की तलाश में, हर शै बदलती है. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.17

3. सरावगी, अलका. (2019). कहानी की तलाश में, हर शै बदलती है. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.18
4. सरावगी, अलका. (2019). कहानी की तलाश में, बीज. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.27
5. सरावगी, अलका. (2019). कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.11
6. सरावगी, अलका. (2003). दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.26
7. मिश्र, रामदरश. (2014). हिंदी कहानी: अंतरंग पहचान. वाणी प्रकाशन, पृ.71
8. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. कनफेशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.पृ.176
9. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. बहुत दूर है आसमान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.42
10. लाल, लक्ष्मीनारायण. आधुनिक हिंदी कहानी. वाणी प्रकाशन. पृ.71
11. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. आपकी हंसी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.132
12. अवस्थी, देवीशंकर. (संपा.) साहित्य विधाओं की प्रकृति, उद्धृत, नामवर सिंह, कहानी और फैटेंसी. पृ.145
13. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. आक एगारसी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.60
14. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. आक एगारसी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.62
15. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.72
16. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. 'इन' लोगों ने धावा बोल दिया है. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.83
17. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. 'इन' लोगों ने धावा बोल दिया है. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.83
18. अवस्थी, देवीशंकर. संपा. नयी कहानी: संदर्भ और प्रकृति, उद्धृत, हृषिकेश, आज की हिंदी कहानी: नयी प्रवृतियाँ. पृ.76
19. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. ये रहगुजर न होती. पृ.11
20. 20.सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. लाल मिट्टी की सड़क. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.125

21. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. एक पेड़ की मौत. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.42-43
22. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. बहुत दूर है आसमान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.45-46
23. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. लाल मिट्टी की सड़क. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.125
24. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. लाल मिट्टी की सड़क. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.122
25. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. टिफिन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.37
26. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. खिजाब. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.78
27. सिंह, पुष्पपाल. हिंदी गद्य-इधर की उपलब्धियाँ. पृ.156
28. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. न्यू ईयर्स ईव. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.148
29. चौधरी, सुरेंद्र. हिंदी कहानी: प्रक्रिया और पाठ. पृ.61
30. सुरेंद्र, श्री। नई कहानी- दशा दिशा संभावना. पृ.281
31. अवस्थी, देवीशंकर. संपा. नयी कहानी: संदर्भ और प्रकृति, उद्‌धृत, मोहन राकेश, कहानी: नये संदर्भों की खोज. पृ.91
32. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. उद्विग्नता का एक दिन पृ.109
33. अवस्थी, देवीशंकर. संपा. नयी कहानी: संदर्भ और प्रकृति, उद्‌धृत, नित्यानंद तिवारी, हिंदी कहानी की दिशा. पृ.113
34. यादव, राजेंद्र. कहानी: अनुभव और अभिव्यक्ति. पृ.50
35. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. एक व्रत की कथा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.52
36. पाण्डेय, बलराज. कहानी आंदोलन की भूमिका. पृ.75
37. यादव, राजेंद्र. कहानी: स्वरूप और संवेदना. पृ.54
38. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. बहुत दूर है आसमान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.42
39. अवस्थी, देवीशंकर. संपा. नयी कहानी: संदर्भ और प्रकृति, उद्‌धृत, नैमिचंद जैन, नयी कहानी-कुछ विचार. पृ.119

40. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. पार्टनर. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.33
41. कालिया, ममता. नयी सदी की पहचान: श्रेष्ठ महिला कथाकार. पृ.141
42. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. मन्नत. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.130
43. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. बीज. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.21
44. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. बहुत दूर है आसमान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.48
45. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. बहुत दूर है आसमान. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.46
46. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. बीज. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.24
47. शाह, साधना. हिंदी कहानी: संरचना और संवेदना. पृ.45
48. सरावगी, अलका. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रतीक्षा के बाद. पृ.57
49. चौधरी, सुरेंद्र. हिंदी कहानी: प्रक्रिया और पाठ. पृ.114
50. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. एक पेड़ की मौत. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.48
51. अवस्थी, देवीशंकर. संपा. नयी कहानी: संदर्भ और प्रकृति, उद्धृत, मोहन राकेश, नये संदर्भ की खोज. पृ.91
52. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. दूसरे किले में औरत. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.90
53. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. एक पेड़ की मौत. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.48
54. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. अंधेरी खोह में. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.54
55. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. पार्टनर. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.37
56. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.27
57. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.22
58. सिंह, पुष्पपाल. हिंदी गद्यः इधर की उपलब्धियाँ. पृ.58
59. सरावगी, अलका. 2001. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन. नई दिल्ली. पृ.44
60. पालीवाल, प्रियंकर. वागर्थ. रूबी दी का धूसर संसार और इतिहास का बघार. पृ.110

61. भारती, धर्मवीर. प्रगतिवाद: एक समीक्षा. पृ.190
62. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.27
63. माहेश्वरी, अरूण. कथा. 'छोटी-सी शुरूआत' और 'कलि-कथा'. पृ.172
64. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.188
65. त्रिपाठी, सत्यदेव. वसुधा. 'कलि-कथा' का बाइपास. पृ.302
66. शंभूनाथ. संस्कृति की उत्तरकथा. पृ.160
67. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.198
68. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.206
69. 69. कुमार, तरूण. कसौटी-समझना सनकी होना है. पृ.138-139
70. पालीवाल, सूरज. समकालीन हिंदी उपन्यास. पृ.202
71. जोशी, ज्योतिष. उपन्यास की समकालीनता. पृ.63
72. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.93
73. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.151
74. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.173
75. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.161
76. सत्यकाम, समीक्षा-कथा और अ-कथा का प्रश्न, पृ.19
77. त्रिपाठी, सत्यदेव वसुधा. 'कलि-कथा' का बाइपास. पृ.302
78. अर्चना. गौतम, वर्तमान साहित्य. बाइपासों के जरिए. पृ.78
79. त्रिपाठी, रवीन्द्र. हंस. 'कलि-कथा' एक अप्रत्याशित उपन्यास. पृ.90
80. सरावगी, अलका. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन. नई दिल्ली. पृ.173-174
81. जोशी, ज्योतिष. उपन्यास की समकालीनता. पृ.17

82. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण. पृ.51
83. सरावगी, अलका. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन. नई दिल्ली. पृ.64
84. सिंह, पुष्पपाला. हिंदी गद्यः इधर की उपलब्धियाँ. पृ.60-61
85. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.73-74
86. विश्वंभरन, टी.एन. कोई बात नहीं, आजाद भारत लड़खड़ाता है, समकालीन हिंदी उपन्यास: समय और संवेदना. पृ.28
87. त्रिपाठी, रवीन्द्र. हंस, स्मार्ट कथा और विरल गद्य. पृ.86
88. श्रीवास्तव, परमानंद. कथादेश, स्मृति और प्रत्यक्ष के तनाव में अधूरेपन की कथा. पृ.67
89. श्रीवास्तव, परमानंद. कथादेश, स्मृति और प्रत्यक्ष के तनाव में अधूरेपन की कथा. पृ.66
90. श्रीवास्तव, परमानंद. कथादेश, स्मृति और प्रत्यक्ष के तनाव में अधूरेपन की कथा. पृ.73
91. श्रीवास्तव, परमानंद. कथादेश, स्मृति और प्रत्यक्ष के तनाव में अधूरेपन की कथा. पृ.199
92. सिद्धार्थ, सुशील. परिचय- जैसे वह पीड़ा एक अंतहीन निर्जन हो. पृ.161
93. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.58
94. जोशी, ज्योतिष. उपन्यास की समकालीनता. पृ.62
95. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.31
96. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.64
97. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.71-72
98. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.92
99. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.113
100. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.74

101. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.116
102. नारायण राय, विभूति. कलि-कथा: वाया बाइपास- प्रयोगात्मक संदर्भ, भूमिका से
103. दुबे, अश्विनी कुमार. अक्षर पर्व- तीन काल खंडों की कथा. पृ.45
104. जोशी, ज्योतिष. उपन्यास की समकालीनता. पृ.63
105. किशोर, नवल. रंगायन. कलि-कथा की प्रतिवाद कथा. पृ.126
106. श्रीवास्तव, परमानंद. कथादेश. झुटपुटी चेतना के इलाके में. पृ.65
107. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.10
108. त्रिपाठी, यदेव. वसुधा. कलि-कथा का बाइपास और बाइपासों की कलि-कथा, पृ.298
109. गर्ग, निर्मला. कल के लिए. प्रतिक्रियावाद वाया बाइपास. पृ.51
110. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.14
111. कुमार, तरूण. कसौटी. समझना सनकी होना है. पृ.135
112. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.144
113. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृ.216
114. मोहन, कृष्ण. साक्षात्कार, पृ.111
115. राय, गोपाल. उपन्यास की संरचना. पृ.398-399
116. सरावगी, अलका. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.91
117. सरावगी, अलका. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.163
118. श्रीवास्तव, परमानंद. कथादेश. स्मृति और प्रत्यक्ष के तनाव में अधूरेपन की कथा. पृ.67
119. सरावगी, अलका. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.194
120. त्रिपाठी, रवीन्द्र. हंस. स्मार्ट कथा और विरल गद्य. पृ.87
121. सरावगी, अलका. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ.52
122. त्रिपाठी, रवीन्द्र. हंस. स्मार्ट कथा और विरल गद्य. पृ.86
123. भारद्वाज, भारत. राष्ट्रीय सहारा. इतिहास और स्मृतियों के द्वंद्व की कथा
124. पालीवाल, प्रियंकर. वागर्थ. पृ.113

125. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.05

126. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.16

127. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.43-44

128. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.50

129. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.74

130. प्रियदर्शन. हंस. पृ.86

131. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.215

132. डॉ. विश्वंभरन, टी.एन. समकालीन हिंदी उपन्यास: समय और संवेदना, पृ.34

133. प्रियदर्शन. हंस. पृ.86

134. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.149

135. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.92

136. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.61

137. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.92

138. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.109

139. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. प्रथम संस्करण, पृ.109

चौथा अध्याय

अलका सरावगी की रचनाओं में चरित्र चित्रण

चौथा अध्याय

अलका सरावगी की रचनाओं में चरित्र चित्रण

4.1 स्त्री पात्र

आज औरतों की प्राथमिकताओं में बदलाव आया है। यह बदलाव उनके कार्य क्षेत्र व लेखन में भी देखा जा सकता है। नारी पराधीनता के प्रश्नों को लेकर साहित्यकारों के तेवर बड़े तीखे हैं। समाज को बदलने की प्रक्रिया में वे औरत की भूमिका को सामने रखते हैं। भारतीय समाज की संरचना में मौजूद अर्थ और वर्ण व्यवस्था जैसी तमाम विसंगतियों के चलते पुरुष सत्ता की गुलामी का शिकार स्त्रियों की अंतहीन यातनाएँ जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं। इस समाज में स्त्री का स्थान विशेष तो है लेकिन उसकी सामाजिक हैसियत 'वस्तु' से अधिक कुछ नहीं है इसलिए यह तय करना है कि नारी की आजादी के लिए सामंती सोच को बदलना निहायत जरूरी है।

4.1.1 कहानियों में व्यक्त स्त्री-पात्र

वंदिता

वंदिता 'मिसेज डिसूजा के नाम' कहानी कहानी की मुख्य पात्र है। वंदिता की माँ संगीतज्ञ होने के कारण अपने संगीत के कार्यक्रमों में व्यस्त रहती है। वह अपनी छात्रा बेटी की प्रधानाध्यापिका को एक शिकायती पत्र लिखती है उस पत्र के वक्तव्यों के द्वारा वह अपने को एक सफल माँ और स्त्री के रूप में खड़ी करना चाहती हैं। ''माफ कीजिएगा मिसेज डिसूजा, शायद आप को लग रहा होगा कि मैं अपनी खामियों को छिपाने के लिए कितने तर्क जुटा रही हूँ। हाँ खामियाँ तो रह ही जाती हैं.....चाहती तो हम सब यही है कि जीवन हर तरह से पूर्ण और चरम उत्कृष्ट हो, लेकिन किस कीमत पर?''[1] मिसेज डिसूजा द्वारा बतायी गयी खामियों को झुठलाने के लिए उसे हजारों दलीलें देनी पड़ती हैं।

सारिका

सारिका 'टिफिन' कहानी कहानी की मुख्य पात्र है। है जो विद्यालय के क्रिया-कलापों को रोज अपनी दादी को सुनाती है। सारिका अपनी दादी के सबसे निकट है। विद्यालय की घटनाओं में वह सबसे ज्यादा टिफिन की बातें दादी को बताती है उसकी सभी सहेलियाँ एक साथ टिफिन करती हैं। उसकी एक सहेली है विद्या जो हमेशा 'टिफिन' में 'मूड़ी' (सेंकी हुई लाई) लाती है। कहानी के अन्त में सारिका की सहानुभूति विद्या के प्रति इन वाक्यों में दिखाई देती है। ''सारिका

ने शान्त स्वर में कहा- 'आप लिखिए-चार सालों में विद्या एक बार भी टिफिन लेकर स्कूल नहीं आई।''[2]

दमयन्ती जी

दमयन्ती जी 'ख़िजाब' कहानी की मुख्य पात्र है। है। वृद्धावस्था के उपरान्त भी दमयन्ती जी स्वतन्त्र जीवन चाहती हैं। प्रेम और मोह में सिर्फ बन्धन है इस कारण वह अपने परिवार के साथ न रहकर एकाकी जीवन व्यतीत करती हैं। बालों में ख़िजाब लगाये रहने वाली दमयन्ती जी अपना जीवन अपनी शर्तो पर ही जीना पसंद करती हैं। यह कहानी आधुनिकतावादी जीवन की विसंगतियों को उजागर करती है।

सुशीला जी

सुशीला जी 'महँगी किताब' कहानी की मुख्य पात्र है। सुशीला जी के व्यक्तित्व और व्यवहार से प्रभावित लड़की का अपने व्यक्तित्व को उन्हीं के अनुसार ढ़ाल लेने की कोशिश के फलस्वरूप वह उन्हीं के जैसा व्यवहार करने लगती है। उस लड़की के प्रति उसके सहयोगी जो कि उसके साथ किताब के सम्पादन का काम करता है की एक धारणा बन जाती है परन्तु बाद में उस धारणा का खण्डन भी हो जाता है।

वन्दना

वन्दना 'लाल मिट्टी की सड़क' कहानी की मुख्य पात्र है। वन्दना अपने जीवन के अकेलेपन, ऊब और उदासी से निजात पाना चाहती है। ''वन्दना ने करवट बदलकर अपने मन को उस बेचैनी से मुक्त करने की कोशिश की, जो आधी नींद तक पहुँचते-पहुँचते न जाने कहाँ से आकर उसे दबाने लगी थी। अधजगी सी हालत में उसका दिमाग इस बैचेनी का कोई कारण खोज नहीं पा रहा था। यह घबराहट है या एक तरह का खालीपन सा?''[3] अपने अकेले होने की अनुभूति और खालीपन को भरने के लिए वह यायावर जीवन का विकल्प तलासती है। ''लाल मिट्टी की सड़क उसे बुला रही थी, पर उसने सोचा की सविता के साथ ठीक रहेगा और थोड़ी रोशनी बढ़ने का इन्तजार भी।''[4]

नीलिमा

'मन्नत' कहानी नीलिमा नामक एक युवती की है जो सेमिनार के लिए पहली बार अपने परिवार और शहर से काफी दूर दिल्ली आई हुई है। नीलिमा सुशिक्षित और सरल स्वभाव की नारी है। इस कहानी में कलकत्ता शहर की गरीबी, गड्ढोंवाली सड़कें आदि का चित्रण है। इसमें

दो अलग-अलग विचारधारा रखनेवाले लोगों के जीवन की समस्या और उनके साथ सामंजस्य करनेवाले किसी तीसरे व्यक्ति की समस्या को भी दर्शाया गया है। इसमें एक सामान्य या विशेष प्रकार की मन्नत को माँगने की बातें की गयी है। इस कहानी में विभिन्न परिस्थितियों और समस्याओं की ओर पाठकों का ध्यान कहानिकार ने आकृष्ट की है।

रजनी

'एक और नमक हराम' नामक कहानी किशोरावस्था से जुड़ी समस्याओं पर आधारित है। इस कहानी की मुख्य पात्र तेरह वर्षीय एक नन्ही बच्ची रजनी है। कोई भी बच्चा जब बाल्यावस्था से किशोरावस्था में कदम रखता है तो उसके मन में अनेक भावानाएँ आकार लेना शुरु होते हैं। यही नहीं अनेक दुविधाओं से वह घिर जाना स्वाभाविक है। इस काल में उसके मन में अनेक प्रश्न उमड़ते-घुमड़ते हैं। पर लोग उसके मानसिकता को समझने की कोशिश नहीं करता। "रजनी की दुनिया बहुत तेजी से बदल रही थी इतनी तेजी से कि कई बार उसे एक अजीब किस्म का डर लगने लगता है।"[5] इन्हीं समस्याओं को इसमें उभारा गया है।

सुधा

'जोड़-घटाव' नामक कहानी स्नातकोत्तर परीक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होनेवाली सुधा की है। सुधा शांत और अध्ययनशील लड़की है। वह तार्किक और सच्चाई पसंद करनेवाली है। पर उसकी चारित्रिक छवि बिगाड़ने की कोशिश विश्वविद्यालय के उसके चिर-परिचितों द्वारा की जा रही थी। विश्वविद्यालय जगत की सत्यता को खोलकर दिखाना इस कहानी का परम उद्देश्य है। नये पीढी के युवाओं के मन में विश्वविद्यालय के प्रति जो धारणाएँ बनी हुई हैं, उसे रास्ता दिखाना कहानीकार चाहती है। यही नहीं विश्वविद्यालय की बढ़ती राजनीति, भ्रष्टाचार आदि की ओर भी इसमें संकेत है।

मिसेज शुक्ला

'अंधेरी खोह में' नामक कहानी कॉलेज में हिन्दी विभाग में प्राध्यापिका के पद पर नियुक्त मिसेज शुक्ला की है। उसकी अनुभवों की दुनिया घर और कॉलेज तक ही सीमित है। उसको यात्रा करना बहुत पसंद है। इस कहानी एक घरेलू परंपरागत अंदाज में रहनेवाली औरत की अस्मिता और अस्तित्व से संबंधित है। इस कहानी के द्वारा कहानीकार ने वातानुकूलित कमरों में बैठकर सीमित अनुभवों के बावजूद रचना कार्य करनेवाले लोगों के बारे में भी चित्रण करते हैं।

आम जनता के बारे में लिखने केलिए सबसे पहले यथार्थ के धरातल पर उतरना चाहिए। यह इस कहानी का उद्देश्य है।

मीरा

'कनफेशन' नामक कहानी कॉलेज में पढ़नेवाली इक्कीस वर्षीय मीरा नामक एक युवती की है। वह संवेदनशील, चिंतनशील और सच्चे प्रेम में विश्वास रखनेवाली लड़की है। वह अपने माता-पिता के तनावपूर्ण जीवन से अत्यंत दुखी है। माता-पिता के जीवन में व्याप्त शक समाप्त होने केलिए वह चाहता है। इसमें पति-पत्नी के दाम्पत्य जीवन से संबंधित बात उनकी इक्कीस वर्षीय बेटी की मानसिकता पर कैसा प्रभाव डाली गयी है इसका चित्रण है। वह अपनी पहली लिखी हुई कहानी को फिर इस उद्देश्य से उठा लेती है कि इसमें ही संशोधन करके मिस कपूर को देगी परन्तु मैगजीन उठाते ही उसमें लगी चिट को देखकर वह दंग रह जाती है। ''यह तो पापा की लिखावट है। तो क्या पापा ने उसकी कहानी पढ़ ली? मीरा ने पहले शर्म फिर घबराहट और अन्त में अपने अन्दर उठते गुस्से से लड़ते हुए चिट को पढ़ना शुरू किया-''मैने तुम्हारी कहानी पढ़ी। तुम्हारा एक पाठक होने का मेरा भी अधिकार है, इसलिए शायद मेरा यह व्यवहार तुम्हें बुरा लगे। खैर मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह सच है कि जिन्दगी में बहुत जगह बहुत घिनौनापन है। बुराई है। उसका कनफेशन कराना और करना जरूरी हो सकता है। लेकिन अच्छा होता कि तुम्हारी कहानी उन लोगों पर लिखी जाती जिनका अपराध सिर्फ इतना ही होता है कि वे समाज के दिये हुए माने हुए रिश्तों के बाहर कुछ सुन्दर पा लेते हैं।''[6] मीरा की आँखे पापा की चिट को पढ़कर भर आती हैं। मीरा की कहानी उस चिट के साथ सही होकर पूरी हो जाती है। इस कहानी में मीरा अपने पिता को न समझ पाने के अपराध बोध से उनके प्रति कनफेशन का भाव रखती है।

अपर्णा

'दूसरी कहानी' एक माँ 'अपर्णा' और बेटे 'सुदर्शन' की कहानी है। ''अपर्णा एक कहानी लिखना चाहती है पिछले पन्द्रह वर्षों से। अपने जीवन की पहली और अन्तिम कहानी।''[7] नौवें साल में लिखी इस कहानी में अपर्णा ने इस बिन्दु पर आकर यह महसूस किया कि माँ बेटे की इस कहानी में दुःख सेंध लगाने लगा है। सुदर्शन उसके सुख का आधार है और सुदर्शन की बीमारी उसके जीवन को दुःख का घर बना देती है। माँ बेटे की इस कहानी में अपर्णा ने दुनिया को घुसने नहीं दिया था। कहानी का अन्त हालाँकि सुखात्मक है और कहानी अनिवर्चनीय आनन्द

पर खत्म होती है पर यह आनन्द कब तक? वह जानती है दुःख फिर कभी चुपके से उसके जीवन में अपनी पैठ बना लेगा।

परवीन अख्तर

'रिपन स्ट्रीटेट परवीन अख्तर' कहानी अपने अन्दर दुःख को समेट कर रखने वाली परवीन अख्तर की कहानी है। परवीन अख्तर के जीवन में क्या दुःख है यह सवाल अंजलि को बार-बार परेशान करता है। ''अंजलि परवीन अख्तर के पास इसलिए जाती थी क्योंकि परवीन की उदास आँखो के सामने उसे कालेज की दुनिया की चहल-पहल बहुत सतही और घटिया लगती थी। वह परवीन को जानना चाहती थी यदि उसके अन्दर किसी बात का गम था, तो वह उसकी तह तक पहुँचना चाहती थी।''[8] यह कहानी जीवन के विषाद या अवसाद का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है।

4.1.2 उपन्यासों में व्यक्त स्त्री पात्र

कुंती देवी

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में किशोर बाबू की माँ कुंती प्रमुख स्त्री पात्र है। अलका सरावगी ने कथा में जो पीढी में गैप है, उसको स्पष्ट करने के लिए माँ का सहारा लिया है। माँ की कहानी के माध्यम से किशोर बहुत कुछ जानता और समझता है; क्योंकि किशोर के मन में जो सवाल उठता है उसके निदान के लिए माँ से ही जाकर पूछता है। किशोर बाबू की माँ एक योग्य पत्नी, स्वाभिमानी, ममतामयी व्यावहारिक नारी के रूप में पाठकों के सामने उपस्थित होती हैं। कुंती देवी का विवाह हुआ तब से सुख क्या होता है यह कभी नहीं जाना। इसके बावजूद परिवार के प्रति कभी किसी प्रकार की खटास मन में नहीं पाली। यही वजह रही कि भुरामल जी कुंती देवी को अपनी पत्नी के रूप में पाकर बहुत प्रसन्न और संतुष्ट रहते थे। उन्होंने एक बार कहा भी था कि तुम ही मेरी सब कुछ हो, माँ की तरह स्नेहिल, बेटी की तरह श्रद्धावान, सुख में सुखी, शिक्षिका, सेविका सब कुछ।

किशोर बाबू की माँ कुंती देवी देखने में बहुत ही सुंदर स्त्री थी। इसका जिक्र रामविलास बाबू ने किया है, जिसमें उन्होंने कहा है कि मेरी पतोहू की एक- एक आँख कोहिनूर हीरा है। मेरे पास दो-दो कोहिनूर हुए न। रानी विक्टोरिया के पास तो एक ही है। यह स्पष्ट करता है कि बहुत सुंदर व योग्य पत्नी के रूप में अपने आप को प्रस्तुत किया। साथ ही साथ उनमें संघर्ष करने की भी अद्भुत शक्ति थी। पुत्र और पति की मौत के बाद पूरी तरह से कमजोर दिखने वाली कुंती

देवी अपने आप को अंदर से मजबूत बनाए रखा। इसका उदाहरण है कि उनके पिता के द्वारा उन्हें बुलाए जाने पर अपने घर में ही रहना उन्होंने अधिक श्रेयष्कर समझा। पाई-पाई जोड़कर उन्होंने अपने घर को आगे बढ़ाने की सोची। यहां स्वाभिमानी व्यक्तित्व के रूप में कुती देवी की प्रस्तुति हुई है। वह अपने अभाव को, अपनी आर्थिक विपन्नता को किसी के सामने प्रस्तुत नहीं करती। न तो ससुराल बालों में न ही मायके वालों में।

कुंती देवी के मन में ममता, प्रेम पूरा भरा पड़ा है। यह अच्छी माँ, बहू, बेटी, पत्नी, ननद एवं सास सभी रूपों में अपनी ममता बिखेरती रहती है। वह अपनी बड़ी बहू से बहुत स्नेह करती है। अपने पति के निधन के बाद शांता ज्यादा दिन मायके में नहीं रहना चाहती, इसकी वजह कुंती देवी का स्नेह ही है। कुंती देवी आस्तिक हैं, धार्मिक हैं, लेकिन पाखंड के विरोधी हैं। उन्हें ईश्वर में आस्था है लेकिन बाह्य आडंबरों को कभी तरजीह नहीं देती। वह रामविलास दादा जी को समझाती भी हैं कि ज्योतिषी को पैसे दे देने से खोई हुई संपत्ति या किस्मत वापस नहीं आ सकती। कुंती देवी बहुत व्यावहारिक नारी है दयालु महिला होने के साथ-साथ वह भूखे पीड़ितों की सदैव मदद करने की कोशिश की हैं। सबको समान भाव से उचित सम्मान देती रही हैं।

सरोज

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में सरोज, किशोर बाबू की पत्नी का नाम है जो कोलकाता में मात्र कक्षा 4 तक पढ़ी सीधी-सादी, भोली-भाली. बच्चों के प्रति बहुत अधिक प्रेम रखने वाली नारी के रूप में चित्रित हुई हैं। यह आस्तिक है, दान पुण्य करते हैं। किशोर बाबू की सर्जरी होने के बाद उनकी प्रत्येक गतिविधि पर पूरा ख्याल रखने वाली नारी के रूप में भी उनको देखा जा सकता है। वह अंधविश्वासी भी है। किशोर बाबू के ठीक होने के लिए वह टोना टोटका आदि का भी प्रयोग कराती हैं तथा ईश्वर से क्षमा याचना करती है।

स्नेहमयी माँ के रूप में भी सरोज का चित्रण हुआ है। बहुत ही भावुक और संवेदनशील महिला जो अपनी किस्मत पर विश्वास रखने वाली नारी है। किशोर बाबू की अस्वस्थता पर उनका ख्याल रखने में उन्होंने कभी कोई कोताही नहीं की। किशोर बाबू को पाँच लड़कियां और लड़के, दादी, ताई जितने लोग हैं सबों के समान रूप से प्रिय सरोज अपने जीवन में बहुत महत्वाकांक्षा ना पालते हुए परिवार के प्रति जिम्मेदार रहती हैं। यही कारण है कि उसकी छोटी बेटी ने एक दिन उससे पूछ लिया था कि "माँ, तुम इतना चुप क्यों रहती हो? तुम बताओ कि तुम क्या सोचती हो? तुम सब की बातें क्यों सहती हो?"[9]

पूरे परिवार को शांति से बिना कुछ रोक-टोक कैसे अबाध गति से परिवार को चलाया जाता है इसका एक उदाहरण सरोज प्रस्तुत करती हैं। हम देख सकते हैं अलका सरावगी ने योग्य बहू, योग्य पत्नी, योग्य माँ के साथ-साथ संवेदनशील, संस्कारी, कर्तव्यनिष्ठ, धर्म भीरु, त्यागमयी, अंधविश्वासी और समय के साथ पारिवारिक तालमेल को समझने वाली नारी के रूप में सरोज का चित्रण किया है।

रामविलास बाबू की पत्नी

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में रामविलास बाबू की पत्नी के नाम का तो जिक्र उपन्यास में नहीं हुआ है लेकिन, अलका जी ने उनका जो चित्रण किया है, उससे लगता है कि राजसी ठाठ-बाट से जीने वाली, गहने कपड़े और विलायती चीजों में चाहत रखने वाली औरत के रूप सामने आता है। अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं की पूर्ति में ही जीवन का सुख मानने वाली नारी के रूप में उन्हें देखा जा सकता है। वह पूरे ठाठ-बाट के साथ अपनी हवेली में, अपनी बहू, बेटी, पुत्र के साथ रहती है। रामविलास बाबू कोलकाता में आजीवन कमाते है। वह पति को प्रदेश भेज कर अधिक धन सुख अर्जन करना अपना सही फैसला मानती हैं।

विमली देवी

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में रामविलास बाबू की माँ का नाम विमली देवी है। अपनी चारों संतानों को खोते हुए रामविलास बाबू को अपनी पलकों पर बिठा कर रखती है। वह अपने पुत्र को जीते जी कभी प्रदेश नहीं जाने दिया। लेकिन, उनके गुजर जाने के बाद उनकी पत्नी ने रामविलास बाबू को प्रदेश भेज दिया। बहुत ही सुखमय दांपत्य जीवन बिताने वाली विमली देवी रूखी-सूखी खाकर भी अपने बच्चे को प्रदेश नहीं भेजना चाहती थी। अपने पति को भी वह हमेशा अपने पास रखना चाहती थी। उनको आशंका थी कि जाने पर पति हमेशा के लिए दूर ना हो जाए।

किशोर बाबू की बहू

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में किशोर बाबू की पुत्रवधू के नाम का भी जिक्र नहीं हुआ है। हालाँकि उनकी गतिविधियों को शामिल किया गया है। पूर्णतः आधुनिक स्त्री के रूप में उनका चित्रण हुआ है। उन्होंने ससुरजी को भी तरजीह नहीं दी, जैसा उनके परिवार में सालों स चलता आ रहा था। किशोर बाबू के सामने ही वह एक दिन कहती है कि पाँच सौ मेरे ब्यूटी सैलून में हर महीने खर्च होते हैं, पाँच सी हाथ खर्चा में क्या होगा। मतलब की पारिवारिक

मर्यादा का उतना ख्याल नहीं रखने वाली अत्याधुनिक, उच्छृंखल स्वभाव की नारी के रूप में किशोर बाबू की पुत्र-वधू का चित्रण हुआ है। एक आदर्श बहू के गुणों को यह हमेशा ताक पर रखती है और अपनी मनमानी चलाने के लिए किशोर बाबू के पुत्र पर भी दबाव बनाती है। किशोर बाबू अपने पुत्र वधू के इन्हीं गुणों के कारण चिंतित रहने लगे थे।

पुत्र वधू ने कहा- " 'कॉलेज में पढ़ूंगी।' किशोर बाबू ने हामी भर दी। उसने कहा- 'सलवार-कुरती पहनूंगी। साड़ी में झंझट है।' किशोर बाबू मना नहीं कर सके। अचानक उन्हें पता चला कि बहू ने मांथे पर बिंदिया लगानी छोड़ दी है। यह क्या? यह तो औरतों का सुहाग-चिन्ह है। 'लेकिन आजकल फैशन नहीं है, बिंदी लगाने का।' किशोर बाबू ने समझा कि अब 'लेटेस्ट' फैशन वे नहीं जान सकते। क्लबों में देर रात तक डांस करना भी इसी तरह की चीज है।"[10]

शांता भाभी

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में किशोर के बड़े भाई ललित भैया की पत्नी शांता भाभी बहुत ही कुशल नारी है। कानपुर की रहने वाली पढ़ी-लिखी नारी के रूप में शांता भाभी का चित्रण हुआ है। वह अच्छा गाती भी हैं। ललित भैया ने उन्हें पसंद किया था। शादी के 2 महीने बाद ही वह विधवा हो जाती हैं लेकिन संस्कार एवं रहन-सहन का पूरा ख्याल रखते हुए आजीवन अपने ससुराल में ही अपने सासू माँ के साथ जीवन बिताती हैं।

इतनी व्यावहारिक स्त्री के रूप में शांता भाभी का चित्रण हुआ है कि किशोर शादी के बाद अपने पत्नी के साथ भी अगर कहीं घूमने जाता है तो शांता भाभी को साथ लेकर जाता है। वे पढ़ने-पढ़ाने की शौकीन, हिंदी साहित्य में रुचि रखने वाली नारी हैं। अलका जी के द्वारा शांता भाभी हमेशा किशोर बाबू के कडे अनुशासन में रहने वाली नारी के रूप में चित्रित हुआ है।

रूबी दी

रूबी गुप्ता उर्फ रूबी दी 'शेष कादम्बरी' उपन्यास की मुख्य पात्र है। उसके जीवन में अर्थ से अधिक अस्तित्व की महत्ता है, जिसमें उसने सारा जीवन लगा दिया। आर्थिक स्थिति से सम्पन्न होकर भी अपने जीवन के अस्तित्व को सत्तर साल की उम्र में भी तलाशते रहना उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है। सभी के तिरस्कार के बावजूद भी वह हताशा के बादलों में घिरने वाली नहीं। जीवन के प्रति उसकी सकारात्मक सोच है क्योंकि भले ही उसके जीवन की कोई खास वजह नहीं तब भी जीवन सबसे बड़ा है और वह अपनी गरिमा को खो नहीं सकती।

रूबी अपने माता-पिता की गोद ली हुई संतान है जिसकी टीस उसे हमेशा होती। उसके सोच की उड़ान स्वतंत्र नभ में हवा, पानी, बादल, नदी, समुद्र बनना है। उसके विचार साम्प्रदायिकता के बंधन से मुक्त तथा वेद-वेदान्त, उपनिषद् आदि से परे है। रूबी दी वक्त की बहुत पाबन्द है तथा विज्ञान और तर्क को प्रधानता देनेवाली है। वह मुसलमान लड़के आदिल से प्रेम करती है किन्तु हिन्दू-मुसलमान की साम्प्रदायिकता के कारण उसका प्रेम उससे छीन लिया जाता है। रूबी ने अपने जीवन के सारे संघर्ष चुपचाप अकेले झेले, कभी किसी से शिकायत नहीं की।

रूबी गुप्ता किसी से नहीं पूछ पाती हैं क्योंकि जिस दुनिया में वे बड़ी हुई थीं, वहाँ इस तरह की कोई निजी बात, जिसको पूछने का कोई विशेष मकसद न हो, किसी से पूछना अमर्यादित व्यवहार था। ''माँ तुमने मुझे पूरे समाज-परिवार के सामने अपनाने की कोई रस्म अदा नहीं की। तुम्हें पता है, पिताजी की वसीयत में इसीलिए मेरे लिए 'पाली हुई लड़की' जैसे अपमानजनक शब्दों का इस्तेमाल वकील ने करवाया। माँ, तुमने मुझे 'गोद' नहीं लिया क्यों? ताकि तुम मेरे बचपन से जवान होने तक जब-तक मामी से कह सको, 'बाई, मैंने बिना आप से पूछे आपका दूध छुड़वाकर आपके कलेजे का टुकड़ा ले लिया आप सबसे यह बात कहती फिरती हैं। तो अब आप ही रूबी को रख लें..। यहाँ तक कि तुमने मेरी शादी के वक्त भी कन्यादान के हकदार को लेकर झगड़ा होने पर कहा, बाई, रूबी तो आपकी लड़की है। आपकी वारिस कन्यादान। इसे यहाँ से ले जाइये। मुझे इससे कोई मतलब नहीं। माँ, तुमने अपनी ननद और खुद के झगड़े में मुझे मोहरा बनाकर रखा। तुमने कभी सोचा कि इससे मुझ पर क्या बीतती है?''[11] जीवन में कई पड़ाव देखने के बाद भी परिस्थिति से हार मानकर घुटने टेक देना उसके विचारों में भी शामिल न था। भले ही परिवार के रहते हुए भी वह अकेले रहने को बाध्य है परन्तु न तो उनकी सक्रियता में कमी है न उद्देश्य। स्वयं अपने अंदर के एकांत और दुःख को झेलती हुई वह मिस्टर वासुदेव मणि के 'गुड फ्रेंड्स सोसाइटी' से जुड़कर दूसरों के दुःख-कष्ट को दूर करने में उनकी मदद करती है। स्वयं गोद ली हुई संतान होने के कारण दूसरों को आश्रय देना उसके जीवन का अहम हिस्सा बन गया था। कई बेसहारा लड़कियों को उसने अपने घर सहारा दिया। अनेकों के दुःख को जानकर वे जीवन का सच्चा अर्थ तलाशने लगी और हर बार उसका मन एक नए रास्ते पर चल पड़ता तथा जीवन को हर बार अपूर्ण पाता। रूबी के जीने की वजह उसकी 'परामर्श' संस्था है, जहाँ से वो दूसरों की मदद करने की कोशिश करती है। कभी वह कैंसर के मरीजों को देखने जाती है तो कभी गुमनामों के जीने का सहारा बनती। अपनी आँखों के सामने वह किसी प्रकार का अन्याय नहीं देख सकती थी भले ही इसके लिए उसने कई नुकसान उठाए थे। अपने परिवार को नशे की महामारी फैलाने का जिम्मेदार समझकर वह, नशा पीड़ितों को

पिता की धनराशि का एक अंश पहुँचाना चाहती है और इसे ही पिता का असली श्राद्ध समझती है।

रूबी दी के चरित्र का उच्चतम रूप तब हमारे सामने आता है, जब उनके विचार उनके व्यवहार में रूपान्तरित होते हैं। उन्होंने अपना वसीयतनामा अपनी नातिन कादम्बरी के अलावा सायरा और सविता के नाम पर भी किया, जिसे उन्होंने सहारा दिया था। कोई खून का रिश्ता न होने पर भी रूबी उनके जीवन की आश्रयदाता बनी। बिना किसी से परामर्श किए संपत्ति में अधिकार देने जैसा बड़ा फैसला वही ले सकता है, जिसके हृदय में दूसरों के प्रति सहानुभूति के साथ-साथ कुछ करने की भी इच्छा हो। इससे उनके चरित्र पर मुहर लग जाती है कि उन्होंने अपना पूरा जीवन दूसरों के कष्टों को कम कर उसमें जीवन के सूत्र को तलाशने में व्यतीत कर दिया।

कादम्बरी

'शेष कादम्बरी' उपन्यास का नामकरण ही कादम्बरी पात्र के नाम पर हुआ है। इस उपन्यास में रूबी दी के बाद यह सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र है। यह रूबी दी की नातिन है, जो कि दिल्ली में एक पत्रकार मित्र गौतम के साथ अविवाहित होते हुए भी साथ रहती है। कादम्बरी की उम्र लगभग उस समय 24 वर्ष रही है। टीवी और अखबार के लिए रिपोर्ट तैयार करने वाली यानी एक पत्रकार के रूप में कादम्बरी का चरित्र सामने आया है। उच्च शिक्षा हासिल कर कादम्बरी लिखाई पढ़ाई में आगे बढ़ती है। साथ ही साथ अपनी नानी की प्रिय भी है। नानी की सलाहकार के रूप में भी वह काम करती है। एक आधुनिक लड़की के रूप में कादम्बरी का परिचय सामने आता है। उसकी माँ का नाम गौरी है, जो विदेश में अपने पति के साथ रहती है।

कादम्बरी समाज की बुराइयों के प्रति सचेत रहती है मगर, वह इन विसंगतियों के लिए स्वयं को जिम्मेदार मानती है। वह रूबी दी को साहित्य रचना के लिए प्रेरित करती है। कहानी, उपन्यास आदि लिखने को कहती है। हालोंकि, रूबी दी और कादम्बरी की सोच में अंतर है। दोनों में वैचारिक मतभेद हैं। उनका मानना है कि आदमी के जीवन का सैंपल किसी समय किसी की कहानी नहीं कह सकता। वह वर्तमान युग में इंग्लिश बोलने वाली आधुनिक लड़की है। इस उपन्यास में उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उसके पिता स्टीव जो कि आधा अंग्रेज आधा भारतीय है और माँ हिंदी भाषी है, इसीलिए वह ना तो यूरोपियन लगती है ना हिंदुस्तानी। फिर भी वह अपने वजूद के लिए प्रखर लड़की के रूप में सामने आई है। लेखन कला में दक्ष, मृदुभाषी, संस्कारित, स्पष्ट वक्ता के रूप में उसका परिचय सामने आता है। एक सशक्त लड़की जो

आधुनिकता के साथ घुलमिल कर जी रही है, कैसे अपनी नानी जो कि पारंपरिक सोच की है, उनके द्वारा तालमेल बिठाती है, कैसे विचारों में उन्हें अपनी राय से परिचित कराती है इस उपन्यास में मिलता है। वह नानी की कहानियों पर अपनी प्रतिक्रिया देने की भी क्षमता रखती है।

''उफ् कितनी प्यारी! मेरा दिल इसलिए बड़ा हो गया कादम्बरी, क्योंकि उसमें तुम रहने लगी हो रुबी दी ने कहा। 'ओह माई गॉड' नानी तो फिल्मी डॉयलाग मारने लगी हो, इस उम्र में। आपका हार्ट तो एनालार्ज नही हो गया नानी? कादम्बरी फिर हँस रही थी, आज रुबी दी ने एस.टी.डी. की परवाह छोड़ दी।''[12] अतः हम कह सकते हैं कि एक सशक्त आधुनिक लड़की समय के हिसाब से अपने को ढालकर आधुनिकता में प्रवेश कर स्पष्ट वक्ता, अध्ययन व व्यवहार में कुशल लडकी के रूप में कादम्बरी का परिचय अलका सरावगी ने प्रस्तुत किया है।

सविता

सविता 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में गौण पात्र के रूप में सामने आती है, जो रूबी दी की परामर्श संस्था में अपनी समस्या सुनाने आती है। सविता आती तो है एक समस्या लेकर लेकिन रूबी दी से इस तरह से घुलमिल जाती है कि आगे चलकर उन्हें अपनी वसीयत में रूबी दी अधिकार दे बैठती है। सविता अपने जीवन की कहानी रूबी दी को बताती है, जिसमें उसे पता होता है कि माँ के मरने के 6 महीने बाद भाई की शादी होती है और 8 महीने बाद पिता दूसरी शादी करके कहीं और जाकर रहने लगते हैं। उस समय उस अपने पिता के अच्छे चरित्र नहीं होने के कारण परेशानी झेलती है और ऐसा लगता है कि उसकी भाभी भी सविता को कम परेशान नहीं करती। उसकी गलती है कहने पर भाई, भाभी, पिता सब उसके विपरीत हो जाते हैं। वही भाई अपनी कुंवारी बहन पर आरोप लगाकर थाने में डायरी लिखवा देता है। किसी तरह उसकी शादी होती है तो पति का चरित्र भी अनुकूल नहीं मिलता। किसी अन्य वेश्याओं के साथ उसका पति रात-रात भर गायब रहता है। इस तरह अपने चारों और परेशानी के बावजूद सास की प्रताड़ना सुनते-सुनते अंततः हार-पार कर पिता के पास आकर रहने लगती है। इसके बावजूद एक दिन उसके पिता भी उसे घर से पीट-पीटकर आधी रात को बाहर निकाल देते हैं। यह कह कर कि पैदा हुई जब से जीना मरना एक बराबर कर रखा है। अभी भी चुड़ैल पीछा नहीं छोड़ती। एक को तो खा गई अब इसे भी खा कर छोड़ेगी।

विद्रोही व्यक्तित्व सविता में इस प्रकार उभर जाता है कि एक बार जब वह घर से बाहर निकल जाती है तो फिर कई प्रकार के विद्रोह करने पर उतारू हो जाती है। सविता को तकलीफ में देखकर रूबी दी उसे अपने साथ रख लेती है। लेकिन वहां भी वह श्यामा से अनबन कर

बैठती है, जिसकी वजह से उसे वहां से भी निकालना पड़ता है। हालाँकि बाद में रूबी दी उसके लिए अफसोस भी करती है और अपनी वसीयत में उसको भी अधिकार देती है।

तेजतर्रार लड़की के रूप में सविता का चित्रण अलका सरावगी ने किया है, क्योंकि वह बार-बार कहती है कि वह बदला लेगी। वह अपनी बीमारी की घड़ी में ठीक होने के बाद अपने पति से बदला लेना चाहती है और मुआवजे में बहुत से रुपए आजीवन खर्च का दावा कर उसे कोर्ट में घसीटना चाहती है।

सविता बीमार हो जाती है, जिसकी वजह से उसे लाने के लिए रूबी दी स्वयं जाती हैं और उसे लेकर आती हैं। लेकिन यहां वह सायरा नाम की मुस्लिम लड़की से भेदभाव करने के कारण उसे रूबी दी का कोपभाजन बनना पड़ता है और उसे जाना पड़ता है। सविता एक ऐसी नारी के रूप में चित्रित हुई है, जिसके पास समस्याएं ही समस्याए है और उनकी समस्याओं को कोई सुनना नहीं चाहता, समझना नहीं चाहता। इस समस्या को भी दूर करने के लिए रूबी जी उसे अपने साथ रख कर उसकी फिर से शादी करना चाहती है लेकिन वह लाख प्रयत्न के बावजूद ऐसा नहीं करा पाती, इसके लिए भी सविता ही जिम्मेदार है। उसका व्यवहार जिम्मेदार है। हालाँकि हिम्मत वाली लड़की के रूप में सविता का चित्रण हुआ है। वह सहनशीलता के साथ जुझारू प्रवृत्ति की नारी के रूप में सबके सामने आती है।

सायरा

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में सायरा एक अल्पविकसित दिमाग वाली मुस्लिम धर्म की नारी है। मनोरंजन व्यापारी उसे लाकर रूबी दी के पास छोड़ जाता है। उसके मानसिक अस्वस्थता का नाजायज फायदा उठाकर उसके सगे भाई ने उसके साथ शारीरिक शोषण किया। जिसके कारण वह और भी विक्षिप्त हो जाती है। रूबी दी के घर उसे एक नया जीवन मिलता है। रूबी दी उसे अपने सहायक के रूप में रख लेती है और उसका नाम सायरा से सारा कर देती हैं। ऐसा इसलिए कि उसे धर्म के नाम पर उसके साथ कोई भेदभाव ना हो। उसके लिए भी रुबी दी अपनी वसीयत में से पच्चीस हजार रुपये देने का प्रावधान कर रखती हैं। इस तरह सायरा जैसी मंदबुद्धि लड़की का ख्याल रखती है। अलका सरावगी ने इनके द्वारा समाज के कई मंदबुद्धि लड़कियों, जिनका शारीरिक शोषण एवं दोहन होता रहा है उनकी समस्याओं को भी दिखाने का प्रयास किया है।

श्यामा

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में श्यामा रूबी दी के घर में खाना बनाने के लिए रहती है। खाना बनाने में पारंगत है। रूबी दी के घर काम करती है और अपने कर्त्तव्य को समझती है। बहुत अधिक चर्चा न होते हुए भी महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में मौजूद है।

माया बोस

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में माया बोस, रेड लाइट एरिया की वेश्याओं का प्रतिनिधित्व करने वाली किरदार हैं। उसके जीवन को उसके पिता ने ही नष्ट कर दिया है। पिता की पतित अनैतिकता के कारण माया बोस को वेश्या बन जाना पड़ता है। भाग्य की मारी वह इस दलदल में फंस जाती है और ऐसा होता है कि वह उस दलदल से निकलने के बजाय और धँसती चली जाती है। माया बोस का चरित्र चिंतनशील है। वह इस समस्याओं से निकलना चाहती है। इसके लिए चितन भी करती है। वही प्रयास उसे परामर्श सस्था तक खीच लाता है। वह देखती है कि किस प्रकार लोग गलत धंधे में आ जाते हैं। उम्र ढलने पर माया बोस लोगों के लिए ग्राहक ढूंढने का काम करती है। वह शराब पीती है। उन्हें एक वकील प्रेमी ने शराब चखाकर उसे इसका आदि बना दिया। माया बोस के माध्यम से अलका सरावगी ने जिंदगी के लिए जूझती हुई नारी को चित्रित किया है। वह अपनी समस्या को रखते हुए यह बताने का प्रयास करती है। दुनिया की नजर में सब ठीक होते हैं पर औरतें ही गलत क्यों हो जाती है। वह अपना पेट पालने के लिए व जिंदा रहने के लिए आखिर कर भी क्या सकती है।

शशांक की माँ 'मिसेज चौधरी'

सच कहा जाए तो 'कोई बात नहीं' उपन्यास में मुख्य किरदार के रूप में शशांक की माँ आती हैं। शशांक तो शारीरिक रूप से अक्षम बालक है उसको सक्षम बनाने के लिए जो प्रयास किया जाता है, वह प्रयास उसके माँ के द्वारा ही किया जाता है। पूरे उपन्यास में शशांक की माँ का सशक्त चित्रण हुआ है। यह पेशे से वकील है और अपने बच्चे के लिए जो मनोवैज्ञानिक स्तर पर जागरूकता के साथ उसके विकास में मदद करती हैं, वह काबिले तारीफ है। वह कई प्रकार से शशांक को सामन्य बनाने की कोशिश करती है।

जहाँ तक शशांक की माँ के चरित्र चित्रण का सवाल है तो वह सच्चाई का साथ देने वाली हैं। वह ऐसे कानून की लड़ाई नहीं लड़ना चाहती जिसमें की झूठ का सहारा लेना पड़े। अपने बच्चे की अपंगता से आजीव न जूझती रहती है लेकिन सच्चाई के साथ आगे बढ़ती है। शशांक

की माँ का जुझारू व्यक्तित्व उनके अंदर अदम्य धीरज और हिम्मत भरता है। वह प्रकृति की इस मार को अपने जुझारूपन से सुगम और आसान बनाने के लिए हमेशा तत्पर रहती है।

आत्मविश्वास से भरी नारी के रूप में उसके माँ यानी मिसेस चौधरी का चित्रण हुआ है। हालाँकि, आगे चलकर वह चिरचिरी भी हो जाती है। अपनी जिंदगी की सारी कमाई डॉक्टर के पास खोकर वह चिरचिरी हो जाती है, जिसकी वजह से वह डॉक्टर के यहां से शशांक को वापस ले आती है।

कुशल वक्ता के रूप में मिसेस चौधरी का चरित्र अलका जी ने प्रस्तुत किया है। उस वक्तृत्व कला का नमूना उस वक्त मिलता है, जब विद्यालय के एसंबली में जाकर शशांक के पक्ष में बातें रखती है और लोगों के दिल में शशांक के प्रति सकारात्मक भाव पैदा करवाने में सफल होती है। यही नहीं प्रशांत की परीक्षा पास नहीं होने की स्थिति में भी अपने वक्तृत्व कला का उदाहरण देते हुए विवेकपूर्ण पंक्ति के माध्यम से स्कूल के प्राचार्य को अपने हिसाब से मोड़ने में सफल होती हैं। उनके द्वारा कहा गया वाक्य "ईश्वर ने तो उसे एक बार फेल कर ही दिया है अब आप भी फेल कर देंगे तो वह संभल नहीं सकेगा।"[13]

शशांक की माँ ने जतीन दा से मिलकर कई प्रकार से मानसिक स्तर से शशांक के मन को मजबूत करने के लिए जो प्रयास किया है, वह शशांक की माँ की गंभीर और विवेकशील नारी होने का परिचय देती है।

अपनी बेटी अदिति के पैदा होने के बाद वह वकालत की पढ़ाई शुरू करती है और टॉप नंबर से सबसे बड़ी लॉ फर्म में वह मुख्य वकील के रूप में कार्य करती है। एक सफल नारी के रूप में वह जहां सबके सामने उपस्थित होती है। वहीं परंपराओं, बाह्य आडंबरों, पोंगा-पंथी आदि का विरोध करने वाली नारी के रूप में भी मिसेस चौधरी को देखा गया। हालोंकि यह शशांक के ठीक होने के लिए इन सब चीजों से समझौता कर पूजा-पाठ भी करती हैं जो परिस्थिति के हिसाब से अपने विचार में बदलाव करने का संकेत है।

''औरत की जिन्दगी भी क्या सचमुच। बीस साल बाद भी वह पराए घर की ही रहती है। यहाँ तक कि अपने बच्चों की नजर में भी। माँ की दुखती रग पर उसने हाथ रख दिया है, शशांक ने समझ लिया। 'नो माँ! बिल्कुल नहीं! ऐसी बात नहीं है। बात सिर्फ इतनी है कि मैं और मेरे ख्याल से पापा भी, तुम्हें दुनिया से अलग मानते हैं। इसलिए तुम जब किसी भी आम औरत की तरह पुराने विचारों के लिए अपनी सास की बुराई करती हो, तो हम लोग सह नहीं पाते, तुम्हें 'पेडेस्टल' से उतारना पड़ता है, हमें।"[14]

परिस्थिति को झेलने की अदम्य साहस, विवेकपूर्ण व्यक्तित्व, अंत तक संघर्ष करने वाली नारी, घर की समस्याओं के साथ-साथ बाहर की समस्याओं को भी समाधान की ओर ले जाने वाली नारी विशिष्ट दृष्टिकोण युक्त, स्पष्ट वक्ता आदि गुणों के साथ शशांक की माँ यानी मिसेज चौधरी इस उपन्यास में स्त्री पात्र में सबसे महत्त्वपूर्ण पात्र हैं और अलका सरावगी ने इसके चित्रण में कोई कमी नहीं रख छोड़ी है।

शशांक की दादी 'सीता'

'कोई बात नहीं' उपन्यास में शशांक की दादी सीता का चरित्र चित्रण जिस प्रकार हुआ है उससे ऐसा लगता है कि वह पुरानी पीढो की नारी का प्रतिनिधित्व कर रही होती हैं। अद्‌भुत स्मरण शक्ति के साथ वह पुरानी कहानी शशांक को सुनाती रहती है। आजीवन सुख से दूर रहने वाली नारी के रूप में दादी का चित्रण हुआ है और उनका मानना है कि दुख से बड़ा कोई गुरु नहीं होता।

धार्मिक स्वभाव की नारी के रूप में भी दादी का चित्रण हुआ है। शशांक के अच्छे स्वास्थ, परीक्षा में अच्छे मार्कस दिलाने के लिए वह अक्सर पूजा-पाठ करती हैं। किस्सागो स्वभाव दादी का गुण माना जाता है जो कि यहाँ देखने को मिलता है। दादी शशांक को किस्से सुनाती रहती हैं। वह शाम को कई प्रकार की धार्मिक लोक कथाएं, पूजा-पाठ, व्रत-त्योहार से संबंधित अनेकों कथाएं सुनाती रहती है।'पर एक बात तो कहनी पड़ेगी', दादी कहती है, 'मेरी सास ने खाने-पहनने में किसी तरह का भेदभाव नहीं बरता। यह नहीं कि मेरे बच्चे एक कटोरी आमरस पीकर रहे हों और उनके बच्चे दो कटोरी आमरस पीते हों। लेकिन मेरे पीहर में खाने-पीने में बड़ा फरक किया जाता था।' कहते-कहते दादी कुछ सोचने लगती है। शायद बचपन के और भी भेदभाव किए जाने के किस्से बचे हुए हैं जो कभी और सुनाए जाएँगे।"[15]

सामान्य सास से अलग प्रवृति का चित्रण। शशांक की माँ अगर आज इस मुकाम पर पहुंची है तो दादी की ही बदौलत। दादी अपनी बहू पर गर्व करती है, वह उसकी खुशी को अपनी खुशी समझती है। समझदार सास एवं परिश्रमी नारी के रूप में, दयालु नारी के रूप में अपने परिवार में शांति बनाए रखने में शशांक की दादी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

आरती मौसी

'कोई बात नहीं' उपन्यास में शशांक के व्यक्तित्व को निखारने में आरती मौसी ने भी काफी सहयोग किया है। अलका सरावगी ने एक कहानीकार के रूप में उनका चित्रण किया है।

वह शशांक के बहुत सारे प्रश्नों का भी जवाब देती है। आरती मौसी शशांक के जीवन पर आधारित कहानी लिख रही होती है जो यह तब लिखना छोड़ देती है जब शशांक की अचानक बहुत ज्यादा तबीयत खराब हो जाती है।

आरती मौसी सहयोगी प्रवृत्ति और संवेदनशील है। इसी कारण वह शशांक की माँ का पूरा सहयोग करती है। आरती मौसी एक विधवा के रूप में चित्रित है जिनके पति का निधन विवाह के कुछ ही समय बाद हो जाता है। उनका पूरा जीवन बहुत ही दुख में बीता जिसे वे लेखन एवं शिक्षण के प्रति समर्पित कर देती है। कॉलम राइटर के रूप में भी आरती मौसी का चित्रण हुआ है, जो समस्याओं पर आधारित कॉलम सवाल आपके जवाब हमारे लिखती है। कुल मिलाकर ऐसा कहा जा सकता है कि आरती मौसी के किरदार का चित्रण इस प्रकार हुआ है कि उनकी उपस्थिति से उपन्यास में काफी रोमांचक मोड़ आया है।

शशांक की चाची

'कोई बात नहीं' उपन्यास में शशांक की चाची हंसमुख स्वभाव की नारी। परिवार में खुशियां बिखेरने के लिए हरसंभव प्रयास करने वाली, बच्चों को अधिक प्यार करने वाली, कर्तव्यपरायण, अभिनय में माहिर, कमठ नारी के रूप में चाची का चित्रण हुआ है। चाची के अच्छे व सहयोगी स्वभाव का होने के कारण ही शशांक की माँ पढ़ पाई हैं। शशांक की चाची इतनी अच्छी है कि अदिति अपनी माँ से ज्यादा चाची के पास ही रहना पसंद है।

चाची की याद्दाश्त बहुत अच्छी है। वह किसी भी बात को तत्क्षण याद कर सकती है। बहुत सारे फोन नंबर, फिल्म के डायलॉग, शिक्षकों के नाम, किसी प्रश्न का उत्तर, खानदान के लोगों का नाम तथा उनके बातचीत करने का अंदाज आदि हुबहू याद रखने की क्षमता रखती है। मिलनसार स्वभाव की नारी के रूप में अलका सरावगी ने शशांक की चाची का चित्रण किया है। घर की अच्छी बहू, अच्छी देवरानी के साथ ही अच्छी नारी के रूप में अलका सरावगी ने प्रस्तुत किया है।

शीरी

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में शीरी का चरित्र अलका सरावगी ने एक समर्पित प्रेमिका के रूप में किया है, जो गुरुचरण के प्रेम में अपने पति से दूर अलग हटकर एक घर में रहती है। वह गुरुचरण के लिए त्यागकर अकेले जीवन व्यतीत कर रही है, जहां गुरुचरण कभी-कभी आता है। शीरी एक विद्रोही चरित्र के रूप में भी सामने आता है। वह अपने पति से विद्रोह कर अलग

हो जाती है। प्रेम के लिए ऐसा कम देखा जाता है लेकिन शीरी के चरित्र की विशेषता है कि वह अपने प्रेम के लिए घर, पति आदि सबको त्याग देती है।

निर्मला

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में कम तामझाम में सीधी-सादी जिंदगी जीने वाली निर्मला गुरुचरण की प्रेमिका भी के रूप में चित्रित हुई है, जो उसके बुलाने पर कहीं भी चली आती है। शादीशुदा नारी होने के बावजूद वह गुरुचरण के प्रति समर्पित है। कविता की प्रेमी निर्मला उसके लिए कुछ कविता की पंक्ति लिखती है। इसका अर्थ समझ कर उसे अपने साथ रखती है और कविता के मर्म को समझ कर गुरुचरण से बहुत प्रेम करती है। इस बात का जिक्र उपन्यास में तब हुआ जब भट्ट और निर्मला की बातचीत होती है।

निर्मला कविता प्रेमी है। उनके लिए गुरुचरण ने कुछ पंक्तियाँ लिखी हैं। उसे वह अपने पास रखती है। इससे साबित होता है कि वह कविता प्रेमी है। उसके बारे में विवरण है "भट्ट अवाक् खड़ा था। आरत (निर्मला) की आवाज की अलौलिक मिठास में लज्जा, अभिमान, और हर्ष का मिला-जुला संपुट था। भट्ट समझ गया। गुरु की कविता मामुली तुकबंदी थी या ध्वनियों का सुंदर संयोजन, पर कविता जो कहती थी, उसपर यह औरत सारा जीवन काट सकती थी।

निर्मला स्वच्छंद जीवन प्रिय है वह गुरुचरण के साथ घूमने जाने में कभी नहीं हिचकती, उसके बुलाए जाने पर कहीं चली आती है। इस प्रकार एक स्वतंत्र और स्वच्छंद जीवन जीनेवाली एक नारी के रूप में र्निला का चित्रण हुआ है।

राजेश्वरी

राजेश्वरी का सीधा परिचय 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में उपलब्ध नहीं है, मगर महत्त्वपूर्ण स्त्री पात्र के रूप में उपन्यास में उपस्थित रही हैं। गुरुचरण की प्रेमिका के रूप में इस पात्र को देखा जा सकता है। बहुत ज्यादा शौकीन स्त्री, कुत्ता पालने का शौकीन स्त्री आदि के रूप में राजेश्वरी को देखा जा सकता है। रूपवती एवं पुरुषों को आकर्षित करने की कला में निपुण।

रुक्मिणी

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में रूक्मिणी एक ऐसी पात्र है, जिसने उपन्यास को विशिष्टता प्रदान की। रूपवती नारी के रूप रुक्मिणी का जिक्र हुआ है। रुक्मिणी शादी-सुदा होकर भी अपने प्रेमी से मिलती-जुलती है। अपने पति को न जाने वह किस प्रकार समझाने में सफल रही

है कि पति भी उसके प्रेम में पवित्रता देखता है। आकर्षक व्यक्तित्व की नारी व अधिक मुखर साथ ही साथ जिन्दगी को मजे में जीनेवाली नारी के रूप रुक्मिणी का परिचय मिलता है

के. वी. की पत्नी

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में एक सामान्य नारी के रूप में के.वी. की पत्नी का जिक्र हुआ है। वह प्रतिभावान हैं। उनके द्वारा कई ऐसे पहलू पर विचार करता पाया गया है जहाँ के.वी. सोच भी नहीं सका था। के.वी. जब गुरुचरण की डायरी को सुलझाने की कोशिश कर रहा होता है तब के. वी. को समझने में मदद करती है। ऐसे ही जिक्र में यह बताया गया है कि के. वी. पत्नी की जासूसी करने की क्षमता पर दंग रह गए। विचारशील नारी के रूप में भी उनकी पत्नी का जिक्र हुआ है। वह गुस्सा भी करती है इस बात का उपन्यास में जिक्र आता है। जब पत्नी रण-चंडिका, दूर्गा स्वरूपा बनती है, वे चुप हो जाते हैं। वैसे भी के.वी. की पत्नी पढ़ी-लिखी व समझदार नारी है वह जानती है कब किस रूप में आना है। "पत्नी की बेड-टी और के.वी. की मार्निंग-टी एक साथ होती है। के.वी. का चेहरा निर्विकार रहता है। उनकी पत्नी को कोई अंदाजा नहीं होता कि के.वी. उनकी इन आदतों से उतना ही आज भी चिढ़ते हैं जितना पहले दिन चिढ़ते थे। उनकी पत्नी सोचती हैं कि के.वी. ने उनकी आदतों के साथ जीने की आदत डालली है जिस तरह उन्होंने के. वी. की तमाम गुत्थियों और ग्ररंथियों के साथ जीना सीख लिया है। कई बार वे के.वी. से पूछती हैं कि वे सरल क्यों नहीं हो सकते? के.वी. कभी इस प्रश्न को समझ नहीं पाते। ...के..वी. आधुनिकता के खुद सबसे बड़े मुरीद थे, पर हर चीज का यह घटियाकरण, जो यह मानकर चलता था कि संगीत, खेल, पुस्तकें सभी को फास्ट फ्रूड की तरह फास्ट और चटपटा होना चाहिए, उन्हें रास नहीं आता था।"[16]

भट्ट की पत्नी

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में अभिनय कला से निपुण, अच्छी बहू, कर्मठ पत्नी, व व्यवहार कुशल नारी के रूप में भट्ट की पत्नी का जिक्र हुआ है। यह चूँकि लगातार नये-नये शहर में अपना डेरा बनाते रहता है तो ऐसे में उसकी पत्नी को भी उसके साथ शहर-शहर घूमना पड़ता है। अलका जी ने दिखाया कि पत्नी का धर्म पालन करते हुए भी अपने ससुर की विश्वसनीय बनी रहती है।

दिल्ली प्रवास के दौरान उन्होंने अपने अभिनय कला का भी परिचय दिया। इससे उनके अभिनय के प्रति रुचि का चित्रण हुआ। हालाँकि जल्द ही दिल्ली को छोडकर वापस कलकत्ता आना पड़ा इसलिए अभिनय के क्षेत्र में कुछ अधिक नहीं कर पायी।

भट्ट की पत्नी ने बिल्कुल व्यावहारिक नारी का परिचय दिया। वहाँ अपने पति का जॉब ठीक-ठाक चलता रहे इसके लिए विवेकी देवराय की पत्नी से बढ़िया संबंध बनाए रखने के लिए भट्ट से भी उलझ जाती।

इसी प्रकार जब गुरुचरण के निधन की खबर सुनकर भट्ट फूलों की घाटी में जाने वाला होता है तो अपने विचारों से उसे समझाने की कोशिश करती है- "मैं कह रही थी कि अभी तुम्हारी जाने से बहुत नुकसान होगा। देखा मैंने तो तुम्हें कभी नहीं रोका। पर अब तो वह रहा ही नहीं। उसे बिना जलाए थोड़े ही रखेंगे। तुम्हें वहाँ पहाड़ पर पहुँचने में वक्त लगेगा। तुम वहाँ जाकर करोगे क्या? सोच लो।"[17] इस प्रकार भट्ट की पत्नी एक विचारवान, समझदार, अभिनेत्री, बहू, अच्छी पत्नी आदि कई चरित्रों को अपने में समेटी हुई हैं।

दीपा

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में जयगोविन्द की पत्नी दीपा एक इंजीनियर है उसके बावजूद एक अच्छी बहू और धर्मपत्नी के रूप में उनकी छवि चित्रित है। अलकाजी ने दीपा के माध्यम से कई बार नारी के सचेतन होने का प्रमाण दिया है। अपने पति के फैसले के साथ अपना कदम बढ़ाने वाली दीपा का चरित्र एक आदर्श धर्मपत्नी के रूप में सामने आया है। पति के हर सुख-दुख में साथ रहने के बावजूद अपनी तर्कशीलता, बुद्धिमत्ता को साथ लेकर चलने वाली नारी के रूप में भी दीपा को देख सकते हैं।

जयगोविन्द मिटू चौधरी जैसे आदमी के साथ होता है और जब दीपा को पता चल जाता है कि मिटू चौधरी सही आदमी नहीं है तो फिर वह उसे अलग रहने की साफ हिदायत देती है। इस तरह, सही वक्त पर सही फैसला लेने में सक्षम नारों के रूप में दीपा का परिचय मिलता है।"दुनिया तुम्हें जयदीप से कुछ और बना दे, यह दुनिया की ताकत नहीं। यह तुम्हारी गलती है। मैं सब कुछ सह सकती हूँ, पर तुम कुछ और बन जाओ, यह नहीं सह सकती। यदि तुम्हें जानकीदास तेजपाल मैनशन में ही रहना है या अपने हक की लड़ाई जारी रखनी है, तो मैं तुम्हारे साथ हूँ। हम हर मुसीबत झेलेंगे। देखेगें कि वे हमें कितना डरा सकते हैं। पर तुम मिंटू चौधरी जैसे लोगों के फन्दे में फँसकर कुछ और बन जाओ, यह मैं नहीं सह सकती।"[18]

जुझारू स्त्री के रूप में दीपा का परिचय तब मिलता है। जब जानकीदास तेजपाल मैनशन में सब के छोड़कर चले जाने के बावजूद अपने पति के साथ वह उस मकान में रहती है। ऊपर के मकान में तोड़-फोड़ की आवाज होती है जो बहुत ही डरावना होती है तब भी अपने पति के की माँ साथ समस्या से जूझना दीपा के जुझारू व्यक्तित्व का परिचायक है।

जयगोविन्द की माँ

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में जयगोविन्द की माँ अर्थात एडवोकेट बाबू की पत्नी से है। इस उपन्यास में इनका चरित्र एडवोकेट बाबू के समानांतर देखा जा सकता है। एडवोकेट बाबू के फरमान को प्रयोग में लान का काम जयगोविन्द की माँ का ही था। जबकि उनके फरमान को टालने का काम भी इन्हीं से होता। अच्छी माँ के साथ-साथ अच्छी अभिभावक के रूप में भी जयगोविन्द की माँ का चित्रण हुआ है। पुत्र से अतिशय प्रेम रखने वाली नारी के रूप में भी इनका परिचय मिलता है। जयगोविन्द जब अमेरिका पढ़ने के लिए जाना चाहता है तब वह ना करती हैं। उन्हें लगता है कि जो एक बार विदेश गया फिर वापस नहीं आता, वहीं का होकर रह जाता है। इस प्रकार अपने पुत्र को अपनी नजर से दूर नहीं रखना चाहती। अच्छी सास के रूप में भी जयगोविन्द की माँ का चित्रण हुआ है। दीपा जैसी बहू पाकर वह बहुत प्रसन्न है। एक इंजीनियर बहू को पाकर वह गर्व से कहती हैं कि मेरी बहू इंजीनियर है। इसप्रकार एक अच्छी धर्मपत्नी, अच्छी माँ, अच्छी सास और समझदार नारी के रूप में चित्रित है।

मिशेल

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में गोरे-गोरे चेहरे व भूरे बाल वाली लड़की मिशेल अमेरिका में जयगोविन्द की दोस्त। एक अच्छी स्टूडेंट एवं न्याय के हम में जूझने वाली लडकी। जयगोविन्द जब अमेरिका में रह रहा होता है तो वह देखता है मिशेल अपने ही नहीं सबके हक के लिए आवाज उठाती है। मिशिगन युनिवर्सिटी में चाहे वह काले-गोरे के नस्लभेद या प्रोफेसर क विरुद्ध आवाज उठाने की बात हो तो वह भी पीछे नहीं होती।

अलका जी ने मिशेल को जयगोविन्द की प्रेमिका के रूप में भी चित्रित किया है। बीच-बीच में जयगोविन्द को उसकी याद आ भी जाती है उसे फेसबुक या अन्य माध्यम से खोजने की कोशिश भी करता है मगर फिर उसका काई जिक्र नहीं मिलता।

गाथा

गाथा 'एक सच्ची-झूठी गाथा' उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्र है, जिसकी विचारधारा समझौतावादी या यथास्थितिवादी है। एक लेखिका होने के नाते यह उसका लेखन दायित्व भी था कि वह भटके लोगों को जीवन के उच्च सिद्धांतों व मूल्यों की बात समझाकर सही रास्ते पर ला सके। अपने इन्हीं तर्कों के माध्यम से वह प्रमित जैसे दिशाहीन युवा को सही दिशा में लाने की तमाम कोशिश करती है। बिना कभी उसे देखे व उसके विषय में पूरा जाने उसकी पीड़ा और

मनोदशा को अच्छे से समझकर उसकी मदद करने हेतु वह अकेले बिना किसी को बताए उससे मिलने बागडोगरा एयरपोर्ट चली जाती है। जबकि एक स्त्री के लिए ऐसा कदम उठाना खतरनाक भी साबित हो सकता था। उसके हृदय में पूर्ण समर्पण के भाव दिखते हैं जिसमें वह अपनी परवाह तक नहीं करती। इतना करने पर भी वह प्रमित से मिल नहीं पाती परन्तु तब भी वह अपनी तर्कशील बुद्धि से प्रमित के वीभत्स यथार्थ के अनुभवों द्वारा गठित मानसिकता को अपने विवेक से सही दिशा में लाने का प्रयास करती है। प्रमित के लिए उसे शंका भी होती है कि कहीं वह आतंकवादी या नक्सल तो नहीं, तब भी वह प्रमित के दर्द को भली-भाँति समझते हुए उसके प्रति सहानुभूति रखती है और एक माँ के समान उसे समझाने की कोशिश करती है। यहाँ गाथा का मानवतावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है जो पग-पग पर उसे हिंसा का रास्ता छोड़ देने की अपील करती है। किसी हिंसा का जवाब हिंसा से देना कभी सही नहीं होता इसलिए वह प्रमित को हमेशा समझाती है कि बन्दूकों से दुनिया नहीं बदली जा सकती है। उसका मानना है कि यदि व्यवस्था में भ्रष्टाचार और अन्याय है तो उससे निपटने के अन्य रास्ते भी हैं। केवल हिंसा से ही उसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता। इस तरह हिंसा करने पर सभी एक-दूसरे से आपस में लड़ते ही रहेंगे और समाज में अशांति बढ़ती रहेगी।

गाथा उस संवेदनशील जनता का प्रतिनिधित्व करती है जो कैसी भी परिस्थितियों के बावजूद देश की न्याय व्यवस्था के प्रति अपनी उम्मीद बाँधे रखते हैं। हालांकि गाथा के व्यवहार में भावुकता का अभाव है क्योंकि उसके पिता को रोनेवाली औरतों से बहुत चिढ़ थी इसलिए उसे भी न रोने की आदत हो गई। शांति और प्रेम के गाँधीवादी विचारधारा को लेकर चलती हुई गाथा, सबका साथ और सबका विकास चाहती है।"भरोसा है, तो औकात है। अपनी भी। दूसरों की भी। गाथा पर उसके घरवाले-पति और पिछली-अगली पीढ़ियां-भरोसा करते हैं। इसलिए वह कहीं भी अकेली निकल सकती है। यही भरोसा उसे दूसरों पर करना पड़ता है, नहीं तो पृथ्वी पर रहते हुए भी उसके लिए उनका कोई वजूद नहीं होता। होता भी है, तो चौरासी लाख यौनियों में रहनेवाले जीव-जन्तु-कीट-पतंगों की तरह। यानी कि बेबस हैं। पर थोड़ा-बहुत भरोसा करते ही वे उसकी अपनी दुनिया के हिस्से बन जाते हैं।"[19]

वह प्रमित को एक नए सिरे से जीवन जीने हेतु नया दृष्टिकोण देना चाहती है। वह कहती है कि जीवन में खुद को जन्म देना पड़ता है, खड़ा करना पड़ता है, अपनी पहचान बनानी पड़ती है। गाथा एक लेखिका है और जब वह लिखती है तो उसके मन में उन लोगों के प्रति बड़ा विस्मय होता है जो पढ़े-लिखे होकर भी कुछ विपरीत मानसिकता का शिकार हो जाते हैं और हिंसा करने

पर उतारू हो जाते हैं। आखिरकार एक गंभीर चिन्तक के रूप में प्रमित जैसे लोगों की पीड़ा को गहराई से समझकर यह पाती है कि गरीबी इस समस्या के जड़ में है। वह हमेशा यह चिन्ता करती रहती है कि दुनिया में इतनी गरीबी और भूखमरी क्यों है? क्यों बिना इलाज के आदमी को मरना पड़ता है। गाथा के दुनिया को देखने के नजरिए को प्रमित ने उलट-पुलट कर रख दिया था। कहीं-न-कहीं प्रमित की बातें और उसके तर्क गाथा को प्रभावित करते हैं और गाथा उसे सही भी मानती है परन्तु वह किसी भी प्रकार की हिंसा का साथ नहीं दे सकती। उसे प्रमित की परिस्थितियों को जानकर अपार कष्ट व अपराधबोध होता है। गाथा कहती है- ''जब पता चलता है कि हम एक पूरी तरह अलग दुनिया से आए ऐसे शख्स से रूबरू हैं, जिसने वैसी भूख, प्यास और नींद की तड़प जानी है, जो हमने कभी नहीं जानी है, तो हमारे अन्दर कुछ टूट जाता है। हमारे अन्दर एक ऐसा अपराधबोध होता है, जो दिन-रात हमारी आत्मा को कुतर-कुतर कर खाता होता है।''[20]

दीप शिखा

'एक सच्ची-झूठी गाथा' उपन्यास में प्रमित सान्याल की होने वाली पत्नी के रूप में दीप शिखा का परिचय मिलता है। दीप शिखा रिसर्च की छात्रा है। उसी रिसर्च के क्रम में प्रमित से उनकी दोस्ती होती है। वह बोरखेज पर एक थीसिस लिख रही है। प्रमित सान्याल के बताये अनुसार ही वह उससे शादी करने को तैयार होती है, हालाँकि यह शादी नहीं हो पाती है। दीप शिखा के तर्कशील पात्र होने का परिचय उपन्यास में देखने को मिलता है।

सीता माँ (गाथा की सास)

'एक सच्ची-झूठी गाथा' उपन्यास में सीता माँ गाथा की सास हैं। वह बहुत ही सुलझी और समझदार नारी के रूप में उपन्यास में चित्रित हुई हैं। गाथा जैसी बहु पाकर बहुत खुश हैं। इससे साबित होता है कि सीता माँ बहुत अच्छी सास हैं। बहुत ही अधिक भोलापन लिए सीता माँ उपन्यास में एक महत्त्वपूर्ण नारी पात्र है। गाथा बताती हैं इसी सीता माँ ने गाथा का पहली बार विदेश से लेखकों के सम्मेलन में आमंत्रण आने पर सबसे ज्यादा खुशी जताई। जब सीता माँ के पति गाथा को विदेश जाने से मना करते हैं तो इसी क्रम में सीता माँ अपने पति से कहती हैं क्यों? उसे काई पार कराएगा, तो जाएगी क्या? अब क्या वही जमाना रह गया है? औरत को खराब होना हो, तो वह घर में भी हो सकती हैं कोई डर नहीं मुझे। निश्चय ही इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि पारंपरिक सास की छवि से बाहर की छवि है सीता माँ की।

गाथा की माँ

'एक सच्ची-झूठी गाथा' उपन्यास में गाथा की माँ एक सामान्य गृहणी है। गाथा को अधिक पढ़ते देखकर उसे मना करती है कि कहीं उसकी आँखें न प्रभावित हो जाएं।

गाथा की दादी

'एक सच्ची-झूठी गाथा' उपन्यास में गाथा की दादी जागरुक प्रवृति की औरत है। अपनी पोती यानी गाथा को पढ़ने के लिए प्रेरित करती है। उनका कहना था कि खाने बनाने तो सब सीख जाते हैं उसे कुछ अच्छा करना है।

गाथा की चचेरी बहन

'एक सच्ची-झूठी गाथा' उपन्यास में गाथा की वह चचेरी बहन जिसने बीस साल की उम्र में जहर खाकर आत्महत्या कर ली थी का चित्रण है। वह भी सिर्फ इसलिए कि उसकी दादी उसे कहती है कि वह एक्स्ट्रा पैदा हो गई है। इससे पहले तो एक बड़ा भाई और एक बड़ी बहन थी ही। सीता माँ की जैनी सहेली नियम की पक्की सीता माँ की एक ऐसी जैनी सहेली जो कभी जमीकन्द नहीं खायी थी। जमीकन्द यानी धरती के भीतर उपजनेवाली सब्जियों, यथा- आलू, गाजर, प्याज अदरक आदि। इस प्रकार एक सामान्य नारी के रूप में इनका परिचय मिला है।

4.2 पुरूष पात्र

4.2.1 कहानियों में व्यक्त पुरूष पात्र

जगन्नाथ बाबू

जगन्नाथ बाबू 'पाटर्नर' कहानी के मुख्य किरदार है। जगन्नाथ बाबू का अपने दफ्तर के पास एक वृक्ष से अत्यधिक लगाव हो जाता है। वह अपने दफ्तर की खिड़की से उस वृक्ष पर बैठने वाली काली, पीली, नीली चिड़ियों को देखा करते हैं। जगन्नाथ बाबू के कुछ दिन दफ्तर न जाने के उपरांत जब वह पुनः दफ्तर पहुँचते हैं तो पेड़ कट चुका होता है। ''जगन्नाथ बाबू के मन में इस पेड़ की मौत ने एक ऐसा सवाल खड़ा कर दिया, जिसका उत्तर शायद किसी के पास कभी नहीं होगा-क्या वह पेड़ भी उनसे प्रेम करता था और उनके वियोग में देह त्याग का संकल्प करके उसने तीन दिनो में ही अपने को कटवा दिया?''[21] जगन्नाथ बाबू ने पेड़ के प्रेम से आहत होने पर उसकी मौत के शोक में उसका श्राद्ध किया।

सच्चिदानन्द सिंह

सच्चिदानन्द सिंह 'कब्ज हर' कहानी के मुख्य किरदार है। सच्चिदानन्द सिंह अपने मानसिक विकार को नाक से गोली निकालने की क्रिया द्वारा उजागर करते हैं। कब्ज से परेशान सचिच्दानन्द सिंह निरन्तर कब्ज की दवाओं की खोज किया करते हैं। 'यह भी सही है वह भी सही है' कहानी एक बीमार पिता की कहानी है। ''उस रात दफ्तर के बाद पच्चीस साल में पहली बार सेब, गाजर, आलू और खीरे के छिलकों को खाये बिना सचिच्दानन्द जी का पेट बहुत आसानी और आनन्द से मिनटो में पूरी तरह साफ हो गया-और यह जिन्दगी का एक करिश्मा नहीं और तो क्या है? अंत में कल रात अनिल के पिता की मृत्यु हो ही गई। अंत में इसलिए कहना पड़ा क्योंकि पिछले एक महीने से लगातार ऐसा लगता रहा था कि यह घटना आज, अभी, किसी भी वक्त होने वाली है और ऐसा होना बराबर टलता रहा था।''[22] अनिल के द्वारा अपने पिता का इलाज कराये जाने के उपरान्त भी उनकी मृत्यु हो जाती है। अनिल के पिता की मृत्यु हो जाने के पश्चात् लोगों द्वारा उनके इलाज पर हुए खर्चे का हिसाब-किताब किया जाता है। कुछ के द्वारा उसे संवेदना दी जाती है तो कुछ के द्वारा उसकी मूर्खता को प्रमाणित किया जाता है।

विष्णु शर्मा

विष्णु शर्मा 'न्यू ईयर्स ईव' कहानी के प्रमुख किरदार है। विष्णु शर्मा ने साहित्य की दीक्षा के लिए समुत्सुक शिष्य की ओर गौर से देखा। फिर कुछ देर तक सोच कर कहा-''आज मैं तुम्हें दो कथाएं सुनाऊँगा ताकि तुम उन तरंगो को समझ सको, जो हर बीते हुए आने वाले समयों में बुद्धि प्रवाह को भ्रमित करती रहती है नाम-पात्र-देशकाल बदल जाते हैं। मापदण्ड भी नहीं रहता। पर वे तरंगे सदा रहती हैं।''[23] गुरु शिष्य परम्परा को अपने में संजोये 'कलम तन्त्र की कथाएँ' कहानी के केन्द्र में दो कथाओं का वर्णन है जो कि विष्णु शर्मा अपने शिष्य को सुनाते हैं। कथाओं को सुनाने का उद्देश्य शिष्य को शिक्षा देना है। विष्णु शर्मा ने ये दो कथाएँ सुनाकर शिष्य से कहा अभी ये दो कथाएँ तुम्हारे लिए काफी हैं। तुम इन पर मनन करो। उसके बाद जरूरत होने पर मैं तुम्हें फिर दो कथाएँ सुनाऊँगा।

वर्मा जी

'पिस्सू और कलमघिस्सू' कहानी महानगरों में रहनेवाले लेखक और लेखिकाओं के जीवन की सच्चाई को उजागर करनेवाली साधारण कहानी है। इसका मुख्य पात्र वर्मा जी हैं। वे एक जनसंपर्क अधिकारी (पी.आर.ओ) हैं जो साहित्यकारों के मीटिंग बुलाकर उसकी अध्यक्षता कर रहे हैं। वर्माजी इस कहानी में अपना अभिमान दिखाते हैं। क्योंकि वह आर्थिक रूप से

मजबूत है। साहित्यकार के प्रति लोगों के मन में सम्मान की भावना होनी चाहिए। इसकी ओर भी कहानीकार इस कहानी के माध्यम से सूचना देते हैं। इस कहानी में एक साहित्यकार के जीवन को यथातथ्य उभारते हैं और उनके जीवन के कटवी सच्चाई को हमारे समक्ष प्रस्तुत भी करते हैं।

सुमंत

'आक एगारसी' नामक कहानी का पात्र चौदह वर्षीय सुमंत या आक की कहानी है। सुमंत छोटी उम्र से ड्रग जैसे नशीले पदार्थ का सेवन करता था। वह स्वप्निल दुनिया में सैर करता है। उसकी स्वप्निल दुनिया वर्तमान की नहीं। वर्तमान से सौ साल आगे की है। हमारे जमाने में जो कुछ होता है वह उसके स्वप्निल दुनिया में नहीं था। इस कहानी के द्वारा संपूर्ण वर्तमान समाज की समस्याओं को चित्रित करने का प्रयास लेखिका ने किया।

प्रबोध कुमार

'न्यू ईयर्स ईव' नये वर्ष के आने और पुराने वर्ष की विदाई के उपलक्ष्य में रखी गई एक पार्टी की कहानी है। इसका मुख्य पात्र प्रबोध कुमार है। वह अपनी माँ, पत्नी और दो बच्चों के साथ कलकत्ता महानगर से दूर एक पुराने मकान में रहनेवाला था। वह अपने खानदान को हमेशा ऊँची बनाए रखने का प्रयत्न करता था। पर बाद में उसके व्यक्तित्व में बहुत परिवर्तन होता था। उसे भारतीय सभ्यता की अपेक्षा पश्चिमी सभ्यता अधिक महत्वपूर्ण बना। उत्तर-आधुनिकता की दौड़ में चलनेवाले समाज और मानव का चित्रण करना इस कहानी का मूल उद्देश्य है।

4.2.2 उपन्यासों में व्यक्त पुरूष पात्र

किशोर बाबू

किशोर 'कलि-कथा:वाया बाइपास' उपन्यास का मुख्य पात्र है। उसका चरित्र जमीन पर जीते हुए कब किशोर बाबू बनकर आसमान तक पहुँच जाता है, जिसमें जमीन की विस्मृति तक न थी, आसमान ही उसके लिए एकमात्र सत्य बन चुका था और फिर एक दिन अचानक से सिर पर लगे चोट ने उन्हें वापस उसी जमीन पर फेंक दिया, जहाँ उनका मूल वजूद था। किशोर बाबू इतिहास की स्मृतियों में भटक गए थे, जहाँ उनका बचपन, दोस्त, दादा-परदादा व पूर्वजों का इतिहास, परिवार की परिस्थिति और सबसे बड़ी बात कि आज से बिल्कुल अलग उनका एक चरित्र है। किशोर के चरित्र और उसकी मनःस्थिति में आए भीषण परिवर्तन का श्रेय उन तमाम वर्तमान परिस्थितियों को जाता है, जिसमें वह पला-बढ़ा था, साथ ही आजादी के पश्चात् उच्च

स्तरीय जीवनशैली की कल्पना में जीते हुए भारत की जनता। किशोर उस दौर का था जिसका बचपन आजादी की लड़ाई व घर की तंगहाल स्थिति के कारण विस्थापन को झेल रहा था। गरीबी से मुक्ति, अमीर बनने की लालसा ने उसके अन्तर्मन को इतना प्रभावित किया था कि सम्पन्न हो जाने के बाद उसका संवेदनशील मन मर गया था। पुरुषसत्तात्मक समाज में पुरुष के साये और अनुशासन के अभाव में घर की स्त्रियों के बीच रहते हुए उसकी प्रवत्ति तानाशाही बन गयी थी। वह किशोर से किशोर बाबू बन गया था, जिसके जेहन में केवल रईसी, दिखावा, गरीबों को हीन दृष्टि से देखना, अपने से कम पैसेवालें लोगों व रिश्तेदारों से बात तक न करना जैसी भावना ने घर कर लिया था। देखा जाए तो किशोर उन अधूरे सपनों को जी रहा था जिन्हें बचपन से वह जीना चाहता था। जैसा कि उसने हमेशा देसी बाबुओं की सफेद अरबी घोड़े की बघ्घी को किसी राजबरड़ी से निकलकर विक्टोरिया मैदान की ओर जाते देखा था, कहीं-न-कहीं वैसी ही अमीर लोगों की मनोदृष्टि और जीवनशैली को जीने की उसकी असीम चाहत थी। इसी से प्रभावित होकर वैसा ही ढंग उसने अपने जीवन में ढ़ाल लिया था। इक्कीस साल तक बड़ाबाजार में रहकर अपने संघर्ष भरे पिछले जीवन के सारे अभावग्रस्त दिनों को उसने ऐसा बाइपास कर दिया था जैसा कि यह उसके जीवन का हिस्सा कभी रहा ही न हो। उसके अन्दर हमेशा से उस बीते जीवन के इतिहास को मिटाने की प्रबल चेष्टा देखी गई है जिससे कि उसे कुछ हानि हो सकती है, या उसके परिवार का नाम खराब हो सकता है। वह अपने परिवार से टैगर्ट के नाम को भी मिटाने हेतु मां को कहता है क्योंकि वह बड़ा खूंखार था और उसके दादाजी के साथ उसके अच्छे संबंध थे। हर चीज को पैसों से एक नई शक्ल दे देने जैसे उनके जीवन का अहम काम बन गया था।

जिस बीते इतिहास को वह अपने विचारों तक से मिटाकर आगे बढ़ गया था, सिर की चोट ने उसे पुनः उन्हीं यादों व जीवन में लौटा दिया, जहाँ वे इस दिखावे की इस दुनिया का शिकार हुए व इज़ात किए किशोर बाबू से बिल्कुल भिन्न, आजादी के जोशीले विचारों से भरा, समाज के हक में खड़ा, भीड़ में मार खाया हुआ किशोर था। किशोर के चरित्र के विषय में अलका जी उपन्यास में स्पष्ट कर देती हैं कि किशोर बाबू की जिंदगी में तीन जिंदगियां जी गई हैं। देश की आजादी तक यानी बाइस साल की उम्र तक उनकी एक जिंदगी थी। उसके बाद उनकी दूसरी जिंदगी शुरू होती है- पूरे पचास साल की जिंदगी। उस दूसरी जिंदगी में पहली जिंदगी की कोई छाया तक नहीं थी। इसलिए किशोर बाबू उसे एक नए जन्म की तरह ही अब देख पाते हैं। यह भला कौन कह सकता है कि किशोर बाबू की जिंदगी के ये पचास साल भारतवर्ष के 'लोकतंत्र' के पचास सालों की तरह रहे हैं, जिनमें आजादी की लड़ाई के आदर्शों की खुरचन तक नहीं रही। इसी खोए अपने परिवार और जीवन के आदर्शों की तलाश हेतु वह उन रद्दी पड़े दादा-

परदादा की डायरियों को जड़े खजाने की तरह खंगाल रहा था। वह उसके लिए अनमोल खजाना हो गया था जिसे किशोर बाबू ने कब का गंगा में बहा देने की पूरी कोशिश की थी। किशोर बाबू के चरित्र का यह अद्‌भुत परिवर्तन उनके मन के उन तारों को खोल दिया था जो उनके जीवन का अस्तित्व था। उसका जीवन अतीत में खोए दिशाहारा और झटपटाता हुआ असहाय सा हो गया था। विश्वास और अविश्वास के बीच भटकता हुआ वह अपनी मुक्ति का मार्ग तलाश कर रहा था।

किशोर की तानाशाही प्रवृत्ति ने परिवार को हिटलर की तरह चलाया। पढ़ा-लिखा होने के बावजूद वह अपनी परम्परावादी सोच से खुद को मुक्त नहीं कर पाये थे। मारवाड़ी परम्परा का वहन करना और जीवन के कष्टों का दोषारोपण भाग्य पर करना उसके विचार में शामिल थे जिसने जवान विधवा भाभी की नियति पर सब डालकर उसके लिए कुछ नहीं किया। जिनके बिना किशोर कलकत्ते से एक भी दिन बाहर तक नहीं जाता, कभी हंसना भी चाहे तो उनके सामने हंसना उसे अपराध लगता, उसके ऐसे चरित्र का पतन देखा गया जब किशोर बाबू ने अपने मेहमानों के सामने उनका तिरस्कार किया, केवल इसलिए कि विधवा होकर भी उन्होंने रंगीन साड़ी पहन ली थी। प्रारम्भ में किशोर का गुजारा अपने मामा की दुकान पर बैठने से होता था। जिस दिन उसपर दुकान में चोरी का आरोप लगा, अपने परिवार के सात प्राणियों का बोझ लिए वे अकेले रोजी-रोटी हेतु निकल पड़े। बहुत मेहनत से उन्होंने दुनिया में अपनी जगह बनाई किन्तु स्वाभिमान को कभी गिरने नहीं दिया और वापस मामा की दुकान पर लौट कर नहीं गए। माँ, शांता भाभी, पत्नी और पाँच बेटियों को इज्जत, मान-मर्यादा के साथ चलाया कि किसी पर कोई दाग न लगने पाए। किसी भी प्रकार के पुरुषों के संसर्ग से उनको दूर रखा क्योंकि वे स्त्री और पुरुषों के बीच आग और घी का संबंध मानते थे। वहीं ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़कियाँ किशोर को मर्दानी-सी लगती हैं जिसमें कोमलता नहीं बचती। जमाने की हवा न लग जाए इसलिए उन्होंने अपनी पाँचों बेटियों का विवाह कम उम्र में ही कर दिया और सबसे छोटी लड़की की पढ़ाई छुड़वाकर उसका भी विवाह झटपट कर दिया तथा विवाह के पश्चात् उसे आगे पढ़ाई न करने की धमकी भी दी। स्वयं दूसरों की नफरत और शक का शिकार हुआ बचपन का किशोर आज स्वयं वैसा ही शिकारी बन गया था। उसने उन तमाम बातों को अपने जीवन से दरकिनार कर दिया था जिससे उन्हें कोई फायदा न था। वे आत्मकेद्रित बन गए थे। परन्तु इस चोट ने उन्हें इस बात का एहसास करा दिया कि जीवन-मूल्य क्या हैं? अब मानवता के विपरीत वाले जीवन के गंभीर सवाल उन्हें परेशान कर रहे थे जिनका वे समाधान ढूँढ़ने में लगे रहते। हर मामूली बात पर किशोर बाबू का मन अपार संवेदनाओं से भर उठता है। उन्हें एहसास होता है कि वास्तविक

जीवन तो वह था जब वह अपने दोस्त शांतनु और अमोलक के साथ आजादी पर होने वाली सभाओं में जाया करता था। उसके बाद तो उन्होंने केवल लाश ढ़ोई है अपनी और न जाने कितनों का दिल दुखाया है। यह समझने के बावजूद कि जीवन नश्वर है, समय प्रतिपल परिवर्तनशील है, यहाँ कुछ चिरस्थायी नहीं, नदी की धारा के समान अनवरत प्रवाहमान है, प्रतिष्ठित होने पर वह जीवन की वास्तविकता को भूल जाता है। अलका जी ने पाठक को किशोर बाबू के जीवन और भारतवर्ष के लोकतंत्र, दोनों में व्याप्त साम्यता को दर्शाया है।

उपन्यास में किशोर के चरित्र का एक न्यायवादी दृष्टिकोण भी सामने आता है कि वह अपनी एक बेटी का मुँह भी नहीं देखना चाहते थे उन्हें उससे बड़ी कोफ्त थी क्योंकि लड़का पैदा करने के चक्कर में उसने कई बार भ्रूण हत्या करवाई थी। वहीं उनके विचारों में आधुनिकता दिखलाई पड़ती है। परम्परा और रिवाज के नाम पर पर्दा करना, नाक में काँटा पहनना, घुँघरूदार पाजेब पहनना, मांग भरकर सिंदूर लगाना, बेल-बूटों या सलमा-सितारों वाली ओढ़नी से चिढ़ थी। अपने बीते दिनों के प्रति अफसोस का भाव लिए कशोर बाबू ने उन लोगों के प्रति आभार व्यक्त किया जिन्होंने उन्हें सिर पर ऐसी चोट दी जिससे वे जीवन की गहराई में जाकर उसे सम्पूर्ण रूप से जानने की कोशिश कर पाए और इस देश की तासीर के अनुरूप अब वे धर्म के रास्ते पर चल रहे हैं। कभी गीता का पठन-पाठन कर रहे हैं तो कभी चटाई बिछाकर नमाज पढ़ रहे, कभी सिर पर रूमाल बाँधकर 'वाहे गुरु, सतनाम' कर रहे तो कभी अपने को 'फादर किशोर' कह रहे और सबकुछ करके वापस गीता पर कुछ लिख रहे। किशोर बाबू के अन्दर का किशोर कभी मरा नहीं था, केवल अमीरी और दिखावे की चादर से ढँक दिया गया था। इस ढँके चादर के पर्दे के पीछे उसकी असली दुनिया थी, जिसमें उनके जीवन की सच्चाई, उनका अस्तित्व और वजूद था।

रामविलास बाबू

रामविलास बाबू 'कलि-कथा: वाया बाइपास' एक पात्र है। रामविलास बाबू किशोर बाबू के परदादा हैं। 'कलि-कथा:वाया बाइपास' में उनका चित्रांकन एक व्यवसाय कुशल परिश्रमी, बुद्धिमान, परिस्थिति प्रज्ञ, संवेदनशील एवं आस्तिक व्यक्ति के रूप में हआ है। हैमिल्टन साहब के साथ उनका गहरा संबंध रहा। रामविलास बाबू कोलकाता आकर अंग्रेजो के साथ रहकर काफी धन अर्जित किया लेकिन अपने परिवार, पत्नी और पुत्र के साथ सही सामंजस्य नहीं स्थापित कर सके। जिसकी वजह से अंत में उन्हें अंग्रेजों की प्रति काफी नफरत भी हुई। वे अपने इकलौते पुत्र केदार से प्यार तो बहुत करते थे परंतु अपने सिद्धांत की वजह से हमेशा उससे अलग रहे।

उन्होंने धन को अधिक तरजीह दिए, जिसकी वजह से परिवार पर अधिक ध्यान नहीं दिया। अंत तक उन्हें अपनी गलती का एहसास रहा। आस्तिक विचार के व्यक्ति रामविलास बाबू दान-पुण्य करने वाले व्यक्ति के रूप में भी चित्रित हुए हैं। उन्हें गंगा से अटूट प्रेम था। मेहनती एवं लगनशील व्यक्ति, धन उपार्जन तो कर लिया मगर पारिवारिक स्तर पर वह अपनी पत्नी और पुत्र को खुश नहीं रख सके। रामविलास बाबू ने अपने पिता का भिवानी में हवेली बनाने का सपना साकार किया और अंत-अंत में अपनी गलती सुधारने का भी प्रयास किया।

केदारनाथ बाबू

'कलि-कथा: वाया बाइपास' में केदारनाथ बाबू का भी चित्रण प्रस्तुत किया गया है। रामविलास बाबू का इकलौता पुत्र केदारनाथ बाबू, जो अपने माता-पिता के काफी प्रिय थे। उनके अंदर समाज सुधारक, देशभक्त, अध्ययनशील और अच्छे लेखक के रूप में जो व्यक्तित्व का विकास हुआ वह उनके चरित्र को विशेष बनाता है। अलका सरावगी ने केदारनाथ का चरित्र एक निडर देशभक्त के रूप में रखा है। देश के सामने अपने परिवार क्या अपने पिता को भी कुछ न समझने वाला चरित्र बनाया है। वे अध्ययनशील व्यक्ति थे, पत्र-पत्रिकाएं पढ़ते थे, साथ-ही-साथ लिखते भी थे। राजनीतिक, सामाजिक मुद्दों पर लेख लिख कर छपवाया करते थे। यही वजह थी कि उनके पिता रामविलास बाबू अंग्रेजों के विरुद्ध उनके लिखे लेख और कार्यशैली पर उनसे नाराज रहते थे। अंततः, असमय केदारनाथ बाबू की मृत्यु हो जाती है।

हैमिल्टन साहब

'कलि-कथा: वाया बाइपास' में हैमिल्टन साहब अंग्रेज जूनियर हैमिल्टन साहब सीनियर हैमिल्टन साहब के पुत्र थे। वह अंग्रेज पिता और हिंदू माँ की संतान थे। बाद चलकर अंग्रेजी माँ ने उन्हें बेमन से साथ रखा; क्योंकि उनकी कोई संतान नहीं थी। हैमिल्टन साहब जूट मील के मालिक थे। उनके अंदर अपनी पहली हिंदू माँ के संस्कार थे जिसकी वजह से वह माँ काली के भक्त रहे। वे गीता, उपनिषद् भी पढ़ते थे। उनके स्वभाव में कृतज्ञता थी। घमंडीलाल के बेटे रामविलास की उन्होंने काफी मदद की। रामविलास बाबू हैमिल्टन साहब की मदद से ही कोलकाता में अपना पाँव पसार पाए थे। हैमिल्टन साहब के जीवन में रामविलास बाबू का महत्व था तो रामविलास बाबू के जीवन में भी उनका काफी महत्व था। अच्छे सलाहकार के रूप में उनका चित्र सामने आता है। रामविलास बाबू को अपने बेटे केदार के लिए अच्छी सलाह देते हैं। उन पर जबरदस्ती करने से रोकते हैं जबकि वह अंग्रेजों के खिलाफ था फिर भी हमिल्टन साहब उनकी भलाई के लिए ही सलाह देते थे। एक बार रामविलास बाबू को समझाते हुए उन्होंने कहा

था "जो जीवन में छूट जाता है उसकी पीड़ा हरदम कांटे की तरह चुभती है। ऐसी गलती मत करना विलास। केदार तुम्हारा एक ही लड़का है। उसे कुछ हो गया तो तुम जी भी नहीं पाओगे।"[24] उपन्यास में पुरुष पात्रों में हैमिल्टन साहब का भी महत्त्वपूर्ण चरित्र के रूप में चित्रांकन हुआ है। मददगार, नेक दिल, सहयोगी, अर्द्ध अंग्रेज एवं सही सलाह देने वाले व्यक्ति के रूप में हैमिल्टन साहब का चित्रांकन हुआ है।

सत्यपाल जी लाइब्रेरीयन

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में पुरूष पात्रों में सत्यपाल का भी चित्रण है। ऐसे तो सत्यपाल जी का जिक्र बहुत ही कम समय के लिए मात्र एक छोटी सी घटना को उजागर करने के लिए हुआ है परन्तु, इस पुरुष चरित्र के माध्यम से किशोर बाबू के चरित्र को स्पष्ट करने की कोशिश हुई है। किशोर बाबू के मन में अपने पूर्वजों के बारे में नकारात्मक बातें आ रही थीं उसका निराकरण सत्यपाल जी से मिलने के बाद होता है। मनोविज्ञान की समझ रखने वाले एक सही लाइब्रेरियन, गंभीर व समझदार चरित्र के रूप में उनका चरित्र सामने आया है।

शांतनु

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में किशोर बाबू का दोस्त शांतनु, सुभाष चंद्र बोस का अनुसरण करने वाला शख्स है। वह बंगला से अच्छा हिंदी जानता है; क्योंकि वह हिंदी माध्यम स्कूल से किशोर बाबू के साथ पढ़ाई किया है। किशोर बाबू को मारवाड़ी अस्मिता के प्रति जागरूक करने में भी शांतनु का विशेष हाथ है। वह बार-बार मारवाड़ी समाज की बातें किशोर से कर उसके मन में बहुत सारी बातें भरता है। सुभाष चंद्र बोस के अनुयाई होने के कारण वह उनकी आलोचना नहीं सुन सकता। शांतनु को किशोर बाबू की माँ बहुत अच्छी लगती थी। स्वामी रामानंद जी से मिलकर उनके जीवन में इसप्रकार बदलाव आता है कि वह धनाढ्य व्यक्ति के रूप में राजसी ठाठ-बाट के साथ रहता हुआ दिखाया गया है, जिसके पुत्र डॉक्टर और एम बी ए की पढ़ाई करने के लिए विदेश में रहते हैं। वह स्वयं एन. जी. ओ. का संचालक है, फिर भी वह अपने मित्र को नहीं भूला। एक अच्छे मित्र के रुप में अंत में अपने मित्र से मिलने विक्टोरिया मेमोरियल के पास आता है। वहां उसका कथन है "मैं तुम्हें बाइपास करके कैसे आगे की जिंदगी की तरफ बढ़ता।"[25]

अमोलक

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में किशोर बाबू का दोस्त अमोलक जोकि अपने इज्जत, मान-मर्यादा के प्रति बहुत सजग है। गांधी जी का अनुयायी है। देश की आजादी को अपना धर्म मानने वाले अमोलक तकली काटना, चरखा चलाना आदि लोगा को सिखाता है। स्वाधीनता संग्राम में उनके पिता ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। शुरू से ही उसे देश के प्रति जवाबदेह होने की शिक्षा परिवार से ही मिली है। बंगाल में भयानक अकाल के वक्त अमोलक ने बहुत अधिक सेवा कार्य किया। इस कार्य में वह किशोर बाबू को भी सम्मिलित करता है। उनका कहना था कि ममता, त्याग, धर्म आदि का ज्ञान धरा का धरा रह जाएगा, अगर भूख से मरते हुए आदमी को छोड़ दिया जाए। विभिन्न प्रकार के संगठनों से मिलकर अमोलक मदद व सेवा का भाव लेकर कार्य करता रहता है। अमोलक ऐसा पात्र है, जो प्रत्यक्ष तो नही लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से कथा में अपनी मौजूदगी दर्शाता रहता है। एक आदर्शवादी युवक समाज सुधार और देश के उत्थान को लेकर काफी सजग है और गांधी जी का अनुसरण करते हुए अपने जीवन को आगे बढ़ाता है। साथ ही वह एक अच्छा मित्र भी है। उन्होंने किशोर बाबू से अच्छी मित्रता निभाई है।

ललित भैया

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में हट्टे-कट्टे सुंदर व्यक्तित्व के धनी ललित भैया किशोर का अपना बड़ा भाई था। ललित भैया आकर्षक व्यक्तित्व के साथ-साथ देखने में भी बहुत खूबसूरत, संवेदनशील, भावुक और कमजोर हृदय के व्यक्ति थे। यही वजह रही कि अपने पिता की मृत्यु और बड़ी मामी के मर जाने से उनके हृदय पर चोट लगी और वह उसे अधिक दिन तक सहन नहीं कर पाए। उनके बारे में बात आती है कि जैसे ही वह बड़े हुए, मामा जी के साथ दुकान पर बैठकर पारिवारिक जिम्मेदारी निभाने लगे। शांता भाभी से उनकी शादी तो हो जाती है। परंत, कुछ ही दिनों के बाद लगभग 2 महीने के बाद उनका निधन हो जाता है। आदर्श पुत्र, आदर्श पति और आदर्श भाई के रूप में अपनी छवि लोगों के सामने छोड़ जाते हैं। उनके प्रति लोगों के साथ-साथ किशोर बाबू की भी सहानुभूति रही, जिसकी वजह से उन्होंने आजीवन शांता भाभी की देखरेख का बीड़ा उठाया।

किशोर बाबू का लड़का

'कलि-कथा: वाया बाइपास' उपन्यास में गौण किरदार के रूप में एक पुरुष पात्र किशोर बाबू का बेटा है, जो बी.कॉम. पास है। आधुनिक स्टाइल में जीने वाला युवक है। वह आधुनिक होते हुए भी धार्मिक, आस्तिक एवं वाह्य आडंबरों में विश्वास रखने वाला अंधविश्वासी चरित्र है।

वह अपने परिवार के सभी सदस्यों को खुश देखना पसंद करता है, इसीलिए वह डॉक्टरों से मिलकर किशोर बाबू की अस्वस्थता में कई प्रकार से इलाज करवाता ही है, साथ ही साथ ज्योतिष, पंडित, टोने-टोटके सब का सहारा लेकर पिता को स्वस्थ करना चाहता है। वह अपनी पत्नी के व्यवहार से संतुष्ट नहीं हो कर भी अच्छी तालमेल बिठाकर सफल वैवाहिक जीवन जीने की कोशिश करता है। हालाँकि उसके स्वभाव में भी बुराई मिलती है लेकिन वह आधुनिक नवयुवक का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास में किशोर बाबू के पुत्र के नाम का जिक्र नहीं हुआ है। इसी वजह से इसे प्रमुख गौण पात्र के रूप में ही रखा जा सकता है।

सुधीर

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में पुरुष पात्रों की अधिकता नहीं है। बहुत कम पुरुष पात्र देखे गए हैं। इनमें से जो प्रमुख पुरुष पात्र हैं वह सुधीर ही हैं। सुधीर मारवाड़ी परिवार का एक व्यक्ति है, जो अपनी सौतेली माँ के साथ पला-बढ़ा है। उसकी शादी रूबी जी से होती है। सुधीर का चरित्र आदर्शवादी और व्यवहारवादी है। वह एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पिता के साथ-साथ आदर्श पति के रुप में भी चित्रित हुआ है। आरंभिक दौर में अपने माता-पिता के आज्ञाकारी होते हुए, अपनी पत्नी को कोई सुख-चैन, सुकून न दे पाने का उसे अफसोस भी है। यही कारण रहा कि बाद में अपनी पत्नी के जीने के ढंग में उसका सहयोग कर सुकून भी महसूस करता है। सुधीर की उदारता अक्सर देखने को मिलती है। सुधीर की पत्नी जब अपनी शादी से पहले के प्रेम के बारे में बताती है तो वह बड़ी उदारतापूर्वक उसे सुनता है और कभी उसका गलत अर्थ नहीं निकालता।

रूबी दी के द्वारा सुधीर के बारे में असामाजिक होने की बात बार-बार कही जाती है. लेकिन उपन्यास में कहीं ऐसा नहीं लगता कि सुधीर किसी भी प्रकार से असामाजिक है। सुधीर अपने अधिकारों के प्रति सचेत होते हुए भी व्यवहार कुशल है। अपने छोटे भाई के द्वारा गाड़ी के बारे में यह मेरी गाड़ी है' कहने पर उसे सहर्ष उसे दे देता है, बिना किसी विरोध के। साथ ही साथ सकारात्मकता से जवाब देता है ठीक बात है, इसके पेट्रोल का खर्चा भी मैं कहां से उठाता। अच्छा हुआ जो तुमने कह दिया मुन्ना कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है, संयुक्त परिवार में रहकर सुधीर पूरे परिवार की स्थिति को देखते हुए समयानुकूल उचित फैसला लेने में सिद्धहस्त है। आरंभ में अगर वह अपनी सौतेली माँ की बातों का ख्याल रखता है तो आगे चलकर अपनी पत्नी के सुख-चैन और उसके भले की बात भी सोचता है और उसे मनोचिकित्सक डॉक्टर डेविस

के पास ले जाकर अपने जिम्मेदार पति होने का एहसास कराता है। इस प्रकार, यह भी कहा जा सकता है कि पूरे उपन्यास में एक सशक्त पुरुष चरित्र के रूप में सुधीर का चित्रण हुआ है।

आदिल

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में पुरूष पात्र आदिल मुस्लिम परिवार का एक लड़का है, जिसे रूबी दी अपने कुंवारे में प्रेम करती है और उसके साथ जीने-मरने की सोचती है। मगर आदिल का ऐसा व्यक्तित्व सामने आता है कि वह एन वक्त पर रूबी दी का साथ छोड़ कर चला जाता है। इससे पता चलता है कि एक अगंभीर चरित्र साथ-ही-साथ धोखेबाज चरित्र के रूप में भी आदिल का चरित्र सामने आता है। आदिल को डरपोक चरित्र के रूप में भी समझा जा सकता है, जिसने प्रेम करने वक्त तो नहीं सोचा लेकिन उसके परिणाम के डर से उन्होंने साथ छोड़ दिया। इस प्रकार, आदिल का भी चरित्र चित्रण अलका सरावगी ने बखूबी किया है तथा उपन्यास में गति देने के लिए बहुत कारगर सिद्ध हुआ है।

सविता का भाई

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में सविता का भाई नासमझ भाई, अयोग्य पुत्र के साथ अमानवीय वृति का है सविता का भाई। माँ के निधन के बाद अपनी पत्नी के साथ मिलकर सविता को कष्ट देना तथा पिता के साथ मिलकर इसे घर से बाहर कर देना उसकी नासमझी के साथ-साथ अमानवीय चेहरे को भी प्रस्तुत करता है।

गौतम

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में गौतम कादम्बरी का दोस्त है, जो कादम्बरी के साथ बिना विवाह के ही रहता है। फ्रेंच कट दाढ़ी रखता है। पत्रकार है, खुले विचार वाला है जिस कारण वह कादम्बरी को पसंद है। दूसरों के मामलों में टाँगें न अड़ाने वाला गौतम मानवीय गुणों से भरा हुआ है। वह पत्रकारिता के क्षेत्र में पूरी लगन से काम कर रहा होता है। हालाँकि रूबी दी को वह बिल्कुल ही पसंद नहीं है, फिर भी रूबी दी उसे कुछ नहीं कह पाती।

मुसद्दीलाल

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में सविता के पिता मुसद्दीलाल का चरित्र-चित्रण एक अय्याश, स्त्री प्रेमी, कामुक व गैर जिम्मेदार असामाजिक व्यक्ति के रूप में हुआ है। जिम्मेदारी से भागते हुए वह अपनी दूसरी शादी करता है और कामवासना की तृप्ति के लिए उसमें तल्लीन रहता है। बेटी के भविष्य की चिंता न करते हुए वह बेटी को आधी रात में घर से पीटकर बाहर कर देता

है। सविता के पिता बिल्कुल ही अदूरदर्शी व्यक्ति थे, जिन्हें अपने बच्चे की भविष्य की कोई चिंता नहीं। वह अपने सुख, भोग-विलास के लिए जीते-मरते थे।

देवीदत्त मामा

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में देवीदत्त मामा एक गौण पात्र हैं, जिसके बारे में रूबी दी और कादम्बरी के बीच चर्चा होती है। अविवाहित रूप से जीवन यापन करते हैं। देवीदत्त मामा के बारे में 'सिरफिरे' का भी संबोधन हुआ है। वे द्वितीय विश्वयुद्ध में अंग्रेजी सेना में भर्ती होकर लापता हो गए थे। उसके बाद कभी पता, कभी लापता होते रहे। उन्होंने ही रूबी दी का नाम रूबी रखा था। उपन्यास में ऐसा जिक्र है देवीदत्त मामा अपना असफल प्यार को जिन्दा रखने के लिए ही रूबी दी का नाम 'रूबी' रखा। देवीदत्त मामा के बारे में रपट लिखते हुए कादम्बरी ने लिखा- "एक अदृश्य आदमी देवीदत्त, जिनके जन्म के साथ पिछली शताब्दी शुरू हुई थी, को इस नई शताब्दी की शुरुआत में याद करने का कोई महान कारण नहीं है। ..... आज वह समय आ गया है।"[26] इस प्रकार एक गौण चरित्र के रूप में देवीदत्त मामा का जिक्र हुआ है। परन्तु, उन्होंने कथावस्तु को आगे बढ़ाने में तथा चिंतन के लायक विषय को प्रस्तुत करने में मदद की।

मनोरंजन व्यापारी

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में मनोरंजन व्यापारी एक सामान्य-सा व्यक्तित्व, जिसके कार्य से उन्हें विशिष्ट चरित्र मान सकते हैं। कई प्रकार के कार्य करने वाले मनोरंजन व्यापारी सामाजिक व्यक्ति है। उन्होंने ही सायरा को रूबी दी के घर काम करने के लिए लाया था। असहाय सायरा की मदद करने वाला काफी प्रभावित चरित्र उजागर हुआ है। अलका सरावगी ने मनोरंजन व्यापारी के लिए 'हरफनमौला' शब्द का प्रयोग किया है। कभी वह आलू-टिकिया बेचता हुआ नजर आता है। कभी गैस सिलिंडर डिलिवरी करता हुआ। साफ पता चलता है कि मनोरंजन व्यापारी एक ऐसा चरित्र है जिसे कोई स्थायी नौकरी नहीं परन्तु जीवन जीने के लिए तमाम तरह के कार्य करने को तैयार है।

मिस्टर वियेना

'शेष कादम्बरी' उपन्यास उपन्यास में एक अलग प्रकार के पात्र हैं मिस्टर वियेना। उसे रूबी दी के बुआ का प्रेमी के रूप में भी दिखाया गया है। बहुत अधिक जानकार व्यक्ति के रूप में उनकी छवि बनी है। एक शिक्षक के रूप में भी मिस्टर वियेना को देखा जा सकता है। चूँकि वे रूबी दी को पढ़ाने के लिए उनके पिता के द्वारा नियुक्त किये गए थे। उनमें कभी-कभी

दार्शनिकता का पुट देखने को मिलता है। उपन्यास में उन्हें एक लेखक के रूप भी दिखाया गया। उनके बारे में उपन्यास में लिखा है - "मिस्टर वियेना की धूप-छाँही सफेद-काली दाढ़ी और मैली-सी शर्ट पर घिसी हुई ट्वीड की महीन चारखाने की जैकेट दूर से देखने पर उनके फिट-फाट साहब होने का भ्रम दे सकती थी।"[27]

रूबी दी के पिता

'शेष कादम्बरी' उपन्यास में एक महत्त्वपूर्ण पुरुष पात्र के रूप में रूबी दी के पिता को लिया जा सकता है। अपने पिता के व्यक्तित्व का रूबी दी पर प्रभाव पड़ा था। रूबी दी के पिता अनुशासनप्रिय व विवेकवान इंसान थे। अच्छे भाई थे। अच्छे दोस्त थे। मिस्टर वियेना का अंतिम समय तक साथ देना इस बात का परिचायक है। अपनी बेटी की शिक्षा के लिए उचित प्रबंध के साथ ही उसे सही दिशा में बढ़ने में सहयोग करना एक विशेष चरित्र के रूप में उभारता है।

गुरुचरण राय

गुरुचरण राय उर्फ गुरु 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है। विवाह न कर उसने प्रकृति से प्रेम किया है। दुनिया की एक बड़ी मल्टीनेशनल कम्पनी में एक्जीक्यूटिव के पोजीशन पर होने के बाद भी जीवन के यथार्थ को उसने प्रकृति में जीया है। कॉर्पोरेट दुनिया के पैंतरों को वह भली-भाँति समझने के बावजूद उसका मन इन सबसे परे है। धर्म-सम्प्रदाय के विचारों से ऊपर उसका प्रेम स्वच्छंद तथा पशु-पक्षी, सृष्टि, मनुष्य सभी के लिए है। प्रेम में वह कुछ भी करने को तत्पर, अपने ही आनन्द में खोया, जीवन के सारे चुनाव स्वयं करनेवाला, किसी के प्रति कोई बोझ न रखनेवाला, अवधूत की तरह जीनेवाला तथा बारिश को देखकर कविताएँ लिखनेवाला है। वह पैसे को जीवन की आवश्यकता मानता है उद्देश्य नहीं। प्रेम की पूर्णता में वह जीवन का असली मकसद तलाश करता है। प्रेम में वह किसी प्रकार का मिलावट नहीं चाहता इसलिए मीरा व राधा के समान प्रेमिका की तलाश करता है जिसमें लेन-देन का कोई हिसाब-किताब न हो। इसलिए परिवार उसके लिए एक बीमा कम्पनी की तरह है। वह कहता है- "परिवार है तो इसलिए कि तुम्हारे पढ़ने-लिखने, खाने-पीने, बीमार पड़ने, बूढ़े होने की व्यवस्था ठीक रहे। असल में तो पति-पत्नी अलग-अलग रहकर दो दोस्तों की तरह मिल रहे हैं, कोई बीमा कम्पनी खोलने के लिए नहीं।"[28]

उपन्यास में गुरु बनकर वह आधुनिकतावादी जगत का मौन प्रतिरोध करता है। उसके लिए प्रकृति सर्वोपरि है। आज मनुष्य का प्रेम प्रकृति के प्रति ही कम होता जा रहा। जिसकी वजह से हम जीवित हैं, स्वच्छ हवा में सांस ले रहे हैं, उसे ही बड़ी निर्ममता से नष्ट करके उद्योगपतियों

द्वारा अनावश्यक रूप से बड़े-बड़े कारखाने स्थापित किए जा रहे हैं तो गुरु के लिए असह्य है। प्रकृति से उसके इसी प्रेम के कारण वह इसे किसी भी प्रकार हानि नहीं होने देने में अपना भरसक प्रयास करता रहता है। वह जगह-जगह वातावरण प्रदूषण के खिलाफ प्रदर्शन में अपनी सहभागिता करता है। व्यस्तता से भरे जीवन में भी वह सच्चे निर्जन की तलाश करता है। उसके मन की कोई सीमा नहीं, प्रेम से वहाँ कोई भी समा सकता है।

गुरु किसी भी तथ्य को केवल एक ही फ्रेम से देखने का आदि नहीं है। बीच-बीच में बिना बताए वह पहाड़ों की सैर करने हेतु गायब हो जाता है। वह आदिवासियों का पक्षधर है और उनपर कविताएँ भी लिखता है। लोककल्याण और मानव को एक सूत्र में बाँधकर प्रेम बिखेरना ही उसके जीवन का सपना है। अंत में प्रकृति को अपना चिरसहचरी मानकर स्वेच्छा से पहाड़ों के देश जाकर फूलों की घाटी में अपनी मौत को चुनता है।

के.वी. शंकर अय्यर

' एक ब्रेक के बाद' के पुरुष पात्र में के. वी. शंकर अय्यर मार्केटिंग कंसलटेंट के रूप में शहर के बड़े नामी और चर्चित व्यक्ति हैं। बहुत अधिक बातें करने वाला, विभिन्न मुद्दों पर अच्छी जानकारी रखने वाला, सफल व्यक्ति के रूप में के.वी. का चित्रण हुआ है। अध्ययशील होने की वजह से जानकारी इतनी अधिक है कि कभी किसी की भी बात को काटने का दम रखता है। परिवार में अपनी अधिक नहीं चलने को लेकर बात दरअसल ऐसी है कि वह दुनिया को समझा सकता है, लेकिन अपने परिवार के लोगों को नहीं समझा सकता। अत्याधुनिक सोच वाले व्यक्ति के रूप में के.वी. को देखा जा सकता है। उनकी सोच अत्याधुनिक है। वह जाति-पाति, धर्म के बंधन आदि से अपने को मुक्त कर गैर जाति की एक लड़की से शादी करता है और घर छोड़कर बाहर अपना सफल जीवन व्यतीत करता है। अच्छे मित्र के रुप में भी उनका चित्रण देखा जा सकता है। गुरुचरण से उनकी अच्छी दोस्ती होती है और अच्छे सलाहकार के रूप में भी के.वी. का चित्रण हुआ है। शुद्ध शाकाहारी व्यक्ति के रूप में भी के.वी. शंकर अय्यर प्रस्तुत हुए हैं। वह सोचते हैं कि जो दुनिया को समझाने का तरीका जानता है यानी जिसके पास दुनिया को समझाने का तरीका है, उसके पास ही दुनिया की चाबी है। अच्छा पति, अच्छे पिता के साथ-साथ अच्छा मित्र और अच्छे सलाहकार के रूप में बेहद संवेदनशील, समझदार व्यक्ति के. वी. शंकर अय्यर का चित्रण अलका सरावगी ने अपने उपन्यास में किया है।

उपमन्यु भट्ट

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में पुरुष पात्र में तीसरे प्रमुख पात्र के रूप में उपमन्यु भट्ट का नाम आता है। उपमन्यु भट्ट जो अपने चंचल स्वभाव तथा पिता के तानाशाही रवैया के कारण अव्यवस्थित जीवन जीता है, जो बाद चलकर पूर्णता व्यवस्थित हो जाता है। उनका चरित्र चंचल है। इस बात का प्रमाण तब मिलता है जब रुक्मिणी से मिलने के प्रसंग में जब उनका मन डोलता है, रुकमणी की ओर आकर्षित होता है। वह द्वन्द्व में रूक्मिणी से दूर भागता है। वैसे दूर रहकर भी दूर मन से उसे दूर नहीं कर पाता। एक अच्छे मित्र के रूप में उपमन्यु भट्ट को देखा जा सकता है। गुरुचरण राय से उनकी दोस्ती इस बात का प्रमाण है। वह गुरुचरण के साथ समय बिताने के लिए व्यग्र रहता है और वह मौके मौके पर उसके साथ अवश्य जाता है, चाहे कितना भी महत्त्वपूर्ण कार्य क्यों न हो। एक अच्छे पति क रूप में उपमन्यु भट्ट का चरित्र सामने आता है। वह अपनी पत्नी के प्रति प्रेम-पूर्ण और जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार करता है, जिसकी वजह से रुक्मिणी से दूर हट कर पत्नी के पास लौट आता है। पत्नी के क्रियाकलाप में भी वह उसकी सहभागिता दर्ज करता है। अपने साथ रखता है और उसे हर तरह की स्वतंत्रता देना वह अपना परम कर्तव्य समझता है। एक सफल व्यवसायी के रूप में भट्ट का चित्रण हुआ है। वह अपने पिता के साथ मिलकर आर्ट गैलरी तैयार करने में सफल होता है और वह अंततः उपन्यास की चरम अवस्था पर कहानी को ले जाता है। जिम्मेदार व्यक्तित्व के रूप में भी उपमन्य भट्ट का चरित्र अलका सरावगी ने सामने रखा है। जब गुरुचरण की मृत्यु का संदेश सुनता है तो अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए पत्नी के लाख मना करने पर भी वहां जाता है और गुरुचरण राय की अस्थियां लेकर वापस आता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उपमन्यु भट्ट एक संघर्षशील, प्रकृति प्रेमी, अच्छे मित्र, जिम्मेदार व्यक्ति, सफल व्यवसायी के साथ-साथ एक अच्छे इंसान के रूप में यहाँ चित्रित हुए हैं।

रंगनाथन

रंगनाथन 'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में अधिक समय के लिए तो उपस्थिति नहीं दर्ज कराता, मगर उससे कथानक को स्पष्टता प्रदान करने में सहायता मिलती है। अलका सरावगी ने दिखाया है कि वर्तमान दौर में व्यक्ति अस्थिर जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। गुणवान होने के बावजूद किसी जॉब पर अधिक दिन नहीं टिक पाता है रंगनाथन।

रूक्मिणी का पति

'एक ब्रेक के बाद' उपन्यास में रुक्मिणी के पति गौण पात्र के रूप में सामने आते हैं, जो यह जानते हैं कि उसकी पत्नी किसी और से प्रेम करता है फिर भी वह उसके साथ रहता है तथा उसका साथ देता है; क्योंकि उसे लगता है यह सच्चे अर्थ में प्रेम को जानती है और जब कोई सच्चे अर्थ में प्रेम को जानती हो तो वह अच्छे व्यक्ति के रूप में ही सामने आएगी। वह अपनी पत्नी का हर फैसला मंजूर कर उसका साथ देते हैं। यही नहीं बल्कि गुरुचरण और रुक्मणी के साथ-साथ वह भी दर्शनीय स्थलों पर घूमने जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वह अति उदार चरित्र के रूप में सामने आए हैं। उपन्यास में इनके चरित्र ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

जयगोविन्द

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास का पात्र जयगोविन्द उन्नीस सौ सत्तर के दशक में अमेरिका से पढ़कर आया कम्प्यूटर इंजीनियर होने के साथ आजादी के बाद की पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। अमेरिका में सिस्टम इंजीनियर की पढ़ाई को अधूरी छोड़कर केवल इसलिए इंडिया लौट आता है कि भारत को उस जैसे युवकों की जरूरत है। इस चक्कर में वह न तो जयदीप ही रह पाता है न जैग बन पाता है। पत्नी दीपा के जाने के बाद अपने अधूरे आत्मकथात्मक उपन्यास में वह जयदीप के रूप में जीवन को जीता है जहाँ उसका चरित्र कभी आदर्शों के साथ तो कभी उससे टकराता हुआ आगे बढ़ता है। यहाँ आने के बाद नौकरी के लिए दर-दर की ठोकरें खाने के बाद उसे समझ आता है कि बिना पहुँच, धन व रिश्वत के उसकी किसी को कोई जरूरत नहीं। अमेरिका में रहते हुए उसे लगा था कि अपने देश के लिए कुछ करे क्योंकि आनेवाली पीढ़ी के प्रति उसके कुछ कर्त्तव्य हैं। परन्तु यहाँ कुछ और ही खेल चल रहा था।

प्रत्येक व्यक्ति की तरह जयदीप को भी अपने जन्मस्थान 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' से बड़ी आत्मीयता है। परन्तु वह नहीं जानता था कि उसकी पीढ़ी की तरह इसका भी ढ़हाया जाना तय है। उस मकान में दीपा और उसकी यादों के साथ-साथ अस्सी गरीब परिवारों के आशियाने 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' को ढ़हाये जाने से बचाने हेतु उसने एड़ी-चोटी एक कर दी ताकि उसमें रहनेवालों के सर से छत न छीनी जाए। इसके लिए उसने अपने चरित्र से विपरीत जाकर आदर्शों को ताक पर रखकर गुंडों की तरह बनने की भी कोशिश की। वह समाज को चलानेवाले गुंडे, मवाली, नेता सभी को अपने साथ करने में जुट जाता है। जिस बेदखल होने की पीड़ा का उसने स्वयं अनुभव किया था, अब दूसरों को बेदखल करने में लग जाता है। यहाँ

जयदीप के चरित्र का क्षणिक पतन होता है परन्तु अधिक समय तक वह ऐसा कर नहीं पाता। गलत संगति में फँसकर धोखा खाया हुआ वह वापस जयगोविन्द के ढ़र्रे पर चला आता है। समाज की तमाम परिस्थितियों को देख उसे सरकार की नीतियाँ व बाजार की परिस्थितियों को देख उसे कोफ्त के साथ ही आम लोगों की चिन्ता होती है कि हमारा देश किस गुंडों, भ्रष्ट नेताओं व बड़े-बड़े उद्योगपतियों के हाथ में जा रहा है। अनेक कोशिशों के बावजूद अंततः वह जानकीदास तेजपाल मैनशन को बचा नहीं पाता और रातों-रात सभी लोगों के साथ वह जानकीदास तेजपाल मैनशन से बेदखल कर दिया जाता है। अपने पिता एडवोकट बाबू की तरह मुँह बन्द करके वह चुपचाप नहीं जी सकने वाला जयदीप सत्ता और गुंडों के आगे मजबूर हो जाता है।

एडवोकेट बाबू

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में जयगोविन्द के पिता एडवोकेट बाबू के बारे में कहा जा सकता है कि एक प्रतिभावान व तेज तर्रार व्यक्ति के रूप में उनका चारित्रिक विकास हुआ है। अलका जी ने इनका आरंभिक परिचय में इन्हें 'चुप्पा राजस्थानी युवक' कहा है। यानी एडवोकेट बाबू बहुत कम बोलते थे, मगर अंत के दिनों में यानी मरने से पहले उन्हें बहुत बोलता हुआ पाया गया था। एक अच्छे सलाहकार के रूप में एडवोकेट बाबू का परिचय मिलता है। सेठ जानकीदास के साथ इनका ताउम्र रिश्ता अच्छे सलाहकार के रूप में ही रहा। यही वजह रही कि "जानकीदास तेजपाल मैनशन की ईंट-ईंट से लेकर उसके नामकरण तक सारा फैसला एडवोकेट बाबू का था।"[29]

अनुशासनप्रिय व्यक्ति के रूप में एडवोकेट बाबू को अलका जी ने प्रस्तुत किया है। निर्लोभी और ईमानदार व्यक्ति के रूप में भी उनका परिचय मिलता है। जब सेठ जानकीदास उन्हें पूरा तल्ला लेने की बात कही थी तो उन्होंने कहा था- "सेठ जी, अगर आदमी को ईमान से पेट भरना हो, तो उतने ही पाँव फैलाने चाहिए जितनी उसो चादर हो।"[30] इस प्रकार पूरे उपन्यास के अध्ययन के उपरान्त यह पता चलता है कि एक अच्छे सलाहकार, अच्छे अभिभावक, ईमानदार, निर्लोभी, सामाजिक व्यक्ति के रूप में एडवोकेट बाबू का चारित्रिक विकास हुआ है।

सेठ जानकीदास

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में जिस मकान के बनने से ढहाने तक की कहानी है उसके मालिक यानी उसको बनवाने वाले सेठ जानकीदास ही थे। उन्हीं के नाम पर इस मकान का नाम 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' रखा गया जबकि उपन्यास का भी नामकरण उसी तरह उनके इस मकान के नाम पर हुआ है। एक अमीर व्यक्ति के रूप में सेठ जानकीदास

का परिचय मिलता है। साथ ही अच्छे लोगों की पहचान करने में सेठ जी को माहिर बताया गया है। यही वजह रही कि उन्हें उस राजस्थानी युवक यानी एडवोकेट बाबू को अपने साथ रख लिया। अच्छे व्यक्ति व एडवोकेट बाबू के शुभचिंतक के रूप में भी सेठ जी का व्यक्तित्व सामने आया है। यही वजह रही कि उनका रिश्ता एडवोकेट बाबू से ताउम्र बना रहा।

विजय जैन

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में विजय जैन अमेरिका में रेस्टोरेंट चलाता है जो बचपन में जानकीदास तेजपाल मैनशन में ही केवल निकर पहने रहता था। इसके छह-सात भाई बहन होने की वजह से और दादा-दादी के साथ रहने की वजह से अभावग्रस्त जिन्दगी बितानी पड़ रही थी। उपन्यास में विजय जैन का चरित्र एक ऐसे व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है जो अपने देश से बाहर अधिक सुखद जिन्दगी जीने के लिए जाता है। अधिक पैसे कमापाने के लिए विदेश को उपयुक्त मानकर अपने देश से दूर चला जाता है और अपने देश को याद करता हुआ पछताता भी है। विजय के शब्दों में "मैं अगले साल सब कुछ सलटाकर इंडिया लौट जाऊँगा।"[31]

चौधरी

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में चौधरी बुड्ढा एक ऐसे पात्र के रूप में चित्रित हुआ है जो चरित्र से कमजोर है। जानकीदास तेजपाल मैनशन के पहले तल्ले पर रहता है। उनके बारे में जयगोविन्द के माँ के द्वारा कही गई पंक्ति उनका चरित्र चित्रण करती है "राम का मारा किसी भी औरत को देखते ही धोती में हाथ घुसा लेता है।"[32] उसके लिए 'लुगाईघट्टा' शब्द का प्रयोग हुआ है। चौधरी के ऐसे व्यक्तित्व के पीछे उसकी पत्नी के निधन हो जाना एक कारण बताया गया है। वैसे इस चरित्र ने उपन्यास में सहज रूप से गति दी है।

सुवास

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में सुवास जयगोविन्द का भतीजा है। दीपा के मर जाने के बाद जयगोविन्द जब अकेला रहने लगता है तो उसे आत्मकथात्मक उपन्यास लिखने की बात मन में आती है। यह बात जानकर सुवास सलाह देता है कि इन सब में नहीं पड़ना चाहिए। अग्रसोची बनते हुए सुवास को लगता है कि कहीं आत्मकथा में कुछ उल्टा-पुल्टा न लिख दें जिससे कि उनकी छवि धुमिल हो जाए। इस प्रकार एक उतावले चरित्र के रूप में बिल्कुल छोटी सी भागीदारी के साथ सुवास की उपस्थिति होती है।

विलास

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में विलास जयगोविन्द का ठरकी दोस्त है, जिसे हमेशा औरतों में रूचि रहती है। वह बाहर से अपनी ईज्जत बचाये रखना चाहता है मगर मन-ही-मन पर स्त्री के पीछे भागता रहता है। जयगोविन्द उपन्यास लिखनेवाला है तो उसे शक है कि कहीं उसकी ही कहानी वह उपन्यास में न लिख दे। इसलिए वह डरता भी है। उसका डरपोक चेहरा भी सामने आता है।

समरेन्द्र किल्ला उर्फ सैमकी

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में समरेन्द्र किल्ला जयगोविन्द का दोस्त है। वह अमेरिका में जयगोविन्द के साथ पढ़ता था। समय-समय पर समरेन्द्र का चरित्र उभरता रहा है। बिजनेस करने से लेकर जीवन-यापन के लिए इस चरित्र को विशेष रूप से देखा जा सकता है। अमेरिका में इंजीनियरिंग कर रहे जयगोविन्द के साथ वैचारिक मतभेद रहकर भी दोनों का साथ देखा जा सकता है। बाद के दिनों में समरेन्द्र का साथ जयगोविन्द को मिलता है। कई अन्य मुद्दों पर वह जयगोविन्द से बातचीत करता है। एक मित्र, सलाहकार, व्यवसायी आदि के रूप में अलका जी ने इस चरित्र को चित्रित किया है।

तिवारी जी

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में जानकी दास तेजपाल मैनशन के दरबान के रूप में तिवारी जी का परिचय मिलता है। इनके चरित्र के बारे में कहा जा सकता है कि ये बहुत ही नेकदिल इंसान हैं। इनकी कर्त्तव्यपरायणता का परिचय भी मिलता है। 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' में जब लगभग सब छोड़कर जा चुके होते हैं तब भी दरबानी कर रहे होते हैं तिवारी जी। यह उनकी मजबूरी भी हो सकती है मगर जिस मनोयोग से इस कार्य को अंजाम दे रहे होते है उससे लगता है कि यह उनकी कर्त्तव्य परायणता ही है।

मिंटू चाौधरी

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में मिंटू चौधरी 'विचार शक्ति' के एक पत्रकार के रूप में आते हैं जो कई प्रकार के धंधे करते हुए नजर आते हैं। उनका ब्लैकमेलिंग का भी एक धंधा है। वो कई प्रकार के व्यक्तित्व एक साथ अपने में समेटे हुए है। यही वजह है कि काफी रसूख वाला आदमी के रूप में इनका चित्रण हुआ है। जयगोविन्द से इनका संबंध बढ़ने पर दीपा इसका विरोध करती है; क्योंकि दीपा को पता चल जाता है कि मिंटू चौधरी ब्यूटीपार्लर की आड़

में कई प्रकार के गलत धंधे भी करवाता है। दीपा ने जयगोविन्द से कहा था "वह चाहे जो कुछ भी कहे या करे, मिंटू चाधरी से कोई रिश्ता नहीं रख सकता।"[33] इस तरह, मिंटू चौधरी का नकारात्मक चरित्र उपन्यास में सामने आया है।

आफताब हुसैन

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में आफताब हुसैन एक गुंडा जिसे लोग जबरदस्ती काम करवाने के लिए किराये मे उपयोग करता है। नीचे से उठकर इस प्रकार का व्यवसाय करने वाला इंसान जिसने थाना पुलिस को भी मैनेज करना सीख लिया है। आफताब हुसैन ने लोगों को हथियारों के बल पर धमकाने की कला सीख ली है ।

व्यास जी

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में व्यास जी जानकीदास तेजपाल मैनशन में रहनेवाला एक पंडित जो कुंडली देखने में माहिर है। राजाराम बाबू उन्हें गुरुजी कहते हैं। व्यास जी वाक्पटु एवं मिलनसार व्यक्ति के रूप में चित्रित हैं।

राधेश्याम बाबू उर्फ राजाराम बाबू

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में राधेश्याम बाबू उर्फ राजाराम बाबू एक जूट मील का कारोबारी। खुद को बहुत ही तेज व माहिर समझने वाला व्यक्ति। यही वजह रही है कि वो अपने पास रखने वाले सहयोगी की कुंडली अवश्य देखता है। उनका मानना है कि जिसकी कुंडली में बड़ा आदमी बनना लिखा हो उसे अपने पास नहीं रखना चाहिए। वह बहुत अधिक दिन तक नहीं टिक सकता। वह मौका देखते ही साथ छोड़कर चला जाएगा। राजाराम बाबू ने जयगोविन्द से कहा था- "अगर तुम्हारी जन्मपत्री में राजयोग होता, तो तुम मेरे पास इतने साल रहते? तुम कब के छिटक गए होते। मेरा हर मैनेजर निबा राजयोग वाला होता है। नहीं तो वह सबसे पहले मुझे ही लूटेगा।.... समझ में आई बात?"[34] बड़े-बड़े राजनेताओं से अपनी जान-पहचान रखने वाले व्यवसायी के रूप में इनका परिचय आखिर तक अलका जी ने प्रस्तुत किया है।

रोहित

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में रोहित जयगोविन्द का बड़ा बेटा है। वह अमेरिका में रहता है या कहें कि वह अमेरिका का ही होकर रह गया है तो अनुचित नहीं होगा। भारतीयता या भारतीयपन से उसे कोई आकर्षण नहीं है, जिसके कारण रोहित का भारत से

संबंधित किसी भी प्रकार की बातो में सुरूचि नहीं दिखती। वह हमेशा भारत की बुराई या कमी दिखाने के पक्ष में रहता है। रोहित का कथन है "नहीं, मैं कभी इस 'चिड़ियाघर' में वापस नहीं आ सकता।"[35] जयगोविन्द को इस बात का बुरा लगता है कि उसका बेटा इस देश को 'चिड़ियाघर' बताता है। अतिआधुनिक विचार, तर्कशील, निजी विचारों में जीनेवाले चरित्र के रूप में रोहित का व्यक्तित्व सामने आया है।

प्रीतम भंसाली

'जानकीदास तेजपाल मैनशन' उपन्यास में प्रीतम भंसाली मिशिगन युनिवर्सिटी में जयगोविन्द का दोस्त रहा है। वह अब बड़ी कंपनी चलाता है। वह पढ़ने में बहुत तेज नहीं था इस बात का साफ जिक्र हुआ है - "बेशक प्रीतम अरबपति बन चुका है जबकि वह पढ़ने में जयगोविन्द से हरदम पीछे रहा।"[36] बाद चलकर बैंक के डिफाल्टर के रूप में तथा व्यवसाय में घाटे के वजह से, चिट के कारण बहुत परेशानी में पड़ जाने वाला व्यक्ति जिसे अपनी खरीदी हुई जमीन बेचने की नौबत आ जाती है। एक अपराधी के रूप में भी उसकी छवि सामने आई है।

शशांक

शशांक 'कोई बात नहीं' उपन्यास का सोलह-सत्रह वर्ष का शारीरिक रूप से अक्षम बालक है। चलने में दिक्कत के कारण वह एक सामान्य जीवन जीने हेतु संघर्ष करता है। उसकी इस अक्षमता का उसके मित्र काफी मजाक उड़ाते हैं इसलिए तंग आकर वह पूरी दुनिया से भागना चाहता है। एक सामान्य जीवन की जद्दोजहद और समाज की अवहेलना के कारण वह अपने जीवन में दोहरा संघर्ष झेलता है, जो उसके मानसिक स्थिति को सामान्य रहने नहीं देती। एक जो शारीरिक अस्वस्थता के कारण उसे पढ़ाई में भी काफी समस्याएँ होती, दूसरा रोजमर्रा के कामकाज में भी उसे इतने संघर्ष करने पड़ते हैं कि वह अपने ही जीवन से झल्ला जाता है। उसकी माँ हर कदम पर अपने बेटे का सहारा बनती है तो कभी उसे दुनिया में सामान्य जीवन जीने हेतु प्रेरित करती परन्तु बाहर की दुनिया, उसके प्रति अफसोस भरी निगाहें और तरस जैसी भावनाएँ उसे हर पल एहसास दिलाती कि वह कितना बेबस और लाचार है।

शशांक की अन्तरात्मा को कदम-कदम पर चोट पहुँचाई गई। मेधावी होने के बाद भी असामान्य हालत के कारण उसे सेंट जोसेफ स्कूल में दाखिला देने से मना कर दिया जाता है क्योंकि वह शारीरिक रूप से विकृत है और अन्य सामान्य बच्चों के माता-पिता को इससे शिकायत हो सकती है। अच्छे अंकों में उत्तीर्ण होने के बावजूद उसपर रहम खाकर दाखिला दिया जाता है, उसकी इस सफलता का श्रेय दिन-रात इसके लिए की गई मेहनत के विपरीत

उसपर की दया को चला जाता है। परन्तु वहाँ उसके साथ अछूतों सा व्यवहार किया जाता है मानों शारीरिक अक्षमता कोई भयानक बीमारी हो। साथ के सारे सहपाठी उसकी हालत का मजाक उड़ाते। ऐसे में शारीरिक असामान्यता के साथ-साथ मानसिक असामान्यता आ जाना भी स्वाभाविक है। परन्तु वह छोटा सा निर्दोष बालक हर वक्त अपमान को झेलता हुआ सब बर्दाश्त करता रहता है। किसी ने उसे एक इंसान के रूप में नहीं देखा। समाज द्वारा उसके और उस जैसे लोगों के साथ की जाने वाली अवहेलना के कारण शशांक की मानसिकता में विरोध का स्वर देखने को मिलता है। स्कूल में कोई उससे दोस्ती करना नहीं चाहता। आर्थर और शशांक की दोस्ती भी इसलिए हो पाई कि वे सामान्य बच्चों से भिन्न है। शशांक शारीरिक अक्षमता के कारण तो आर्थर एक साँवला गरीब एंग्लो-इंडियन के कारण आपस में मित्र बन पाए थे।

समाज की अस्वीकार्यता के बावजूद तिरष्कृत और वंचितों के लिए उसका हृदय अपार संवेदना से भरा था। वह इस कष्ट को भली-भाँति समझता था। उसे गरीबों, भूखों आदि को देखकर बहुत कष्ट होता है और सोचता है कि गाँधी, नेहरू आदि ने इनके लिए क्या किया? वह प्रश्न करता है कि "क्यों दुनिया में इतनी तकलीफें हैं, इतने कष्ट हैं? किसने बनाई है ऐसी यह दुनिया? क्या कोई भगवान है, जो यह सब करता-कराता है? और अगर नहीं है, तो यह सब ऐसे क्यों घटता है? क्या साइंस ऐसी दुनिया नहीं बना सकता जिसमें न कोई बीमार हो, न गरीबी? क्या दुनिया के सभी साधु, संत, पादरी, मुल्ला ऐसा संसार नहीं बना सकते जिसमें न कोई किसी को मारता हो, न चोट पहुँचाता हो?"[37] इतने व्यंग्य और तिरस्कार को झेलने के बाद भी वह दुनिया की तमाम तकलीफों और उन्हें दूर करने के उपचारों पर विचार करता। परन्तु दुर्भाग्य है कि यही दुनिया उसे हेय समझती है। दरअसल दुनिया मानती है कि उन्हें ऐसे लोगों की कोई आवश्यकता नहीं और इसी कारण कदम-कदम पर ऐसे लोगों को समाज की अवहेलना का शिकार होना पड़ता है। शशांक हर तरीके से नॉर्मल दुनिया का हिस्सा बनने की कोशिश करता है परन्तु हर वक्त उसके इरादों को तोड़ा जाता है। कभी उसकी स्वयं की अस्वस्थता उसे उठने नहीं देती जैसा कि कई परिस्थितियों में उसके साथ होता है। एक बार बिना परीक्षा के उसे स्कूल में पास करा दिया जाता है, जिस कारण उसके सहपाठी ईर्ष्यावश उसका खूब मजाक बनाते हैं तो एक बार बद्री-केदार की यात्रा के दौरान बिना कहे उसे आगे वाली सीट मिल जाती है तो बाकी के यात्री उसके प्रति भला-बुरा कहते हैं जिससे शशांक को चुपचाप सब सुनना पड़ता है। फिर भी हार न मानने की जिद के साथ वह जीवन के हर मोड़ पर असंवेदना और तिरस्कार का सामना करता हुआ आगे बढ़ता है।

जतीन दा

'कोई बात नहीं' उपन्यास में जतीन दा का चरित्र एक ऐसे पात्र के रूप में प्रस्तुत हुआ है, जो शशांक को ठीक करने के लिए कई प्रकार की कहानियां अपने साथ रखते हैं। जिनके माध्यम से उपन्यास को गति तो मिलती है, साथ-ही-साथ शशांक को भी जीवन को समझने का मौका मिलता है। तेजतर्रार, स्पष्ट वक्ता, कल्पनाशीलता के साथ विनोदी स्वभाव से युक्त चरित्र के रूप में जतीन दा का चित्रण हुआ है। उपन्यास में गंभीर से गंभीर प्रश्नों के साथ जतीन दा की उपस्थिति होती है, जिससे यह पता चलता है कि जतीन दा का चरित्र काफी गंभीर है। शशांक के लिए जतीन दा उपन्यास में रहस्यात्मक चरित्र के रूप में सामने आते हैं। कथा में यह प्रश्न उठता रहता है कि क्या जतीन दा ही जैकसन उर्फ जेजे हैं या कोई और। वह दार्शनिक अंदाज में रखते हैं। शशांक से उनकी कही बातें कि आदमी का मन एक गांव है जिसमें वही अकेला नहीं रहता शशांक को काफी प्रभावित करता है।

जैकसन

'कोई बात नहीं' उपन्यास में एक किरदार है जो जय किशन के नाम से आगे परिचित होता है। कहानी में यह स्पष्ट हो नहीं पाता कि यह किरदार वास्तविक है या काल्पनिक। चूँकि जतीन दा शशांक को मानसिक रूप से प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रकार की कहानियाँ सुनाता है। जैकसन जिस रूप में चित्रित हुआ है उससे लगता है कि अलका जी ने उसे अनाथ चरित्र के रूप में परेशान व्यक्तित्व वाला दिखाना चाहा है।

ऑर्थर

'कोई बात नहीं' उपन्यास में आर्थर शशांक का एक ऐसा मित्र जो एंगलो इंडियन है। पढ़ाई में कमजोर है। देखने में भी साँवला है। बाकी लड़कों से अलग है शायद यही वजह रही कि उसकी शशांक से दोस्ती होती है। जतीन दा बताते हैं कि यही वजह है कि उस दोनों की दोस्ती टिकी है; क्योंकि दोनों की स्थिति कक्षा में लगभग समान है। लेकिन शशांक इस बात को नहीं मानता। आर्थर कुछ दिनों बाद शशांक के साथ पढ़ाई छोड़ कर मुंबई अपने पिता के पास चला जाता है और वहीं रह कर अपनी आगे की पढ़ाई करता है।

अमित अग्रवाल

'कोई बात नहीं' उपन्यास में अमित शशांक का दोस्त है । बहुत ही समझदार, जिम्मेदार, मददगार और तेज-तर्रार लड़के के रूप में अमित का चित्रण हुआ है। वह शशांक के पड़ोस में

रहता है तथा 11वीं में उसी के साथ कक्षा में बैठने लगता ह। शशांक को व्हील चेयर के माध्यम से कक्षा तक ले जाने, लाने के साथ-साथ उसकी बहुत मदद करता है तथा उसे उत्साहित भी करता रहता है। इस वजह से अमित को कई बार मुश्किलों का भी सामना करना पड़ा, लेकिन एक कर्तव्यनिष्ठ मित्र की तरह अमित शशांक का साथ देता है।

शशांक के चाचा

'कोई बात नहीं' उपन्यास में एक अच्छा भाई, एक अच्छा देवर, अच्छा चाचा, अच्छे पुत्र और अच्छा पति के रूप में शशांक के चाचा का चित्रण हुआ है। शशांक के चाचा का चरित्र विश्वसनीय है; क्योंकि शशांक की माँ अगर किसी तीन महत्त्वपूर्ण लोगों पर भरोसा करती है तो उसमें से एक शशांक का चाचा भी हैं। शशांक के चाचा खुशमिजाज के साथ-साथ हंसमुख भी हैं। लोगों को हँसाए रखना उन्हें अच्छा लगता है। शशांक के लिए किसी भी क्षण कुछ भी करने को तत्पर रहते हैं। इससे उनका सहयोगात्मक चरित्र उभरकर सामने आता है।

शशांक के पापा

'कोई बात नहीं' उपन्यास में शशांक के पिता एक सरल व शांत स्वभाव के व्यक्ति के रूप में चित्रित हुए हैं। वह सीधे-सादे हैं, जो मुसीबतों का सामना साधारण तरीके से करने की कोशिश करते हैं और किसी विपरीत परिस्थिति में घबरा भी जाते हैं। इसलिए शशांक की देखभाल का ज्यादा जिम्मा शशांक की माँ पर होता है। शशांक के पिता का चरित्र संकोची व्यक्ति के रूप में भी सामने आया है। उपन्यास के अंत तक जब उनके मित्र मिलने उनसे मिलने आते हैं तो वे संकोचवश अपने पुत्र को सामने नहीं आने के लिए कहते हैं, जो शशांक को नागवार गुजरता है। हालाँकि उपन्यास का क्लाइमेक्स यहीं पर पहुंचता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में शशांक के पिता को एक महत्त्वपूर्ण पुरुष चरित्र के रूप में रखा गया है।

प्रमित

प्रमित 'एक सच्ची-झूठी गाथा' उपन्यास का क्रांतिधर्मी सोच वाला व्यक्तित्व है जो उपन्यास में उद्वेलन पैदा करता है। उसके तर्क सड़ी-गली व्यवस्थाओं में आम आदमी के जीनव की त्रासदी को सोचने के लिए मजबूर करता है। सिस्टम को उलट-पुलटकर देखने का पूरा नजरिया प्रमित पर केन्द्रित है। प्रमित के समूचे व्यक्तित्व में आतंकवाद व नक्सलवाद की छाया दिखती है। कभी-कभी वह विक्षिप्तों सा व्यवहार करता है अर्थात् किसी गंभीर बात को मजाक कह देगा, तो कभी साधारण बात को गंभीर बना देगा और कहेगा कि मजाक है। प्रमित के चरित्र

में शेक्सपीयर के 'मैकबेथ' की छाया है। वह मानता है कि जो व्यवस्था चली आ रही है, वह ठीक नहीं है और इसे बदलने की जरूरत है। सत्ता की हिंसात्मक गतिविधियों ने प्रमित की मानसिकता को ऐसा दिग्भ्रमित युवा बना दिया था कि उसे लगता था कि केवल बन्दूकों से ही दुनिया बदली जा सकती है। अपने राष्ट्र से अधिक उसे अपने संगठन पर अत्यधिक विश्वास है कि अगर वह मर भी जाए तो उसके परिवार को संगठन की ओर से इतने पैसे मिलेंगे कि कोई दिक्कत नहीं होगी। उसे एकांत में खंडहरों में रहना बहुत पसंद है और अपने पिता का मकान उसे स्मृति, सपनों और बहुत सी बातों का खंडहर लगता है।

मिश्रित नस्ल का होने के कारण रंग-भेद की समस्या से उसका जीवन अभिशप्त था। हर कोई उसे शंका की दृष्टि से देखता है। बचपन से ही माता-पिता के साये से वंचित उसने अनेक कष्टों को झेला, ऊपर से अवैध संतान होने से वह हाशिए में फेंक दिया गया। अपने साथ हो रही असमानता व अवहेलना ने उसे इतना असामान्य बना दिया था कि वह स्वयं को अस्त-व्यस्त दुनिया में अराजकता का परिणाम मानने लगा। अपनी चमड़ी, बाल व भाषा के नाम पर उसे बेवजह घसीटा जाता है। वह मुफलिसों के स्कूल में पढ़ा जहाँ बच्चों का यौन शोषण किया जाता था। बचपन से ही उसकी परिस्थितियों ने उसका मनोविज्ञान ऐसा बना दिया कि वह जंगली हो गया। कई बार जंगलों में रहकर केवल ओस की बूँद पीकर कई दिनों तक वह जीवित रहा। प्रमित के विचार काल्पनिक दुनिया से परे यथार्थवादी धरातल पर विकसित हुए हैं। उसने दुनिया की नग्न सच्चाई को भोगा था और हमेशा उचित सवाल उठाता है। उसके कोमल हाथों ने बेबसी से बन्दूक उठाया था क्योंकि इसके अलावा दूसरा कोई रास्ता शेष न था। उसने देखा था न्याय की माँग करते उन लाचार आँखों को, जिनकी आँखें ही नोच ली गईं। उसका जीवन ऐसी हैवानियत का गवाह था। उसके जीवन का उद्देश्य उन हैवानों से उनकी हँसी छीननी है जो अपने फायदे के लिए मासूमों, निर्बलों, स्त्रियों व निर्दोषों का कत्ल करने के बाद भी मुस्कराते हैं।

प्रमित के लिए आजादी का अर्थ दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचाए बिना थी। उसका मानना था कि जब दुनिया में इतने तरह के प्रोटीन हैं, खाने हैं, शाक-सब्जियाँ हैं तो गाय का मांस ही क्यों खाएँ? दूसरों की भावनाओं को क्यों भड़काएँ? वह किसी भी धर्म के नाम पर फैलायी जा रही कट्टरता को बदसूरती से भरा मानता है। वह इसे बेड़ियाँ कहता है जो व्यक्ति को कभी उड़ने नहीं देंगी। अपने भोगे यथार्थ से वह व्यक्ति के अन्दर और बाहर दोनों तरफ से बेदखल होने की पीड़ा जानता है और इसलिए महाकाव्यों को पुनः लिखने की वकालत करता है।

वह काफी पढ़ा-लिखा है। उसे कविताएँ लिखना अधिक पसंद है क्योंकि उसके लिए कविता ही ऐसा माध्यम है, जिससे वह अपने वास्तविक बंजर जीवन से हरे-भरे स्वस्थ जीवन की कल्पना में ही कुछ क्षण जी लेता है। परन्तु अपना लिखा कभी छपवाना नहीं चाहता है। साथ ही उसे ऐसे लेखकों से बहुत चिढ़ है जो सिर्फ काल्पनिक बातें करते हैं, जिन्होंने यथार्थ को कभी भोगा नहीं था और केवल कमरे में बैठ सुनी-सुनाई बातों पर अपना विचार और तर्क देते हैं। उसने सिंगर, सैमुअल बैकेट ऑस्कर वाइल्ड, टॉलस्टॉय, येट्स, अरुंधती रॉय, शेक्सपीयर, रवीन्द्रनाथ, कार्ल मार्क्स, चे गुवेरा, एडलर एलेन पो, जार्ज स्टाइनर, बोरखेज, सोलोमन महान, फौकनर आदि को पढ़ा है और पाया है कि इस दुनिया के ताकतवर ढ़ाँचे व्यक्ति की भावनाओं से खेलते हैं। वह पहले आपको सबकुछ ठीक कर देने का भरोसा दिलाता है और जैसे ही आप इसके झाँसे में आ जाते हैं, ये आपसे विश्वासघात करते हैं। अर्थात् उसकी मानसिकता इस समाज के तिरस्कार की गाथा है जिससे उसके चरित्र का निर्माण होता है। उसने जिस अमानवीयता को झेला, उसके अनुरूप प्रतिरोध ही उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन गया जबकि इसे सूक्ष्मता से समझा जाए तो उसका संघर्ष एक सामान्य जीवन के लिए है, जहाँ सभी के अधिकारों की रक्षा हो तथा किसी को हाशिये पर न खड़ा किया जाए।

गाथा का पति

'एक सच्ची झूठी गाथा' के पुरुष पात्र उपन्यास के पुरुष चरित्र में गाथा का पति प्रमित सान्याल के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र है। हालाँकि इनकी उपस्थिति बहुत कम वक्त के लिए होती है वह लेकिन वे सशक्त एवं प्रभावी चरित्र के रूप में सामने आते हैं। साथ-ही-साथ वे अच्छा पति, व्यावहारिक आदमी के रूप में भी उपस्थित हुए है। गाथा का पूरा ख्याल रखने वाला उनका चरित्र सामने आता है। हालाँकि थोड़ा गुस्सा करने वाला भी व्यक्तित्व सामने आता है; क्योंकि कथा में जिक्र है कि जब गाथा अपना पहला उपन्यास लिख रही होती है तो दोनों की आपसी झड़प की वजह से उपन्यास को कचरे के डब्बे में फेंक देती है। गाथा का अधिक ख्याल रखने वाला इंसान। इसी चक्कर में कभी-कभी उससे झगड़ा भी हो जाता है। गाथा बताती है कि एक बार उसका पति से ऐसा झगड़ा हुआ कि वो अपना आधा लिखा उपन्यास कूड़े के डिब्बे में फेंक दी थी।

गाथा के पापा

'एक सच्ची झूठी गाथा' उपन्यास में गाथा के पापा आधुनिक सोच वाले व्यक्ति हैं। परन्तु अपनी बेटी को मिशनरी स्कूलों में भेजने से हिचकने वाले भी। चूँकि उनको लगता था कि कहीं

उनकी बेटी भी एंग्लो इंडियन लडकियों की तरह बेतरतीब सपने न देखने लग जाए। मारवाड़ी परिवार में एडजस्ट होने में कोई दिक्कत न हो, इसका पूरा ख्याल रखने वाले इंसान हैं।

प्रतिम साहा

'एक सच्ची झूठी गाथा' उपन्यास में प्रमित साहा एयरपोट पर गाथा को मिला था, जो कविता पाठ करने दिल्ली जा रहा था। वह किसी कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाता है। गाथा को उसका नाम सुनकर उसके प्रमित सान्याल होने का शक होता है।

कुलभूषण जैन

कुलभूषण जैन 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास का बीज पात्र है। पिता की बदसूरती विरासत में पाने के कारण उसे उनसे बड़ी कोफ्त थी क्योंकि उसके बाकी भाई-बहन माँ के समान गोरे व संुदर थे इसलिए वह रोज अपने आप को शीशे में कोसता था। परन्तु उसके पास इन सबको पल में दूर करने के लिए भूलने का एक बटन था जिसे दबाकर वह सारी बुरी बातों से खुद को दूर रखकर हमेशा हँसता रहता है। कोई उसपर हँसता तो वह भी अपने ऊपर हँसने लगता। उसने उसी के समान बदसूरती से भरी बंगाली लड़की रीमा सरकार से 'लव' करके विवाह किया। 'लव' को वह प्रेम से अधिक उच्च मानता था क्योंकि प्रेम को उसने हमेशा सौदा करते देखा था। उसके लिए लव आत्मिक सौन्दर्य है, इसी आत्मिक सौन्दर्य को उसने माया नस्कर में देखा जो कि विस्थापन का शिकार हुई, अपने पति और बच्चों का पेट पालने को मजबूर, एक काली रंग-रूप की स्त्री थी। उसकी रोज दुःख भरी कहानी सुनते-सुनते एक दिन कुलभूषण ने एक लाख रुपये अपने बेटे प्रशांत के अकाउंट से चेक काटकर उसे दे दी, ताकि उसके सर पर छत बनी रहे क्योंकि अपने भोगे कष्ट से उसे एहसास था कि सर पर छत न होना किसे कहते हैं। कुलभूषण स्वयं को सर्वहारा मानता है क्योंकि उसे अपने परिवार में भी न जगह मिली, जन्म देनेवाली माँ को भी नहीं। परन्तु एक रिफ्यूजी बच्ची मालविका के प्रति उसका स्नेह सच्चे वात्सल्य का परिचय देता है जिसे उसने पाला-पोषा, गरीबी की हालत में भी स्वयं न खाकर उसको खिलाया तथा छत व अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने का भरपूर प्रयास किया। यहाँ तक कि चार बेटों में सबसे कष्टदायक स्थिति में होने के बावजूद कुलभूषण ही अपने पिता को अंत समय में देखता है, उन्हें ढूँढ़ते हुए रिफ्यूजी कैम्प में पहुँचता है जहाँ वे बदहाल अवस्था में पड़े रहते हैं। बेटे की आस लगाए बैठे पिता की तकलीफ वह बखूबी समझता है।

कुलभूषण के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी कि वह किसी भी बात या काम के लिए किसी को मना नहीं करता, हमेशा कहता 'क्यों नहीं?' अपने पेट और परिवार को इज्जत और

ईमानदारी से पालने के लिए वह बस की कंडक्टरी का काम करता है। उसके भाइयों को इस बात से काफी नाराजगी थी परन्तु उसके लिए कोई छोटा-बड़ा नहीं था। हर काम में योग्य होने के बावजूद उसका तिरस्कार किया जाता है। उसके बड़े भाई बड़े सम्पन्न और बालीगंज के बंगले में रहते थे और कुलभूषण गोपाल चन्द्र दास बनकर तेलीपाड़ा के किराए के घर में गरीबी का जीवन जीने को लाचार तब भी बड़े भाई से उसे कोई शिकायत नहीं बल्कि वह उनका एहसान मानता है और कहता है कि "रामू, मुझे अपनी चमड़ी भी उतारकर भाई-भाभी के लिए देनी पड़े, तो दे दूँगा। वे ही मेरे माँ-बाप हैं। उन्होंने जिस दिन मेरा हाथ पकड़कर मुझे कुएँ से बाहर खींचा, समझो कि उसी दिन से मैं कहीं खड़ा होने लायक हुआ। वरना परिवार की शादियों में मुझे कोई निमंत्रण तक नहीं भेजता था।"[38] मारवाड़ी होकर भी नफा-नुकसान के हेर-फेर से उसका कोई वासता न था। उसके सीधे और सरल स्वभाव के कारण सभी उसे फँसा देते और बेकसूर होने के बावजूद वह दोषी ठहराया जाता। कुलभूषण का जीवन ईस्ट पाकिस्तान से विस्थापित होकर आए रिफ्यूजी जीवन के कष्टों को झेलते हुए आगे बढ़ रहा था। तमाम आन्तरिक पीड़ा के बावजूद वह अपने भूलनेवाले बटन का भरपूर उपयोग करते हुए हर हाल में खुश रहता है।

अध्याय सारांश

अलका सरावगी अपने कहानी एवं उपन्यासों की कथावस्तु के अनुसार ही विभिन्न चरित्रों का निर्माण की हैं। साथ-ही-साथ उन्होंने खास वर्ग के लोगों की समस्याओं को सामने रखने का प्रयास किया है। समस्या के आधार पर चरित्र का निर्माण करने में अलका जी सिद्धहस्त हैं। अगर चरित्रांकन विधि की बात करें तो उपरोक्त विवेचन में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि किसी चरित्र को सीधा चित्रित करने के बजाय उसके लिए परिस्थिति का निर्माण कर उसे प्रस्तुत करना उन्हें अधिक समीचीन लगता है। उन्होंने अपने उपन्यासों में जितने भी पुरुषों के चरित्र को प्रस्तुत किया है उससे कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि उनमें पुरूष चरित्र की समझ में कोई कमी है। स्त्री-चरित्र में ऐसी कोई संभावना ही नहीं होती, क्योंकि लेखिका स्वयं स्त्री है। स्त्री मनोभावों को पूरी ईमानदारी से एवं सशक्त रूप में सामने लाने का जो अभूतपूर्व कार्य अलका जी ने किया है यह निश्चय ही सम्माननीय कार्य है। चरित्र चित्रण में मिली अभूतपूर्व सफलता ने उन्हें हिन्दी साहित्यकारों में स्थापित करने में महती भूमिका निभाई है।

संदर्भ

1. सरावगी, अलका. 2019. कहानी की तलाश में. मिसेज डिसूजा के नाम. तृतीय संस्करण. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.31

2. सरावगी, अलका. 2019. कहानी की तलाश में.टिफिन. तृतीय संस्करण. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.40
3. सरावगी, अलका. 2019. कहानी की तलाश में. लाल मिट्टी की सड़क. तृतीय संस्करण. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.121
4. सरावगी, अलका. 2019. कहानी की तलाश में. लाल मिट्टी की सड़क. तृतीय संस्करण. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.127
5. सरावगी, अलका. 2010. दूसरी कहानी. एक और नमक हराम. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.133
6. सरावगी, अलका. 2010. दूसरी कहानी. कनफेशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.176
7. सरावगी, अलका. 2010. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.15
8. सरावगी, अलका. 2010. दूसरी कहानी. रिपन स्ट्रीटेट परवीन अख्तर. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.71
9. सरावगी, अलका. 2015. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, छठा संस्करण, पृ.58
10. सरावगी, अलका. (2001), कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण. पृ.203
11. सरावगी, अलका. (2001). शेष कादम्बरी। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण पृ.83
12. सरावगी, अलका. (2001). शेष कादम्बरी। राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.169
13. सरावगी, अलका. (2018). कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.154
14. सरावगी, अलका. (2015), कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, पृ.94
15. सरावगी, अलका. (2015). कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, पृ.78
16. सरावगी, अलका. (2010). एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.152
17. सरावगी, अलका. (2018), एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.200

18. सरावगी, अलका. (2015). जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.81
19. सरावगी, अलका. (2018). एक सच्ची झूठी गाथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपर बैक्स में, पृ.10
20. सरावगी, अलका. (2018). एक सच्ची झूठी गाथा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.21
21. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.48
22. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.100
23. सरावगी, अलका. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.149
24. सरावगी, अलका. 2015. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, छठा संस्करण, पृ.50
25. सरावगी, अलका. 2015. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, छठा संस्करण, पृ.215
26. सरावगी, अलका. (2016). शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, पृ.94
27. सरावगी, अलका. (2016). शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, पृ.42
28. सरावगी, अलका (2010), एक ब्रेक के बाद, राजकमल प्रकाशन
29. सरावगी, अलका. (2015). जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
30. सरावगी, अलका. (2015). जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
31. सरावगी, अलका. (2015). जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
32. सरावगी, अलका. (2015). जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
33. सरावगी, अलका. (2015). जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
34. सरावगी, अलका. (2015). जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
35. सरावगी, अलका. (2015). जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
36. सरावगी, अलका. (2015). जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
37. सरावगी, अलका. (2015). कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण,
38. सरावगी, अलका. (2015). कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण,

पंचम अध्याय

अलका सरावगी की रचनाओं में नारी चेतना

पंचम अध्याय

अलका सरावगी की रचनाओं में नारी चेतना

5.1 नारी चेतनाः सामान्य परिचय

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक नारी की स्थिति में अनेक बदलाव देखने को मिले हैं। समाज की दशा और दिशा बदलने के साथ ही नारी की स्थिति में भी अनेक प्रकार के परिवर्तन और ह्रास देखने को मिलते हैं। किसी ने नारी को विरह का प्रतिक माना तो किसी ने भोग की वस्तु। किसी ने उन्हें प्रेम से सजाया तो किसी ने करुणा से। लेकिन किसी ने भी नारी की चेतना या उनके बौद्धिक अस्तित्व की बात नहीं की। प्राचीन काल के अनेक कवियों ने नारी को अपनी रचनाओं में स्थान तो दिया, लेकिन उन्हें ईश्वर प्राप्ति में बाधक ही माना। परिवर्तन के इस युग में नारी ने हर क्षेत्र में अपना परचम लहराया है, लेकिन इतनी परीक्षाएँ देने के बावजूद भी समाज ने नारी को वह सम्मान नहीं दिया जिसकी वे हकदार हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक नारी ने अनेक रूप जिया है। कभी वे सृजनकर्ता तो कभी विध्वंसक के रूप में सामने आई हैं। लेकिन इतने त्याग करने के बाद भी इस पुरुष प्रधान समाज में नारी को कदम-कदम पर कुछ परीक्षाओं से गुजरना पड़ा है। हमारे साहित्यकारों ने नारी को दो भागों में बांट दिया है, एक कमर से ऊपर और दूसरा कमर से नीचे और उन्हें नारी नहीं बल्कि नायिका का दर्जा दिया है। उनके अनुसार, कमर से ऊपर की नारी जहाँ ममता और दया से भरी होती है, वहीं कमर से नीचे की नारी अश्लील और घिनौनी होती है। राजेंद्र यादव ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है, "कमर से ऊपर की नारी गौरवर्ण, करुणा से भरी, सौंदर्य और शील की देवी है, वह काव्य है, संगीत है, अध्यात्म है और अमूर्त है। कमर से नीचे वह वासना की गुफा है, नीच और अश्लील है, विनाशकारी है, राक्षसी है और कुल मिलाकर नरक है।"[1]

हिंदी साहित्य में नारी चेतना के विकास की यात्रा प्राचीन काल से ही निरंतर चल रही है। प्राचीन काल से ही कवियों ने नारी पर आधारित अनेक रचनाएं की हैं। नारी की प्रशंसा में अनेक पद्य कहे गए हैं। उसकी मधुरता से संबंधित अनेक कामुक कविताएं लिखी गई हैं। प्राचीन काल से ही भाट और चारण कवि राजाओं को प्रसन्न करने और उनकी उत्तेजक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए नारी के सौंदर्य पर आधारित काव्यों की रचना करते रहे हैं। प्रारंभिक मध्यकाल में नारी का या तो दैवीय रूप देखने को मिलता है या फिर साधना के मार्ग में बाधा के रूप में। भक्ति काल के सगुण कवियों ने नारी के दैवी रूप को ही अधिकतर स्वीकार किया है, जबकि

निर्गुण कवियों में किसी ने नारी को साधना मार्ग में बाधक तो किसी ने सहायक माना है। रीतिकाल का सम्पूर्ण साहित्य नारी विषयक विलासपूर्ण रचनाओं से भरा पड़ा है। देव, बिहारी आदि कवियों ने नारी को कामुक ढंग से चित्रित करने में अपना सारा कौशल लगा दिया है, जबकि रीति मुक्त कवियों द्वारा अपने प्रियतम से वियोग का वर्णन प्रमुख है। किन्तु इनमें से किसी भी नायिका का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखाई देता। नारी चेतना की दृष्टि से सबसे समृद्ध काल आधुनिक काल रहा है। इसमें कवियों द्वारा नारी का कामुक ढंग से किया गया चित्रण कतई अश्लील नहीं था। अधिकांश छायावादी कवियों द्वारा नारी का प्रकृति के रूप में किया गया चित्रण प्रमुख रहा है। इस काल की लेखिकाओं ने नारी चेतना से संबंधित रचनाएँ लिखीं और स्वयं महिला कवियों ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करना शुरू किया, जिससे नारी चेतना का प्रारंभ हुआ।

हर काल में लेखकों ने नारी को सुंदर ढंग से चित्रित करने में अधिक रुचि दिखाई। वे नारी के प्रेम और सौंदर्य को चित्रित करने के बहाने उनकी सुंदर छवि को चित्रित करना चाहते थे। लेकिन ये बातें कविताओं के विषय में अधिक सटीक हैं। गद्य विधा अभी भी इन सब से थोड़ी दूर है। इस सम्बन्ध में पी.डी. शर्मा का यह कथन सर्वाधिक उपयुक्त है, "इतिहास इस बात का साक्षी है कि सभी देशों और भाषाओं में नारी को आकर्षण का केन्द्र बनाकर साहित्य ने जितना कागज और स्याही बरबाद की है, वह पुरुष की कामुकता और वासना की तुष्टि के दंभ से अधिक कुछ नहीं है। हर देश और काल के लेखक अपनी कहानियों और कविताओं को मसालेदार बनाने के लिए प्रेम का सहारा लेते हैं और 'प्रेम' को श्रृंगार में डुबोकर नारी को 'वस्तु' या स्त्री-पुरुष के बीच के संभोग में वासना तंत्र सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इसमें पूर्व और पश्चिम के साहित्य में कोई विशेष अन्तर नहीं है।"[2]

नारी चेतना की विकास यात्रा का एक पड़ाव नारियों की रचनाओं से भी जुड़ा है जहाँ नारियों ने साहित्य में अपनी कलम चलाई है लेकिन सभी साहित्यिक इतिहासकार उनकी रचनाओं के प्रति अधिकतर उदासीन रहे हैं और किसी ने भी उनकी रचनाओं को संग्रहित करना या उन्हें कविता का दर्जा देना उचित नहीं समझा। जहाँ भी उनकी कविताएँ अच्छी लगी हैं, वहाँ उन्होंने यह मान लिया है कि ये रचनाएँ किसी महिला कवि द्वारा नहीं बल्कि किसी अन्य कवि द्वारा लिखी गई हैं। तुलसीदास की पत्नी रत्नावली द्वारा तुलसीदास से कही गई इन पंक्तियों 'अस्थि चर्माय देह मम तम ऐसी प्रीत, ऐसी जो रघुनाथ में हो न ताव भयंति' से यह आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है कि रत्नावली भी कविता लिखने में निपुण थीं लेकिन जहाँ तुलसी और उनकी रचनाओं को व्यापक प्रसिद्धि मिली, वहीं पूरे साहित्यिक इतिहास में कहीं भी रत्नावली या उनकी

रचनाओं का उल्लेख नहीं मिलता। रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि आलम की प्रेमिका शेख रंगरेजिन और घनानंद की प्रेमिका सुजान के बारे में भी यही बात सत्य है। उनकी कुछ कविताएँ प्रकाशित होने के बाद भी उन्हें कवियों में वह स्थान कभी नहीं दिया गया जिसकी वे हकदार थीं। रत्नावली, शेख और सुजान तो कुछ उदाहरण मात्र हैं जो प्रकाश में आए, लेकिन ऐसे और भी अनेक लेखिका होंगी जो इतिहासकारों की उपेक्षा के कारण अंधकार में खो गए।

साहित्य में नारी चेतना के विकास की यात्रा साहित्य के विकास के साथ ही शुरू हो गई थी। साहित्य में नारी लेखन की शुरुआत बहुत पहले ही हो चुकी थी, लेकिन हमारे साहित्यकारों ने इसे प्रकाश में लाने की कभी जरूरत महसूस नहीं की। उन्होंने कभी इस बात पर विचार करने की जरूरत महसूस नहीं की कि "नारी भी पुरुषों की तरह कवियित्री हो सकती हैं। ज्ञान का संस्कार आत्मा से जुड़ा है, इसमें स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं है। हम सुनते और देखते हैं कि कई राजकुमारियाँ, मंत्रियों की बेटियाँ, वेश्याएँ और नयप्रयोक्ताओं की स्त्रियाँ शास्त्रों की महान विदुषी और कवियित्री हैं।"[3] हिंदी साहित्य के इतिहास में सभी इतिहासकारों ने पुरुषों की रचनाओं पर ही ध्यान दिया। साहित्य के इतिहासकार हमेशा से ही नारी साहित्यकारों के प्रति उदासीन रहे हैं। जहाँ कहीं भी किसी ने उनका नाम लिया है, वहाँ भी किसी अच्छी रचना को देखकर यह अनुमान व्यक्त किया है कि यह रचना संभवतः किसी पुरुष लेखक ने लिखी है और इसीलिए इतनी अच्छी बन पड़ी है। लेकिन किसी भी इतिहासकार ने कभी किसी पुरुष लेखक द्वारा लिखी गई रचना को नारी द्वारा लिखी गई रचना नहीं माना क्योंकि उनकी दृष्टि में नारियों में संभवतः पुरुषों से प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता नहीं है। मीराबाई, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे कुछ लेखिकाओं को छोड़कर किसी भी इतिहासकार ने किसी अन्य लेखिका का नाम लेने की जहमत नहीं उठाई। रामनरेश त्रिपाठी ने नारी लेखन की मौलिकता के संबंध में कहा है, "नारियाँ जो गीत गाती हैं, उनकी रचयिता वे स्वयं होती हैं। गीतों की भाषा, उनके विषय और वर्णन शैली इसका प्रमाण हैं। पुरुष जो गीत गाते हैं, वे पुरुषों द्वारा लिखे जाते हैं। गीतों का गहन अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नारी के गीतों में पुरुषों द्वारा जोड़ा गया एक भी शब्द नहीं है। नारियों के गीतों की सारी महिमा नारियों की है। संभव है कि प्रत्येक गीत की रचना में बीस वर्ष और सैकड़ों दिमाग लगे हों, लेकिन दिमाग नारियों का ही था।"[4]

लेकिन इतने लंबे समय से चले आ रहे इस नारी लेखन का जिक्र क्यों नहीं होता? हमारे साहित्यिक इतिहासकार इसकी खोज में इतने आलसी क्यों रहे? हिंदी साहित्य में हर दिन नई खोज होने के बावजूद, नई कवयित्रियों को ही क्यों पेश किया जाता है? नई कवयित्रियों की खोज

कभी नहीं होती। सुमन राजे जैसी चंद लेखिकाओं ने ही नारी लेखन के उस इतिहास को खंगाला है जो सूरज की रोशनी में सितारों की तरह लुप्त हो गया है। सुमन राजे ने महिला लेखन पर अपनी किताब 'हिंदी साहित्य का आधा इतिहास' लिखी है। हिंदी साहित्य का वह आधा इतिहास जो पुरुषों की गाथा गाते हुए पीछे छूट गया है। सुमन राजे कहती हैं, "प्राचीन साहित्यिक इतिहास का अधिकांश हिस्सा 'स्मृति' साहित्यिक इतिहास है। आज इतिहास की इमारत जिन साक्ष्यों के आधार पर खड़ी है, वे धरती के गर्भ में दबे बर्तनों और औजारों के टूटे-फूटे टुकड़े हैं। लेकिन साहित्य का साक्ष्य शब्द हैं।"[5]

5.1.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हम प्राचीन काल से ही परिवार के भीतर नारियों का शोषण होते देखते आ रहे हैं। चाहे वह त्रेता युग के मर्यादा पुरुषोत्तम द्वारा माता सीता को अग्नि परीक्षा देने के लिए बाध्य करना हो या कुछ लोगों के संदेह के कारण अपनी देवी समान पत्नी को गर्भवती अवस्था में जंगल में भटकने के लिए छोड़ देना हो। इसी प्रकार द्वापर युग में एक पुत्र द्वारा विवाहित स्त्री को पांच पुत्रों में उसी प्रकार बांट दिया गया जैसे माताएं अपने बच्चों में भोजन की वस्तुएं बांटती हैं और वह स्त्री जो पांच पुरुषों द्वारा रक्षा के लिए तैयार थी, उसे उन पुरुषों ने जुए में हार दिया। मानो वह कोई मनुष्य न होकर उनकी कोई संपत्ति थी जिसे जुए में हार जाने का अधिकार पांडवों को था और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे जुआ हार गए और अपने विरोधी को अपनी संपत्ति का मनचाहा उपयोग करने की स्वतंत्रता दे दी और दुर्योधन ने भी द्रौपदी रूपी उस संपत्ति का मनचाहा उपयोग करना शुरू कर दिया, बहुत ही अभद्र तरीके से और उसका चीरहरण करके और वे पांच पुरुष खड़े होकर देखते रहे, उस सभा में कोई और कुछ नहीं बोला क्योंकि दुर्योधन द्रौपदी रूपी वस्तु को पहले ही जीत चुका था। अहिल्या, जिसका अपराध केवल इतना था कि वह छल से पति के वेश में आए इंद्र को पहचान नहीं पाई और प्रेमालाप में लीन हो गई, जिसका परिणाम उसे अपने पति द्वारा पत्थर बन जाने के श्राप के रूप में भुगतना पड़ा। हर जगह पुरुष ने पुरुष के वेश में नारी का शोषण किया। ऋषि गौतम ने भी इंद्र को उसके अपराध के लिए दंडित करने के बजाय उसकी पत्नी अहिल्या को दंडित करना उचित समझा। जब-जब नारी ने चुप रहकर हर अत्याचार को सहन किया है, तब-तब उस पर शोषण की संख्या में वृद्धि ही हुई है। सीता ने राम और अपने परिवार को त्याग कर अपना बदला लिया, जो उसके साथ हुए इस अन्याय के खिलाफ आवाज भी नहीं उठा सके। द्रौपदी ने कुरु वंश का नाश करके अपना बदला ले लिया, लेकिन द्रौपदी का बदला अधूरा रह गया। उसका बदला तब पूरा होता जब वह अपने उन पाँच पतियों से बदला

लेती, जिन्होंने पति के रूप में उसकी रक्षा करने का वचन दिया था, जिन्होंने उसे जुए में एक वस्तु की तरह इस्तेमाल किया और उसका चीरहरण होते देखते रहे। इस संबंध में हिंदी साहित्य की सुप्रसिद्ध लेखिका मैत्रेयी पुष्पा का कहना है कि "हम बार-बार कहते रहे हैं कि हमें पौराणिक काल से चली आ रही कहानियों पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं है, क्योंकि यहाँ नारी पक्ष मनगढ़ंत है, क्योंकि इन कहानियों को लिखते समय किसी भी नारी की राय नहीं ली गई, क्योंकि ये कहानियाँ पुरुष व्यवस्था का समर्थन करती हैं और अपने निर्णय नारियों पर थोपती हैं, इसलिए हम इन कहानियों को तरजीह नहीं देते।"[6]

प्राचीन काल में नारियों को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। वैदिक काल में नारियों को पवित्रता की प्रतिमूर्ति, देवी का रूप माना जाता था। वैदिक काल में नारियों द्वारा शास्त्रों का अध्ययन, यज्ञों में पुरुषों के बराबर की भागीदारी, स्वेच्छा से विवाह आदि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन समाज में नारियों का स्थान सर्वोच्च था, जो समय के साथ धीरे-धीरे समाप्त होने लगा। यहाँ यह कहना गलत नहीं होगा कि आज स्त्री और पुरुष के बीच जो भेदभाव और भेदभाव देखने को मिलता है, उसके बीज कहीं न कहीं उत्तर वैदिक काल में ही बोए गए थे।

प्राचीन काल में धार्मिक दृष्टि से भी महिलाओं को उच्च दर्जा प्राप्त था। इस काल में कई ऐसी नारियाँ थीं जिन्होंने पुरुषों के सामने अपनी विद्वता साबित की और खुद को पुरुषों से ऊंचे दर्जे की हकदार बताया। वे यज्ञों और धार्मिक अनुष्ठानों में पुरुषों के बराबर हिस्सा लेती थीं। इन सभी विदुषियों में गार्गी, अपाला, घोषा और लोपामुद्रा का नाम आज भी आदर के साथ लिया जाता है। जहाँ एक ओर वैदिक काल में नारियों को देवी का दर्जा प्राप्त था, वहीं दूसरी ओर कुछ संप्रदायों में नारियों को ईश्वर प्राप्ति में बाधक माना गया है। प्राचीन काल में नारियों ने राजनीति में भी अपनी एक अलग पहचान बनाई है। ऐसे कई बेहतरीन उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। हमारे शास्त्रों में वर्णित देवासुर संग्राम में जब देवताओं और असुरों के बीच युद्ध हुआ तो एक बार दशरथ जैसे शक्तिशाली राजा भी अपने रथ का पहिया निकालने में खुद को असमर्थ पा रहे थे। उस समय उनके साथ युद्ध कर रही कैकेयी जैसी वीर नारी ने अपनी चतुराई का परिचय देते हुए पहिए में अपनी अंगुली डालकर रथ को गिरने से बचाया था, जिसके कारण इस युद्ध में देवता विजयी घोषित हुए थे। ऐसे अनेक उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं, जब नारियों ने स्वयं को पुरुषों से श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

इस युग की नारियाँ भी वीरता की मिसाल थीं, लेकिन इस युग की विलासी प्रकृति के कारण प्राचीन साहित्य में नारी के कामुक रूप को ही प्रमुखता मिली है। जहाँ वीर नारीत्व की उपेक्षा की गई, वहीं विलासी राजाओं की भोग-विलास की पूर्ति के लिए नारी के कामुक रूप को बढ़ावा दिया गया। इस संबंध में सावित्री सिन्हा का कथन सर्वथा उपयुक्त है कि, "उपेक्षित नारीत्व इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कामुकता की प्रेरणा बन गई। एक ओर जहाँ राजनीतिक विषमताओं ने उसे जलकर राख हो जाने की शक्ति दी, वहीं सामाजिक क्षेत्र में उसकी सुलभता, सरलता और सुंदरता ने उसके व्यक्तित्व को केवल आकर्षक बना दिया। बाह्य और आंतरिक गतिविधियों के कारण जो रूप निर्मित हुआ, उसमें दो मुख्य भावनाएँ थीं: वीरता और श्रृंगार।"[7]

प्राचीन काल का महाकाव्य कहे जाने वाले पृथ्वीराज रासो में भी कुछ स्थानों पर नारी का पूजनीय रूप देखने को मिलता है। रामेश्वर नारायण जी ने अपनी पुस्तक साहित्य में नारी के विभिन्न उल्लेखों के संदर्भ में रासो के संदर्भ में यह दर्शाया है: "रासो के सम्पूर्ण नाटक में नारी का प्रेम इतना प्रगाढ़ है कि नारी प्रेम की सहचरी है।"[8]

पृथ्वीराज रासो में चंदबरदाई ने महाराज पृथ्वीराज के बंदी बनाए जाने पर संयोगिता एवं अन्य रानियों द्वारा प्राण त्यागने का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। इसी प्रकार आल्हा खंड के नाम से प्रसिद्ध जगनिक के परमाल रासो में जिसे हिन्दी साहित्य का वीर काव्य कहा जाता है, नारी के साहसी एवं वीर रूप की छवि ही देखने को मिलती है।

डॉ. सावित्री सिन्हा ने वीरगाथा काल में नारी शौर्य की उपेक्षा पर लिखा है कि "वीर काव्य के नाम पर लिखे गए साहित्य में नारी के ओजस्वी रूप प्रायः नहीं मिलते। इस युग की हिंदी रचनाओं में चित्रित नारियाँ चंडी और दुर्गा नहीं, अपितु कामिनी ही हैं।"[9] इस काल के कवियों में विद्यापति ने नारी के शरीर के प्रत्येक अंग का इतना अश्लील चित्रण किया है कि वे नायिका (राधा) को सिर से पैर तक अलौकिक चित्रण कहकर चुप हो जाते हैं, किन्तु वह चित्रण नारियों को वासना की देवी बनाने के लिए पर्याप्त है।

वीरगाथा काल में भी नारी के वीर रूप को दर्शाया गया है, लेकिन यह चित्रण बहुत कम है, जिसे घड़े में सागर के समान कहा जा सकता है। नारी के उस वीर रूप का चित्रण जिसमें वह शौर्य और साहस की प्रतीक है, कर्तव्य पथ पर अडिग वीर क्षत्राणी है, जौहर व्रत का पालन करने वाली साहस की प्रतिमूर्ति है तथा भावी राजाओं को साहस और कर्तव्य का पाठ पढ़ाने वाली मर्यादा पुरुषोत्तम माता है, प्राचीन साहित्य में देखने को मिलता है, किन्तु यह चित्रण इतना तुच्छ है कि उसकी ओर आंखें ही नहीं जातीं।

जहाँ तक प्राचीन काल में की गई नारियों की रचनाओं का प्रश्न है, प्राचीन काल की नारियों की रचनाएँ अधिकतर लोक गीतों और लोक कथाओं के रूप में मिलती हैं। इस काल की नारियों की अपनी कोई प्रकाशित रचनाएँ नहीं हैं। हाँ, समय-समय पर गाये जाने वाले लोक गीतों में नारियों की रचना की छवि देखी जा सकती हैं।

"मन मोरा अधन, तन मोरा चाउर, नयना मूँग की दाली।

बिन आग और लकड़ी के तू अपने प्रियतम को खिलाने जा रही है।"[10]

सुमन राजे ने समूचे प्राचीन साहित्य को असमंजस में पाया है। उनका कहना है कि "जब समूचे प्राचीन हिंदी साहित्य की स्थिति असमंजस में है, तब भले ही उस दौर की नारी लेखनी का सवाल उठाना जोखिम भरा हो, लेकिन इससे पीछे नहीं रहा जा सकता। मेरा मानना है कि इस तथाकथित प्राचीन काल में जो भी नारी लेखन है, वह लोक गीतों और लोक कथाओं के रूप में है जिसे साहित्य के इतिहास के दायरे से बाहर कर दिया गया है।"[11]

वैदिक काल में नारी को जो सम्मान और महत्व प्राप्त था, वह कालांतर में लुप्त होने लगा। मध्यकाल में नारी का धीरे-धीरे कम होता महत्व उन्हें पिंजरे में बंद पंक्षी के समान बना दिया। जिन नारियों को प्राचीन काल में देवी का दर्जा प्राप्त था और जिनके बारे में यह माना जाता था कि जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं, उन्हीं नारियों के साथ मध्यकाल में दुर्व्यवहार होने लगा। इस काल में स्त्री और पुरुष के बीच भेदभाव और पक्षपातपूर्ण व्यवहार चरम पर था। इस काल में नारियों को बहुत कष्ट सहना पड़ा। भारत में अरब आक्रमणकारियों के आगमन से हमारे समाज में पर्दा प्रथा का प्रचलन हुआ। पुरुषों के सामने पर्दा करने के कारण नारियाँ कई क्षेत्रों में आगे नहीं बढ़ सकीं। यहाँ यह कहना गलत नहीं होगा कि मध्यकाल में पर्दा प्रथा, बाल विवाह, वेश्यावृत्ति, विधवा दुर्दशा, तलाक आदि कई सामाजिक बुराइयों के कारण नारियों का दर्जा गौण हो गया और उनका जीवन संरक्षण का जीवन बन गया। इस पुरुष प्रधान समाज में नारियों को आगे बढ़ने से रोकने के लिए निरंतर प्रयास किए गए। जब किसी स्त्री का पति मर जाता था तो उस स्त्री को उसकी चिता के साथ जला दिया जाता था। वह विधवा बनकर समाज में अपनी दुर्दशा झेलने से बेहतर सती होना समझती थी, लेकिन बाद में उसे जबरन सती बना दिया जाता था। जाटों में एक अजीब प्रथा थी जहाँ बेटी के जन्म पर कहा जाता था कि पत्थर पैदा हुआ है और बेटी का ठंडा स्वागत किया जाता था। और यह केवल पुरुषों की तरफ से नहीं है, यही स्थिति माँ और दादी की भी थी। हमें ऐसे विभिन्न उदाहरण देखने को मिलते हैं जिनसे

हम कह सकते हैं कि मध्यकाल में नारियों के सामने असंख्य चुनौतियाँ थीं और मध्यकाल महिलाओं के पतन का काल था।

मध्यकाल में धार्मिक क्षेत्र में भी नारियों की स्थिति बद से बदतर होती जा रही थी। परिवार की रक्त शुद्धता, नारियों की सतीत्व की रक्षा और हिंदू धर्म की रक्षा के नाम पर नारियों को ऐसे सामाजिक और धार्मिक बंधनों में बांध दिया गया था कि वे पुरुषों की छाया मात्र बन गईं और उनका स्वतंत्र अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया। मध्यकाल में नारियाँ गुलामी की जंजीरों में बंधी हुई थीं। पुरुषों ने धीरे-धीरे नारियों से धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने का अधिकार, यज्ञ करने का अधिकार आदि छीनकर उन्हें किसी न किसी तरह से मान्यताओं की बेड़ियों में बांधकर रोकने का प्रयास किया और वे इस सब में अधिकांशतः सफल भी रहे।

राजनीतिक क्षेत्र में भी नारियों ने अपनी मजबूत स्थिति बनाए रखी, यद्यपि पीछे से। अकबर भले ही मुगलों के शासनकाल में गद्दी पर बैठा था, लेकिन उसके दिमाग के पीछे महामंगा जैसी नारी का बहुत बड़ा हाथ था। इतिहास गवाह है कि यदि नूरजहाँ ने सही समय पर शासन की बागडोर अपने हाथों में न ली होती तो मुगल काल जहांगीर के समय में ही समाप्त हो जाता। नारियों ने समय-समय पर राजनीति में अपनी महत्ता दिखाई है और स्वर्णिम काल कहे जाने वाले मुगल काल में कहीं न कहीं नारियों का महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यकाल में नारियों की धार्मिक और सामाजिक स्थिति के अलावा उनकी राजनीतिक स्थिति भी अच्छी कही जा सकती है। नारियों में जागरूकता जरूर कम थी लेकिन चेतना की दृष्टि से यहाँ नारियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

"मध्यकाल नारियों की आत्म-पीड़ा की महाकाव्य गाथा है। इस काल में नारियों की सामाजिक और राजनीतिक उपस्थिति केवल अभिजात वर्ग तक ही सीमित थी। गुलबदन बेगम, मेहरुन्निसा, मुमताज महल, नूरजहां, रजिया सुल्तान, महामागा जैसी नारियाँ कुलीन परिवारों से थीं और इसलिए उन्होंने उस समय की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में सकारात्मक हस्तक्षेप किया, जिनकी सलाह और निर्देश उस समय की प्रशासनिक व्यवस्था पर एक बाध्यकारी शक्ति के रूप में लागू किए गए। इस काल में नारियों ने शासन को अच्छी तरह से चलाया। गुलाम वंश के शासन के दौरान रजिया का शासन एक अपवाद है। रजिया न केवल एक सुशिक्षित नारी थीं बल्कि एक कुशल शासक भी थीं। इस काल में नारियों की स्थिति और भी बदतर हो गई। यूनानियों और शकों के भारत पर आक्रमण के बाद स्मृति लेखकों ने सामाजिक व्यवस्था और नारियों की सुरक्षा की दृष्टि से उन पर प्रतिबंध लगाने शुरू कर दिए। बाद में जब गुप्तों के स्थान पर हूण, गुर्जर और अहीर आए तो आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा न कर पाने पर कन्या को

जन्म के समय ही मार देने की प्रथा पनपी। सती प्रथा और जौहर की प्रथा भी इसी समय प्रचलित हुई। बाल विवाह, विधवा विवाह पर रोक, विधवाओं की अपशकुन सूचक शापित स्थिति, सती प्रथा के तहत अनिच्छुक विधवाओं को भी चिता में झोंक देना, जौहर में हजारों नारियों का आग में कूद जाना, पर्दा प्रथा के कारण नारियों को शिक्षा से वंचित रखना आदि उस काल के अवशेष हैं। इस प्रकार अशिक्षा और अंधविश्वास में फंसी नारियाँ अधिकाधिक पुरुषों की गुलाम बनती गईं।[12]

हिंदी साहित्य के आरंभ से ही साहित्य सृजन में नारियों का योगदान पुरुषों से कम नहीं रहा है। यह अलग बात है कि उनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इन महिला कवियों को केवल मौखिक सराहना ही मिली, लेकिन जब साहित्य का इतिहास लिखने की बात आई तो उन्हें भुला दिया गया। कहा जाता है कि संत कवि कबीर की पत्नी लोई भी कविताएँ लिखती थीं। लेकिन आज उनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है। क्या कबीर की कविताओं को संकलित करने वाले लोग लोई की रचनाओं को संकलित नहीं कर सकते थे या उन्होंने इसे आवश्यक नहीं समझा। इसी प्रकार भक्त कवि तुलसीदास की पत्नी रत्नावली के बारे में प्रसिद्ध है कि वे कविताएँ लिखती थीं। उन्होंने तुलसी को 'अस्थि चरमाय देह मय तम ऐसी प्रीत, ऐसी जो रघुनाथ में होत न ताव भयति' कहकर भगवद् भक्ति की ओर प्रेरित किया। लेकिन उनकी कविताएँ भी आज ज्ञात नहीं हैं, या तो उनका संकलन नहीं हुआ या फिर उन्हें तुलसी की रचनाओं के साथ कहीं मिला दिया गया है।

इसी तरह उत्तर मध्यकाल यानी रीतिकाल के कवियों घनानंद और सूदन की कविताओं के उनके सहेलियों ने जो उत्तर दिए, उनसे लगता है कि वे भी अच्छी कवयित्रियाँ थीं। कवि आलम के बारे में ऐसी ही एक कहावत मशहूर है कि एक बार शेख नाम के एक रंगरेज को उसकी पगड़ी में एक आधा लिखा हुआ दोहा बंधा मिला, 'कनक छड़ी सी कामिनी काहे को कटी छीन।' जिसके जवाब में शेख ने पंक्ति लिखी 'कटी को कंचन कटी विधि, कुछ मध्य धरी दीन।' इससे पता चलता है कि शेख डायर भी अच्छी कविताएँ लिखते थे। विवाह के बाद आलम और शेख साथ मिलकर कविताएँ लिखते थे, लेकिन शेख के नाम की कविताएँ कहीं नहीं मिलतीं, क्योंकि ये कविताएँ भी आलम की कविताओं में विलीन होकर आलम की हो गईं।

रीतिकाल में कवियों ने नारियों को वासना की वस्तु मानकर उनसे संबंधित रचनाएँ रचीं, जिनमें राधा कृष्ण को नायक-नायिका मानकर उनका अश्लील कामुक चित्रण किया गया। इस पर कवि मैथिलीशरण गुप्त की यह उक्ति देखने लायक हैः

"भक्ति की आड़ में अनंग की यह पूजा,

धन्य हैं ऐसे कवि, धन्य है उनकी वासना।"[13]

5.1.2 वर्तमान परिदृश्य

आज हमारा देश दुनिया में नई ऊँचाइयों को छू रहा है, लेकिन नारियों के अधिकारों के मामले में यह अभी भी निचले पायदान पर है। हर क्षेत्र में तरक्की करने के बाद भी हमारे समाज में अनेक बुराइयाँ मौजूद हैं। आज भी बेटी के जन्म पर परिवार में चिंता बढ़ जाती है। शायद इसके लिए समाज में व्याप्त दहेज प्रथा, महंगाई, बलात्कार आदि जिम्मेदार हैं। आज की नारियाँ हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं और कई क्षेत्रों में तो पुरुषों से आगे भी निकल गई हैं। लेकिन आज भी बेटियों को बचपन से ही घर की चारदीवारी के भीतर रहना सिखाया जाता है। उन्हें घर के काम सिखाए जाते हैं क्योंकि शादी के बाद उन्हें अपना समय रसोई में ही बिताना होता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उनके अपने कुछ सपने हैं या नहीं। दहेज जैसी कुप्रथा के कारण आज भी नारियों को अग्नि की वेदी पर खुद की बलि देनी पड़ती है। अपने माता-पिता के सम्मान की खातिर वो बेटियाँ अपनी खुशियों का त्याग कर देती हैं। हम भले ही नारियों को पुरुषों के बराबर दर्जा देने की बात करते हों लेकिन नारियाँ आज भी हर युग की तरह सामाजिक स्तर पर परीक्षा का सामना करती हैं और करती रहेंगी।

आधुनिक समय में यद्यपि नारियों की धार्मिक स्थिति में कुछ हद तक सुधार हुआ है, लेकिन आज भी हर त्याग नारियों को ही करना पड़ता है। नारियाँ कभी तीज, करवा चौथ, गणेश चौथ जैसे व्रत रखती हैं, कभी अपने पति के लिए तो कभी अपने बेटों के लिए, लेकिन केवल पुरुष ही नहीं, बल्कि नारियाँ भी कभी नारियों के लिए कोई व्रत नहीं रखतीं। हर व्रत और अनुष्ठान केवल नारियों के लिए अनिवार्य कर दिया गया है। मुस्लिम धर्म में भी नारियों को कई तरह की बंदिशों में बांधा गया है। इस धर्म में नारियों को मस्जिदों और दरगाहों में जाने की सख्त मनाही है और इसे अपराध माना जाता है।

आधुनिक समय में नारियों ने राजनीतिक स्तर पर भी अपनी समझदारी का परिचय दिया है। राजनीति में भी कई नारी शख्सियतें हैं, जिन्होंने पुरुषों से बेहतर इस क्षेत्र में काम किया है। हम लौह महिला इंदिरा गांधी को कैसे भूल सकते हैं जिन्होंने अपने शासनकाल में पाकिस्तान को कड़ी टक्कर दी और अपने विरोधियों को भी अपना व्यक्तित्व स्वीकार करने पर मजबूर कर दिया जिसके कारण वाजपेयी ने उन्हें दुर्गा की उपाधि से संबोधित किया था। बंगाल में ममता बनर्जी ने आज तक अपनी पार्टी और बंगाल की राजनीति को अपने बल पर संभाला हुआ है। इन

सबके बीच हम पूर्व विदेश मंत्री सुषमा स्वराज को कैसे भूल सकते हैं जिन्होंने विदेशों में भी हिंदी भाषा में भाषण देकर अपनी और हिंदी की ताकत का लोहा मनवाया। राजीव गांधी की मृत्यु के बाद सोनिया गांधी ने डूबती कांग्रेस पार्टी को पुनर्जीवित किया। देश की पहली महिला राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल, पहली महिला स्पीकर मीरा कुमार, जयललिता, मायावती ने भी राजनीति में एक स्तंभ के रूप में खड़े होकर इस पुरुष प्रधान समाज में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

आधुनिक काल नारी चेतना की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण काल है। इस काल में न केवल पुरुष लेखकों ने नारी चेतना पर अनेक रचनाएँ लिखीं, बल्कि इस काल में स्वयं महिला लेखिकाएँ भी आगे आईं। आधुनिक काल में साहित्य की सभी विधाओं में नारियाँ आगे आती देखी गई हैं तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि पुरुष लेखकों ने भी नारी की स्थिति पर लिखा है, लेकिन नारियों के आगे आने से उनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारियों के साथ हो रहे भेदभाव, अत्याचार आदि को सबके सामने लाने का उनका उद्देश्य पूरा हो रहा है।

रीति काल की विलासी प्रवृत्ति के बाद आधुनिक काल का जन्म हुआ। आधुनिक काल में साहित्य की विविध विधाओं में रचनाएँ की गईं। आधुनिक काल की शुरुआत भारतेंदु युग से होती है। जहाँ नारी चेतना का सूत्रपात होता दिखाई देता है। इस काल में अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन से देश में काफी उत्साह था तथा समाज की बुराइयों को दूर करने का कार्य सुधारकों द्वारा किया गया। साहित्य समाज का दर्पण होता है। भारतेंदु युग में समाज में हो रहे सामाजिक सुधारों को विषय बनाया गया। भारतेंदु युग की अधिकांश रचनाएँ सामाजिक सुधारों से संबंधित हैं। "नारी शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा का चित्रण तथा विधवा पुनर्विवाह की वकालत, बाल विवाह का विरोध आदि भारतेंदु युग की कविताओं के विषय रहे हैं।"[14]

डॉ. आशारानी व्होरा ने आधुनिक युग की नारी लेखनी या कहें कि नारी चेतना को दो भागों में विभाजित किया है। वे कहती हैं, "सदी के पहले 40-50 वर्षों को नारी जागरण का युग कहा जा सकता है और दूसरा युग जो स्वतंत्रता के बाद शुरू होता है उसे नारी प्रगति का युग कहा जाता है।"[15]

भारतेंदु युग के लेखक प्रताप नारायण मिश्र, प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट आदि ने नारियों के शोषण, नारी जागरण, नारी चेतना और नारी वीरता का वर्णन किया है। भारतेंदु युग की रचनाओं में नारियों की वर्तमान दशा और दिशा पर रचनाएँ लिखी गईं, वहीं उनके वीर रूप का भी वर्णन

किया गया है। भारत जननी में भारतेंदु ने दिखाया है कि कैसे एक बहादुर नारी लोगों को युद्ध में हथियार उठाने के लिए प्रेरित करती है।

" शास्त्रों का अभिमान, धनोरी कंकन बांधो।

हाथों की सारी चूड़ियां डालो और उन्हें फाड़कर मुझे मार डालो।

बलवान बनो, अपने पैर मेरे आगे बढ़ाओ।''[16]

राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट और राधाकृष्ण दास जैसे लेखकों ने सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह आदि विषयों को प्रमुखता देकर नारी चेतना की आवाज बुलंद की। लाला श्रीनिवासदास ने अपने उपन्यास रणधीर प्रेममोहिनी में प्रेम विवाह की समस्या को उठाया है। दूसरी ओर, प्रताप नारायण मिश्र ने अपनी रचनाओं में वेश्यावृत्ति और शोषण से पीड़ित नारियों का चित्रण किया है। जगदीश त्यागी लिखते हैं कि, "अधिकांश नाटकों में नारी के परम्परागत रूप का ही चित्रण किया गया है। नाटकीय दृष्टि से उन पात्रों में गतिशीलता और पराक्रम का अभाव दिखाई देता है, किन्तु तत्कालीन नारी को उसकी दयनीय स्थिति से मुक्त करने के लिए किए गए प्रयास और सुधार उन पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।[17]"

द्विवेदी युग में पद्य और गद्य दोनों ही विधाओं का विकास हुआ। लेखकों ने बाल विवाह, बेमेल विवाह, दहेज प्रथा आदि को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। सत्य नारायण कविरत्न ने अपने 'भ्रमरदूत' में नारी शिक्षा के बारे में कहा है किः- "जो नारी शिक्षा का सम्मान नहीं करते, उनकी मातृभूमि महान पापी है।[18]"

हरिऔध ने 'प्रियप्रवास' में माता के विरह-पीड़ित हृदय की छवि चित्रित की हैः "कहाँ है मेरा प्रिय पति, कहाँ है मेरे प्रियतम का सहारा जो दुःख के सागर में डूबी है, वह हृदय हमारा कहाँ है, जिसके आलोक में आज जी सकूं, वह हृदय हमारा कहां है।[19]"

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'साकेत' में नारी की आदर्श छवि का वर्णन किया है। नारी की असहाय स्थिति की कल्पना करते हुए गुप्त जी स्वयं जानते हैं कि उनकी स्थिति इतनी जल्दी सुधरने वाली नहीं है, इसीलिए वे कहते हैंः-"अरे असहाय जीवन! यही तेरी कहानी है, गोद में दूध और आंखों में आंसू।[20]"

नारियों की दुर्दशा के लिए मैथिलीशरण गुप्त जी पुरुषों को जिम्मेदार मानते हुए कहते हैं कि हमने उन्हें पशु समान बना दिया हैः "पालतू पशु-पक्षियों का तो सभी पालन-पोषण करते

हैं, परंतु क्या हमें कभी स्त्रियों की दुर्दशा दिखाई देती है? हमने ही उन्हें पशुता का साधन बना दिया है, उन्हें भोजन-वस्त्र देकर केवल संतान उत्पन्न करने के लिए पाला है।[21]"

छायावाद में नारी को प्रकृति के रूप में अधिक चित्रित किया गया है, परंतु इस युग में संघर्षशील नारी का भी चित्रण किया गया है। सुमित्रानंदन पंत जी ने नारियों को भोग-विलास की दृष्टि से दूर रखने तथा उन्हें मनुष्य के रूप में स्थापित करने का आह्वान किया है। उन्होंने नारियों को मुक्त करने की माँग की -"स्त्री योनि नहीं, मनुष्य भी है। उसे पूर्णतः स्वतंत्र बनाओ, ताकि वह पुरुषों पर आश्रित न रहे।"[22]

गिरिजा कुमार माथुर जैसे कुछ कवि हैं जो कबीर जैसे संत कवियों की भाषा बोलते हैं, वे स्त्री को पुरुषों के मार्ग में बाधा मानते हैंः "कोहरे के परदे की तरह आँखों को मत ढको, जीवन में कर्म के क्षेत्र में पुरुषों को जीने दो।"[23]

5.1.3 हिन्दी साहित्य में नारी चेतना

आधुनिक युग में लेखकों ने हर विषय पर लिखा है। यह युग नारी चेतना की दृष्टि से बहुत व्यापक है। लेकिन इस युग में नारी चेतना काव्य की अपेक्षा गद्य में अधिक दिखाई देती है। प्रेमचंद से पहले के कहानीकारों ने अधिकतर सुधारवादी उपन्यास और नाटक लिखे हैं। इनमें पंडित बालकृष्ण भट्ट, हरिऔध, श्रद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास, भारतेंदु हरिश्चंद्र, किशोरीलाल गोस्वामी, ब्रजनंदन सहाय आदि शामिल हैं। इनकी रचनाओं में नारियों की समस्याओं का चित्रण तो हुआ है लेकिन उन समस्याओं का समाधान कहीं नहीं दिया गया है। इनके वर्णन का मुख्य विषय नारी शिक्षा, बेमेल विवाह, विधवा विवाह आदि हैं।

प्रेमचंद के युग के कहानीकारों ने नारियों से जुड़ी कई समस्याओं को भी आवाज दी है। बाल विवाह, बेमेल विवाह, विधवा समस्या, वेश्या समस्या आदि प्रेमचंद, प्रसाद, अश्क आदि की रचनाओं में देखने को मिलती है। वेश्याओं की समस्या, दहेज प्रथा की समस्या, बाल विवाह, बेमेल विवाह आदि इस युग का आधार रहे हैं। इस युग में हम नारियों को आगे आकर अपने साथ हो रहे अन्याय और शोषण का सामना करते हुए देखते हैं।

प्रेमचंद के बाद का युग परिवर्तन का युग है। इस युग में मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ ज्यादा लिखी गई हैं। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के कारण इस युग में नारियों की मानसिकता का सफलतापूर्वक चित्रण किया गया है। इस युग की नारियों ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाया है। त्रिवेणी, परीक्षा गुरु, चनेप्रभा, दलित कुसुम, सेवासदन, तितली, वैश्यपुत्र, जीवन की मुस्कान,

कर्मभूमि, कायाकल्प, भिखारिनी, बंधुआ औरत की बेटी, अनाथ की पत्नी, त्यागमयी, शेखर एक जीवनी, सुनीता, दादा कामरेड, इंदुमती, उसने कहा था, बड़े घर की बेटी, बेटों वाली विधवा, नर्क की आग, बलात्कार, घर गृहस्थी, जहां लक्ष्मी कैद है, मुखिया की दावत, ध्रुवस्वामिनी, संन्यासी, रक्षाबंधन, बिना बेटी के दीप, वहीं हुआ पानी आदि उपन्यास, कहानी और नाटक सभी नारी चेतना से जुड़े हैं।

लेखकों ने नारियों को आधार बनाकर लिखा। उन्हें एक वस्तु के रूप में चित्रित करके अपनी रचनाओं में जगह देना तो सही समझा, लेकिन अपनी रचनाओं को हमारे साहित्यिक इतिहास में जगह देना उचित नहीं समझा। वे रचनाएँ या तो अपने पतियों या प्रेमियों की रचनाओं के साथ जुड़ गईं और उनके नाम से पहचानी जाने लगीं या कहीं खो गईं और उनका कोई अता-पता नहीं है। कुछ रचनाएँ और उनसे जुड़े कवि इन सबके बीच अपना अस्तित्व बचाने में सफल रहे और ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उनकी रचनाएँ आम लोगों के बीच प्रसिद्ध हुईं और उन्हें विभिन्न अवसरों पर गाया गया।

यदि हमारा साहित्य मौखिक होता तो हम अनेक नारियों की रचनाएँ सुनते। लेकिन जब साहित्य लेखन की बात आई तो नारियाँ पिछड़ गईं। यही कारण है कि प्राचीन काल में हमें कोई भी नारी कवि देखने को नहीं मिलती। मध्यकाल में भी हमने उन कवियों की कविताएँ देखी हैं जिनकी कविताएँ आम लोगों में लोकप्रिय हैं और कुछ अवसरों पर गाई जाती हैं। अलवर की कवयित्रियाँ सहजोबाई, इंदामती, मीराबाई, वृषभान कुमारी, बनीथनी जी, कृष्णावती, प्रेमसखी, शेख रंगरेजिन, रत्नावली आदि मध्यकाल की कवयित्रियाँ हैं, जिनमें से कुछ ही ऐसी हैं जिनके पद हमें स्वतंत्र रूप से पढ़ने और सुनने को मिलते हैं।

संत कवियित्री सहजोबाई ने संतों की संगति में रहने की महिमा का वर्णन किया है। संतों की संगति में रहने से मनुष्य को अपने दोषों को देखने की दृष्टि मिलती है। सहजोबाई कहती हैं कि "संतों की संगति में काम हंस बन जाता है। अच्छाई-बुराई को छोड़कर मोती खाता है।[24]"

सूफी कवियों में हमें राबिया अल बदवीर नामक एक सूफी महिला संत देखने को मिलती हैं। संत राबिया का मानना है कि ईश्वर का प्रेम अटूट है। वह ईश्वर की भक्ति में लीन रहना चाहती है। वह प्रेम को दिव्य और अलौकिक बताती है। राम काव्य के कवियों में तुलछराय, मधुर अली आदि हैं, जिनकी रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। कृष्ण काव्य की कवियों में मीराबाई, वृषभान कुंवर, छत्र कुंवारी बाई, कृष्णावती, ब्रजदासी, रानी बांकावती आदि हैं, लेकिन इन सभी की अधिक रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। भक्तिकाल की मीरा और लल्लेश्वरी ऐसी कवियित्री थीं, जिनके पदों में

नारियों के शोषण और अत्याचार की प्रवृत्ति के विरुद्ध विद्रोह दिखता है। मीरा जहाँ राजस्थान के राजघराने से ताल्लुक रखती थीं, वहीं लल्लेश्वरी के पद कश्मीर की गलियों में मशहूर थे। यही कारण था कि चाहकर भी उनकी आवाज को दबाया नहीं जा सका।

मीरा ने नारियों के सामाजिक और पारिवारिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई और विद्रोही तेवर अपनाए, जो जाहिर तौर पर उस समय के समाज को स्वीकार्य नहीं था। इसीलिए उन्होंने मीरा को मारने के लिए तरह-तरह के उपाय अपनाए। लेकिन मीरा ने 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' कहकर समाज को बता दिया कि उनके जीवन में किसी अन्य रिश्ते का कोई स्थान नहीं है। मैनेजर पांडे का यह कथन मीरा के अदम्य साहस और विद्रोही स्वभाव का परिचय देता है। "मीरा ने उस आतंकित करने वाली दुनिया और उसके भयावह धर्म के खिलाफ खुलकर विद्रोह किया। उनके काव्य में एक ओर सामंती समाज में महिलाओं की पराधीनता और उस व्यवस्था की बेड़ियों का पूर्ण खंडन है तो दूसरी ओर उससे मुक्ति के लिए पागलपन की हद तक संघर्ष भी है।[25]"

रीतिकाल के कवि प्रवीण राय, रूपमती बेगम, तीन तरंग, शेख रंगरेजिन, सुंदर कली आदि हैं। आधुनिक काल के कवि/लेखिकाएंप्रताप - कुंवरि बाई, कमल कुंवर तोरणदेवी शुक्ला लाली, कमल कुमारी, होमवती देवी, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, शांति मेहरोत्रा, सुभे कुमारी चौहान, विद्यावती कोकिल, शकुंतला माथुर, तारा पांडे, कीर्ति चौधरी, महादेवी वर्मा, सुमन राजे, कुसुम अंसल, रमणिका गुप्ता, कमल जैन, अनामिका, कीर्ति केसर, दिनेश नंदिनी डालमिया, शशि शर्मा, शीला गुजराल, कात्यायनी आदि हैं।

झांसी की रानी नामक प्रसिद्ध कविता सुभद्रा कुमारी चौहान की है। उन्होंने नारियों को देश की रक्षा के लिए आह्वान करते हुए चुनौती दी हैः "यदि बलवान पुरुष डरपोक हो जाएं, तो हमें वरदान दो सखी। निर्बल महिलाएं उठकर देश में भीषण युद्ध लड़ें सखी। पंद्रह करोड़ असह्य योगिनियाँ ब्रह्माण्ड को हिला दें, मित्र। लक्ष्मी को भारत वापस लाने के लिए लंका काण्ड रचें, मित्र।[26]"

आधुनिक कवियों की कविता में विषयों की विविधता है। उन्होंने छोटे-बड़े अनेक विषयों पर कविताएँ लिखी हैं। शकुंतला माथुर की कविताएँ बताती हैं कि एक नारी अपने माता-पिता के घर जाने के लिए कितनी आतुर होती हैः "मैं सितंबर में आई थी और पूरा एक साल बीत गया, मुझे अपने माता-पिता का घर याद आया, भैया मुझे यहां ले चलो, मैं दो बार लौटी, पूरा एक साल बीत गया।[27]"

सुशीला टाकभौरे की कविता में विरह के स्वर गूंजते देखे जा सकते हैंः “माता-पिता ने मुझे गूंगा पैदा किया, परिवेश ने मुझे लंगड़ा बनाया, परंपरा चलती रही, लेकिन बैसाखियां चरमराती रहीं अतिरिक्त बोझ से बेचैन और फैला हुआ मेरा हृदय दहाड़ता है कि बैसाखियां तोड़ दूं।[28]”

सदियों से मूक रही एक नारी की स्थिति को व्यक्त करते हुए सुमन राजे कहती हैंः “मैं चीखना चाहती हूं, लेकिन मैं नहीं चिल्ला सकती, मेरे होंठ सील कर दिए गए हैं, मुझ पर मुहरें लगा दी गई हैं।''[29] लेकिन आधुनिक युग के गद्य लेखकों ने भी नारी चेतना को ध्यान में रखते हुए अपनी रचनाएँ लिखी हैं। आधुनिक युग के आठवें दशक तक नारी चेतना की बाढ़ आ चुकी थी। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में महिला लेखिकाओं ने अपना योगदान दिया है। महादेवी वर्मा ने नारियों की कभी न बदलने वाली स्थिति के लिए स्वयं नारियों को ही दोषी ठहराया और कहा कि जब तक वे स्वयं जागरूक नहीं होंगी, तब तक उन्हें अपने अधिकार नहीं मिल सकते, क्योंकि वे अधिकार तो पाना चाहती हैं, लेकिन अधिकार पाने के लिए उनके पास ज्ञान नहीं है।

आधुनिक युग की प्रमुख लेखिकाओं में मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, कृष्णा अग्निहोत्री, मृणाल पांडे, नासिरा शर्मा, चित्रा मुग्दल, प्रभा खेतान, शिवानी, उषा प्रियंवदा, क्षमा शर्मा, नमिता सिंह, जया जादवानी, मंजुल भगत, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, इंदु जैन, कुसुम अंचल, मृदुला सिन्हा आदि हैं।

5.2 कहानी संग्रहों में नारी चेतना

अलका सरावगी समकालीन कथा साहित्य में युगान्तर उपस्थित करने वाली कथाकार हैं, इन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में व्यक्ति की मनोदशा का वर्णन सहज रूप में किया है। इनकी कहानियों और उपन्यासों का कथा क्षेत्र कलकत्ता शहर है और इसमें सन्देह नहीं कि अलका सरावगी अपने परिवेश के रग-रग से परिचित है। इन्होंने आधुनिक हिन्दी कथा क्षेत्र में संवेदनशीलता और वातावरण की मार्मिक तथा सूक्ष्मतलदर्शी पकड़ के कारण अपना स्मरणीय स्थान बना लिया है।

कई अन्तरंग स्रोतों से उपलब्ध जानकारियों के अनुसार सन् 1996 में ‘कहानी की तलाश मे’ कहानी-संग्रह का प्रकाशन हुआ जो कि इनका पहला कहानी संग्रह है। इस कहानी संग्रह में छोटी-छोटी सत्रह कहानियाँ हैं, जिनमें व्यक्ति की रोजमर्रा की जिन्दगी की झलक दिखाई देती है। इन कहानियों में स्त्री विमर्श का एक नया रूप सामने उभरकर आया है। अलका सरावगी का दूसरा कहानी संग्रह- ‘दूसरी कहानी’ का प्रकाशन सन् 2000 में हुआ। इस कहानी संग्रह की कहानियाँ ''यथार्थ को तथ्य-सीमित करने की रूढ़ि को ध्वस्त करती हैं। घटनाओं का बोझिल

आडम्बर छोड़कर वे कहानी विधा की नयी मुक्ति का ऐसा संकेत देती हैं कि हम कहानी को गद्य-कथा या कथा-निबन्ध की तरह पढ़ सकें। वे तथाकथित यथार्थवादी कहानी के ढ़ांचे को विचलित कर मानव व्यवहार और प्रकृति के आधे-अधूरे प्रारूप या पाठ की तरह दिख सकती हैं। इसी अधूरेपन, इसी अनहोनी में अलका सरावगी की कहानियों का अर्थ छिपा है।

"'दूसरी कहानी' कहानी संग्रह की कहानियाँ ('पार्टनर', 'एक पेड़ की मौत', 'दूसरे किले में औरत', 'ये रहगुजर न होती', 'रिपन स्ट्रीटेर परवीन अख्तर', 'कनफेशन') संकेत हैं कि शायद जीवन पूर्णता या सार्थकता की संभावना इसी अपूर्णता या अधूरेपन में है। देखने की चीज यह है कि इस कथा-कल्पना में क्रीड़ा-वृत्ति या विनोद-वृत्ति स्थगित नहीं है, पर वह प्रायः एक तरह के जीवन विषाद या अवसाद का ही मार्मिक प्रत्यक्ष है। इस अवसाद को महान बनाने की भावुकता से मुक्त अलका सरावगी का कथा-मार्ग साधारण या मामूली पर भरोसा टिकाता है, जो फिर इस ओर इशारा है कि साधारण में ही छिपा है, गैर- साधारण या असाधारण का मर्म।"[30]

अलका सरावगी की कहानियाँ अपनी बनावट या संरचना, स्वभाव या प्रकृति, शिल्प में हिन्दी कहानी की परम्परा में एक अलग और नई पहचान लेकर उपस्थित होती हैं, अतः एक नयी कथा धारा का आरम्भ इससे होता है। यह हिन्दी की पहली कथाकार है, 'जो प्राणों में धुले हुए रंग' और 'मन के रंग' को यानी मनुष्य के राग-विराग और प्रेम को, दुःख और करूणा को, हास-उल्लास और पीड़ा को अपनी कहानियों में एक साथ लेकर 'आत्मा के शिल्पी' के रूप में उपस्थित होती हैं। साथ ही वे मनुष्य का चित्रण एक ठोस जमीन पर, एक काल विशेष में करती है। अपनी कहानियों के माध्यम से अलका सरावगी ने सामाजिक जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति की है और हिन्दी कथा साहित्य में अपनी स्थिति निर्मित की है। कहानी के द्वारा समाज के उन सभी पक्षों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जो अनगढ़ है, विसंगतिपूर्ण है और जिनकी अपनी राजनीति, धर्म, मूल्य बोध की सीमा और अर्थवक्ता है।

अलका सरावगी की कहानियों में समाज की आर्थिक दशा के साथ-साथ संस्कृति के उत्थान-पतन की स्थितियाँ भी व्यंजित हुई हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों, रूढ़ियों, परम्पराओं और आधुनिकता बोध के स्वस्थ एवम् अस्वस्थ पक्षों का चित्रण भी इनमें देखा जा सकता है, साथ ही नारी की स्थितियों के विविध रूप भी प्रकट हुए हैं। अधिकांश नारी पात्रो में समाज से विद्रोह करने की क्षमता है, पर उन नारी पात्रों की संख्या अधिक है जो रूढ़ियों, अंधविश्वासों, आडम्बरों और दारिद्य की शिकार हैं। जिनकी आकांक्षाएँ, मनोकामनाएँ किन्हीं स्तरों तक उभरते-उभरते मरण का वरण करती हैं। 'कहानी की तलाश में' कहानी संग्रह की कहानी 'बहुत दूर है आसमान'

में अलका सरावगी ने ठीक ही लिखा है- ''क्या यही जिन्दगीं है लड़कियों की? क्या मेरी गुल्लू बचपन में ही अपनी मर्जी से खेल-कूद नहीं सकती? क्या लड़कियों को इतना भी अधिकार नहीं है? गुल्लू कितनी ऊँची-ऊँची पैंगें लेती है झूले पर। दीवाल पर चढ़कर बिना डरे दौड़ती है। उसके बराबर के उम्र के लड़के तो घुग्गू हैं उसके सामने। कितना जीवन है उसमें! तो क्या मैं यह मान लूँ कि लड़कियों को बचपन से ही खुली हवा नहीं मिल सकती?"[31] इन नारियों की अपनी अनूभूति का आभास, किन्हीं पात्रों को हुआ है पर अनेक ऐसी हैं जिनकी चीख नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह जाती हैं।

5.2.1 'कहानी की तलाश में' में नारी चेतना

'कहानी की तलाश में' में सत्रह कहानियों का संकलन है। इस कहानी संग्रह की कहानियों को जीवन की कहानी कहा जा सकता है। इस कहानी संग्रह की दो कहानी 'कहानी की तलाश में' और 'हर शै बदलती है' आज की कहानी परम्परा से अलग है। कुछ कहानियाँ चरित्र प्रधान हैं लेकिन उनका मर्म चरित्र के मनोविज्ञान को उद्‌घाटित करने के बजाय आधुनिकतावादी जीवन की संवेदनहीनता को उजागर करना है, ऐसी कहानियों में 'ख़िजाब', 'महँगी किताब', 'सम्भ्रम' हैं। कई कहानियों में नारी मन के द्वंद को भी उजागर किया गया है। कहानी संग्रह की पहली कहानी 'कहानी की तलाश में' एक ऐसी लड़की की कहानी है जो कहानी लिखती है। फाइलों को हाथ में लेकर वह एक अन्धी गली में अक्सर जाती दिखाई देती है। एक साधारण व्यक्तित्व वाला पुरुष उस लड़की से प्रभावित हो जाता है परन्तु उससे बात करने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। लड़की सभी से बातें करती हैं, लेकिन उस प्रौढ़ व्यक्ति की तरफ उसका जरा भी ध्यान आकर्षित नहीं होता है, जिस कारण उसे खीझ होती है। ''कई बार मुझे खीझ होती है कि वह खुद ही मुझसे बात क्यों नहीं करती। मैंने देखा है कि वह मकान के दरबान से, लिफ्टमैन से, खेलते हुए बच्चों से, प्रायः हर परिचित से बातें करती है और जिन्हें नहीं जानती उन्हें भी बहुत दिलचस्पी से देखती है। मुझे लगता है कि वह जरूर कहानियों की तलाश में है। उसने पहले-पहले तो कई बार मेरी तरफ भी दिलचस्पी से देखा था, पर अब उसकी मुझमें कोई दिलचस्पी नहीं रही।"[32] कहानी के अन्त में पुरुष को यह समझ में आ जाता है कि वह लड़की कहानी लिखती है और उसे जहाँ कहानी मिलती है वह उन्हीं से बात करती है, उन्हीं को देखती है और उसके पास कोई कहानी नहीं है इस कारण वह उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रखती है।

'हर शै बदलती है' चिन्ता और तनावग्रस्त एक स्त्री की कहानी है। चिड़चिड़ाहट उसके जीवन का अहम् हिस्सा है। अपने जीवन से खिन्न उसके मन में हजारों प्रश्न और सैकड़ो बातें है।

सप्ताह का पहला दिन यानी 'सोमवार' उसमें जीवन के नई शुरुआत का उत्साह जगाता है। ''आज सोमवार है सप्ताह का पहला दिन। हर महीने के पहले दिन की तरह आज का दिन भी मन में हिम्मत बंधाता है या कहें उत्साह जगाता है। कि जिन्दगी को आज से एक नए ढ़ंग से शुरू किया जा सकता है।''[33] इस कहानी का मूल यह है कि रोजमर्रा की जिन्दगी का मतलब घिसापिटा नहीं होता है, बल्कि हर दिन नया है।

'बीज' कहानी एक ऐसी नारी की कहानी है जो अपनी लम्बी बीमारी से परेशान होकर दुनिया से नाता तोड़ लेती है और उदासी भरे जीवन को अपनाकर अकेले रहने को ही अपनी नियत मान लेती है। ''पिछले तीन महीनों से जो निपट अकेलेपन का अहसास हर समय उसके अन्दर रहता था, आज वह पत्थर की तरह उसकी सासों के बीच अटक गया था।''[34] परन्तु कुछ समय बाद वह अपनी टूटी हुई हिम्मत को बटोरकर अपनी बीमारी से लड़ते हुए एक नयी चेतना के साथ फिर से जिन्दगी का स्वागत करती है।

'मिसेज डिसूजा के नाम' कहानी एक माँ की है जिसकी छह साल की बेटी वंदिता है। वंदिता की माँ संगीतज्ञ होने के कारण अपने संगीत के कार्यक्रमों में व्यस्त रहती है। वह अपनी छात्रा बेटी की प्रधानाध्यापिका को एक शिकायती पत्र लिखती है उस पत्र के वक्तव्यों के द्वारा वह अपने को एक सफल माँ और स्त्री के रूप में खड़ी करना चाहती हैं। ''माफ कीजिएगा मिसेज डिसूजा, शायद आप को लग रहा होगा कि मैं अपनी खामियों को छिपाने के लिए कितने तर्क जुटा रही हूँ। हाँ खामियाँ तो रह ही जाती हैं.....चाहती तो हम सब यही है कि जीवन हर तरह से पूर्ण और चरम उत्कृष्ट हो, लेकिन किस कीमत पर?''[35] मिसेज डिसूजा द्वारा बतायी गयी खामियों को झुठलाने के लिए उसे हजारों दलीलें देनी पड़ती हैं।

'टिफिन' कहानी छात्रा सारिका की कहानी है जो विद्यालय के क्रिया-कलापों को रोज अपनी दादी को सुनाती है। सारिका अपनी दादी के सबसे निकट है। विद्यालय की घटनाओं में वह सबसे ज्यादा टिफिन की बातें दादी को बताती है। उसकी सभी सहेलियाँ एक साथ टिफिन करती हैं। उसकी एक सहेली है विद्या जो हमेशा 'टिफिन' में 'मूड़ी' (सेंकी हुई लाई) लाती है। कहानी के अन्त में सारिका की सहानुभूति विद्या के प्रति इन वाक्यों में दिखाई देती है। ''सारिका ने शान्त स्वर में कहा-'आप लिखिए-चार सालों में विद्या एक बार भी टिफिन लेकर स्कूल नहीं आई।''[36]

एक स्त्री जो पेशे से अध्यापक है, नारी होने की सजा को भुगतती है। बचपन से उसकी अभिलाषा स्वतन्त्र जीवन की चाह होती है। उसकी बेटी गुल्लू है। जब कोई उसके लिए अश्लील

बातें दीवार पर लिख जाता है तो वही बन्धन अपनी बेटी के जीवन में देखती है जो नारी होने के कारण उसके जीवन में लगाये गये थे। 'बहुत दूर है आसमान' की नायिका का जीवन औरत होने के कारण त्रासदी से गुजरता है और जब वही परिस्थितियाँ उसकी बेटी के जीवन में आती हैं तो वह उनका विरोध करना चाहती है पर पति द्वारा उसे समझा दिया जाता है। ''निखिल अचानक नींद में कुछ बुदबुदाया। पता नहीं उसे भ्रम हुआ था वह सचमुच ही कह रहा था- और हम कर ही क्या सकते है।''[37] समाज की व्यवस्था में समझौता कर जीना ही नारी की नियति है।

'एक व्रत की कथा' बछवारस के व्रत पर आधारित कहानी है। इस कहानी में नारी जीवन में व्रत, उपवास का महत्व दृष्टव्य होता है। ''हर व्रत की कहानी में व्रत भंग करने वाली के लिए पति या बच्चे के अमंगल से सम्बन्धित कुछ न कुछ सजा तजवीज रहती थी। यह समझते हुए भी कि कहानी सिर्फ कहानी ही होती कुछ भूल हो जाने पर कई दिन तक उसके दिमाग में यह बात घूमती रहती सचमुच किसी को कुछ हो गया तो?''[38] इसी कारण परम्परावादी लकीर पर चलते हुए प्रत्येक स्त्री चाहे वह पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ इन परम्पराओं का पालन करती है। 'एक व्रत की कथा' कहानी परम्पराओं के महत्व को स्वीकार करती है।

'प्रतीक्षा के बाद' कहानी में इन्तजार की बेचैनी और इन्तजार खत्म होने का आनन्द दोनों को देखा जा सकता है। इस कहानी में डॉक्टर से मिलने के लिए प्रतीक्षा करते हुए व्यक्तियों में एक व्यक्ति जो बेताबी से अपनी बारी का इन्तजार कर रहा होता है कि अचानक दो युवा लड़के डॉक्टर को साथ ले जाने के लिए आ जाते हैं। ''अचानक चेम्बर का दरवाजा खुला और दो युवा लड़के हड़बड़ाते हुए अन्दर घुस आए।''[39] प्रतीक्षा में बैठा व्यक्ति विचार करने लगा कि यदि उसकी प्रतीक्षा का उसे सकारात्मक फल नहीं मिल पाया तो उसका अब तक का इन्तजार व्यर्थ हो जायेगा, परन्तु जब डॉक्टर उन लड़को के साथ जाने से इनकार कर देता है तो वह राहत की सांस लेता है। उसकी प्रतीक्षा समाप्त होती है तो वह अपनी बारी आने पर हडबड़ा जाता है पर उस हड़बड़ाहट में भी एक खुशी होती है।

'सम्भ्रम' एक भ्रम पर आधारित कहानी है। अपने दुःखों को भूलने और खुशियों की तलाश में व्यक्ति एक भ्रम में जीना भी स्वीकार कर लेता है। कनक अपने जीवन की उदासी और खालीपन को भरने के लिए एक मुँह बोला रिश्ता बहन का बनाती है। अपने बेटे और परिवार से मिलने वाले सुख को वह अपने द्वारा बनाये गये रिश्ते में खोजती है। चेहरे पर हँसी का नकाब ओढ़े वह आधुनिकता की चकाचौंध में खो जाती है, परन्तु उसकी इस झूठी हँसी को उसकी मुँह

बोली बहन और उसका परिवार भली-भाँति समझते है। 'सम्भ्रम' कहानी का उद्देश्य व्यक्ति की संवेदनहीनता को उजागर करना है।

'ख़िजाब' कहानी दमयन्ती जी की कहानी है। वृद्धावस्था के उपरान्त भी दमयन्ती जी स्वतन्त्र जीवन चाहती हैं। प्रेम और मोह में सिर्फ बन्धन है इस कारण वह अपने परिवार के साथ न रहकर एकाकी जीवन व्यतीत करती हैं। बालों में ख़िजाब लगाये रहने वाली दमयन्ती जी अपना जीवन अपनी शर्तो पर ही जीना पसंद करती हैं। यह कहानी आधुनिकतावादी जीवन की विसंगतियों को उजागर करती है।

'महँगी किताब' कहानी सुशीला जी और एक लड़की के जीवन पर आधारित है। सुशीला जी के व्यक्तित्व और व्यवहार से प्रभावित लड़की का अपने व्यक्तित्व को उन्हीं के अनुसार ढ़ाल लेने की कोशिश के फलस्वरूप वह उन्हीं के जैसा व्यवहार करने लगती है। उस लड़की के सहयोगी की जो उसके साथ किताब के सम्पादन का काम करता है उसके प्रति एक धारणा बन जाती है, परन्तु बाद में उस धारणा का खण्डन भी हो जाता है। ''मेरे मन में उसके लिए सहानुभूति उमड़ आई। एक तरह से अपने स्वभाव के खिलाफ मैंने निर्णय ले लिया कि इसकी कोई गलती नहीं है इसकी ईमानदारी में मेरा विश्वास है।''[40]

'जोड़-घटाव' कहानी को रचने के लिए विश्वविद्यालय के प्रध्यापकों को माध्यम बनाया गया है। इस कहानी की नायिका सुधा जी और विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के बीच आपसी काट-छांट का लेखा जोखा है। ''तुमसे जलने वालों की तो मैं एकदम छुट्टी कर दूँगा जब तुम्हारी कविता की किताब का विमोचन हिन्दी का सबसे बड़ा अलोचक करेगा-मेरी जान पहचान है भाई सबसे।''[41] प्रोफेसरों की शैक्षिक राजनीति को सुधा अच्छी तरह समझती है।

'पिस्सू और कलम घिस्सू' कहानी लेखकों के जीवन का दस्तावेज है। लेखक कलम घिसकर जीवन तो व्यतीत कर सकते है परन्तु जीवन में चकाचौंध नहीं ला सकते। ''उसकी पहली कहानी का अभी उसे साढ़े तीन सौ रूपया मिला था और वह भी हिन्दी की सुनकर उसकी सहेली के चेहरे पर तरस खाने का भाव रोकते-रोकते भी झलक आया था। अरुणा पहले घर में सलवार-कुरतियाँ सिलवा-सिलवाकर दुकानों में बेचती आई थी। अब उसने खुद की दुकान खोल ली थी। इतना रुपया तो वह एक दो सलवार कुरतियाँ बेचकर भी कमा लेती है।''[42] आज दिखावे का युग हैं और जहाँ सादगी होगी वही विकास अवरुद्ध होगा। अपनी उन्नति के लिए व्यक्ति को दिखावे और धूम धड़ाके को अपनाना होगा। ''खाली लिखने पढ़ने से क्या होता है। मुझे देखो मैंने जब अपने 'चीफ' को राष्ट्रीय पुरस्कार दिलवाने की ठानी तो क्या-क्या पापड़ नहीं बेले। ओह कितना

भयंकर कठिन काम था। आखिर राष्ट्रीय पुरस्कार का मामला था।"[43] आधुनिकतावादी विचार को उजागर करना इस कहानी का उद्देश्य है।

"शायद यह आम हिन्दुस्तानी आदत ही है कि हम जब भी कहीं बैठे किसी का इंतजार करते होते हैं तो हम आसपास के लोगों को बड़ी दिलचस्पी से देखते हैं और उनके बारे में कुछ उलटे-सुलटे निष्कर्ष निकालते रहते है।"[44] 'उद्विग्नता का एक दिन' ऐसी ही महिला की कहानी है जो ऊब से बचने के लिए अपने आस-पास के लोगों की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करती है और पुरानी बातों का भी स्मरण करती है। वास्तव में यह एक अच्छा माध्यम है अपने अकेलेपन को खत्म करने का। भीड़ में कुछ छाँटो और उसके साथ मन से जुड़ जाओ। इस प्रक्रिया से एक अलग प्रकार के आनन्द की प्राप्ति होती है। 'उद्विग्नता का एक दिन' कहानी की नायिका ने अपनी मानसिक उलझन को कम करने के लिए यही माध्यम अपनाया है। ''आप को मुझसे शिकायत हो सकती है कि मैं क्यो इस तरह की फालतू बातों से आप का और अपना समय नष्ट कर रही हूँ पर दरअसल पिछले दो-एक साल से एक गहरी मानसिक उलझन के समय मुझे इन पेड़ों और-चिड़ियों ने ही संभाला है।"[45] यह कहानी व्यक्ति को समझौता पूर्ण जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है।

व्यक्ति की जिन्दगी एक पहेली की तरह है जिससे हम अनजान हैं। जीने के हर क्षण में मौत का डर है। मौत का एक दिन मुकम्बल है, जब-जहाँ-जैसे होनी है, वह-वहाँ-वैसे होगी तो फिर इंसान मौत के डर के साथ क्यों जीता है? 'मौत का एक दिन मुअय्यन है, नींद क्यों रात भर नहीं आती' कहानी व्यक्ति की इसी कश्मकश पर आधारित है। ''मेरे दिमाग में रह-रहकर तरह-तरह की कल्पानाएँ आती रहती हैं, जैसे कि यदि अभी वह मिनी बस तेजी से दौड़ती हुई फुटपाथ पर चढ़कर मुझसे टकराकर निकल जाए तो यहाँ चौरंगी रोड पर इंडियन म्यूजियम के सामने दिखता हुआ यह दृश्य, यह लड़की जो शायद कालेज पहुँचने की जल्दी में फैशनेबल सफेद-पीले रंग की सलवार-कुरती और सुनहरे बकल सांवले सफेद जूते पहने तेज-तेज चल रही है, सब जैसे हवा हो जाऐगें और कैसे सड़क पर मेरी लाश के इर्द-गिर्द सब इकट्ठे होकर कुछ-कुछ कहेंगे जिनमें शायद लड़की भी शामिल होगी।"[46] मौत का डर जो घबड़ाहट पैदा करता है शायद उसे ही वेदना कहते हैं। इस वेदना में ही हम हर क्षण जीते और मरते हैं।

'लाल मिट्टी की सड़क' कहानी नारी द्वंद पर आधारित है। वन्दना अपने जीवन के अकेलेपन, ऊब और उदासी से निजात पाना चाहती है। ''वन्दना ने करवट बदलकर अपने मन को उस बेचैनी से मुक्त करने की कोशिश की, जो आधी नींद तक पहुँचते-पहुँचते न जाने कहाँ

से आकर उसे दाबने लगी थी। अधजगी सी हालत में उसका दिमाग इस बैचेनी का कोई कारण खोज नहीं पा रहा था। यह घबराहट है या एक तरह का खालीपन सा?''[47] अपने अकेले होने की अनुभूति और खालीपन को भरने के लिए वह यायावर जीवन का विकल्प तलाशती है। ''लाल मिट्टी की सड़क उसे बुला रही थी, पर उसने सोचा की सविता के साथ ठीक रहेगा और थोड़ी रोशनी बढ़ने का इन्तजार भी।"[48]

खुशमिजाज होना अच्छा है पर जरूरत से ज्यादा सीधा और हँसमुख होना हँसी का पात्र बना देता है। 'आप की हँसी' कहानी व्यक्ति के इसी स्वभाव को उजागर करती है। ''पहली नजर में वह मुझे एक बहुत खुशमिजाज आदमी लगा जो हमारे आने से बहुत खुश था। शायद इसीलिए बात-बेबात हँस पड़ता था।''[49] नत्थू बाबू के घर में रहने वाला वह आदमी अपनी सादगी और भोलेपन के कारण लोगों के बीच उपहास का पात्र बनता है। ''गाड़ी चलने पर मैंने नत्थू बाबू के उस दूर के रिश्तेदार से पूछा-'यह आदमी, जो नत्थू बाबू के यहाँ काम करता है कौन है? उन्होंने मुझसे कहा- कौन वह पगला? दूर का रिश्तेदार है या कहिए कि मुफ्त का नौकर है।''[50] नत्थू बाबू के दूर के रिश्तेदार या मुफ्त के नौकर के पागल होने का प्रमाण उसकी हँसी है। ''अच्छा भला आप ही बताइये बिना पागल हुए कोई इतना हँस सकता है?"[51] आधुनिकतावादी और संवेदनहीन इस समाज में जहाँ संवेदना का कोई स्थान नहीं है वहाँ व्यक्ति का भावात्मक स्वभाव उसे पागल करार देता है।

5.2.2 'दूसरी कहानी' में नारी चेतना

"'दूसरी कहानी' समकालीन कहानी के प्रचलित ढ़र्रे से अलग जाकर कहानी के लिए एक नई संभावना का संकेत है।"[52] 'दूसरी कहानी' संग्रह अट्ठारह कहानियों का संकलन है। प्रत्येक कहानी की पृष्ठभूमि में नये-नये विषयों का समावेश किया गया है। इस कहानी संकलन की पहली कहानी 'ये रहगुजर न होती' नारी जीवन पर पुरुष सत्ता के नियन्त्रण पर आधारित है। बचपन से ही उसने बाबा की सत्ता को परिवार पर हावी होते देखा था और आज भी उसके जीवन पर बाबा की उसी सत्ता की छाया थी। ''छोटे से अहाते में घुसकर वह बैठक के सामने पहुँची। वह बैठक में दरवाजे के पास उसी तरह उसी पुरानी कुर्सी पर बैठे थे, जैसा कि उसे डर था कि वे बैठे होगें। बैठक खाली पाने की उम्मीद फुस्स होने पर एक क्षण के लिए उसमें गहरी हताशा भर गयी। उसके अन्दर फिर वही बचपन वाला खयाल उगा कि कितना अच्छा होता कि इस मकान के अन्दर घुसने की कोई ऐसी सीढ़ी होती, जो इस बैठक के रास्ते से गुजरे बिना भी ऊपर ले जाती। पर अब वह चूँकि बड़ी हो गयी थी, उसके दिमाग में यह बात आयी कि तब तो बैठक

भी शायद उसी सीढ़ी के पास होती।''[53] 'ये रहगुजर न होती' कहानी पुरुष सत्ता की पंगु मानसिकता को उजागर करती है।

'दूसरी कहानी' एक माँ बेटे की कहानी है। ''अपर्णा एक कहानी लिखना चाहती है पिछले पन्द्रह वर्षों से। अपने जीवन की पहली और अन्तिम कहानी।''[54] नौवें साल में लिखी इस कहानी में अपर्णा ने इस बिन्दु पर आकर यह महसूस किया कि माँ बेटे की इस कहानी में दुःख सेंध लगाने लगा है। सुदर्शन उसके सुख का आधार है और सुदर्शन की बीमारी उसके जीवन को दुःख का घर बना देती है। माँ बेटे की इस कहानी में अपर्णा ने दुनिया को घुसने नहीं दिया था। कहानी का अन्त हालाँकि सुखात्मक है और कहानी अनिवर्चनीय आनन्द पर खत्म होती है पर यह आनन्द कब तक? वह जानती है दुःख फिर कभी चुपके से उसके जीवन में अपनी पैठ बना लेगा।

अछूते प्रेम का एहसास 'पार्टनर' कहानी का मूल है। कलकत्ते से तीन सौ किलोमीटर दूर बने एक विश्राम गृह में आयी एक लड़की और चौदह पन्द्रह साल के लड़के के बीच दोस्ती के रिश्ते से कहानी की शुरुआत होती है और यह दोस्ती अन्तर्मन में छुपे प्रेम को जन्म देती है। ''कई लोगों ने उसके जाने के बाद अपने अन्तर्मन में छुपाकर रखे गये ऐसे कई किस्से एक-दूसरे को सुनाये जिनमें इस तरह के अनमेल लड़के-लड़की के बीच भी प्रेम सम्बन्ध पनप जाता था। कई लोगों के पास बड़ी उम्र की औरतों द्वारा छोटी उम्र के लड़को को फँसाने की दास्तानें निकल आयी।''[55] कहानी का अन्त दोनों के अलग होने के उपरांत पुनः मिलने से होता है पर प्रेम फिर भी एक एहसास ही रहता है। सिंदूर की लालिमा लड़की की माँग में होने से प्रेम में मिलन फिर अधूरा ही रह जाता है। ''यों भी पेड़ और वह भी कलकत्ता जैसे महानगर में-तो मरते ही रहते हैं-और किसे पड़ी है कि यहाँ-वहाँ सड़को पर पेड़ो तले टूटे-फूटे बर्तन-भांडो के साथ गृहस्थी जमाये मरते-जीते लोगों के शहर में, एक पेड़ की मौत का मातम मनाये?''[56] 'एक पेड़ की मौत' कहानी व्यक्ति के प्रकृति प्रेम पर आधरित है। जगन्नाथ बाबू का अपने दफ्तर के पास एक वृक्ष से अत्यधिक लगाव हो जाता है। वह अपने दफ्तर की खिड़की से उस वृक्ष पर बैठने वाली काली, पीली, नीली चिड़ियों को देखा करते हैं। जगन्नाथ बाबू के कुछ दिन दफ्तर न जाने के उपरांत जब वह पुनः दफ्तर पहुँचते हैं तो पेड़ कट चुका होता है। ''जगन्नाथ बाबू के मन में इस पेड़ की मौत ने एक ऐसा सवाल खड़ा कर दिया, जिसका उत्तर शायद किसी के पास कभी नहीं होगा-क्या वह पेड़ भी उनसे प्रेम करता था और उनके वियोग में देह त्याग का संकल्प करके उसने तीन दिनो

में ही अपने को कटवा दिया?''[57] जगन्नाथ बाबू ने पेड़ के प्रेम से आहत होने पर उसकी मौत के शोक में उसका श्राद्ध किया।

'अंधेरी खोह में' कहानी की नायिका मिसेज शुक्ला मध्य प्रदेश के जगदलपुर बस्तर के आदिवासी इलाकों में घूमने के लिए जाती है। कुछ उलझनों से निजात पाना उनके भ्रमण का उद्देश्य होता है परन्तु वहाँ जाने के उपरांत भी वह अपनी उलझनों से मुक्ति नहीं पाती हैं।

'आक एगारसी' कहानी के मूल में भविष्य में होने वाली घटना का डर है। एक मित्र के अपने मित्र की आत्महत्या का सपना देखने पर उसे भविष्य में होने वाली घटना के लिए सावधान करना चाहता है। वहीं उसकी मुलाकात 'आक एगारसी' से होती है। जिसके नाम को सुनकर उसे आश्चर्य होता है क्योंकि नाम का अर्थ ही आश्चर्य की स्थिति उत्पन्न करने वाला है। 'आ' का अर्थ 'आने वाला' 'क' का अर्थ 'कल' 'एगारसी' यानी आपसे ग्यारह पीढ़ियों बाद का मनुष्य होता है। 'आक एगारसी' से मिलकर उसके मन में भविष्य की बातों को जानने की इच्छा जाग्रत होती है। कहानी के अंत में अपने मित्र को जीवित देखकर वह हर्ष विभोर हो जाता है और उसके स्वागत में अपनी बाहें फैला देता है।

'रिपन स्ट्रीटेट परवीन अख्तर' कहानी अपने अन्दर दुःख को समेट कर रखने वाली परवीन अख्तर की कहानी है। परवीन के जीवन में क्या दुःख है यह सवाल अंजलि को बार-बार परेशान करता है। अपने इस प्रश्न के उत्तर के लिए ही अंजलि परवीन के साथ रहना पसन्द करती है। ''अंजलि परवीन अख्तर के पास इसलिए जाती थी क्योंकि परवीन की उदास आँखो के सामने उसे कालेज की दुनिया की चहल-पहल बहुत सतही और घटिया लगती थी। वह परवीन को जानना चाहती थी यदि उसके अन्दर किसी बात का गम था, तो वह उसकी तह तक पहुँचना चाहती थी।''[58] लेकिन वह परवीन अख्तर के दुःख तक पहुँचने का रास्ता नहीं बना पाती है। यह कहानी जीवन के विषाद या अवसाद का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है।

''छात्राओं की दुनिया की एस.टी यानी अर्थशास्त्र की वरिष्ठ अध्यापिका श्रीमती शीला तयाल घनी चुप्पी और अंधेरे में आँख-कान खोले उस विचित्र बेसिर-पैर के सपने के बारे में सोचती रही।''[59] ''इन' लोगों ने धावा बोल दिया है' यह कहानी अर्थशास्त्र में गोल्डमेडलिस्ट एस.टी. की कहानी है। जिन्दगी की उधेड़बुन को बुनती एस.टी. कुछ लिखने का मन बनाती हैं लेकिन मन मस्तिष्क पर उलझनों के धावा बोलने के कारण लिखने में असफल हो जाती हैं।

''एक हिन्दुस्तानी मर्द के लिए आज भी यानी बीसवीं शताब्दी के अंत में दफ्तर में औरत की मौजूदगी और वह भी सुन्दर औरत एक ऐसी स्थिति है जो उसमें सारे सद्गुणों को जाग्रत कर

देती है- मसलन धीरज, सहनशीलता, नम्रता, शिष्टता आदि।''[60] 'दूसरे किले में औरत' कहानी पुरुष का नारी के प्रति आकर्षण को दर्शाती है। पुरुष द्वारा नारी की देह का भोग उसकी सुन्दरता पर निर्भर करता है। यह कहानी पुरुष की इसी मानसिकता का कलेवर खोलती है। ''जी हाँ आपका अनुमान एकदम सही है कि वह वस्तु एक निहायत उजली, स्वस्थ चिकनी और जवान औरत थी। वह निरी काली पारदर्शी साड़ी पहनकर सादा चमकीला ब्लाउज पहने हँसती हुई एक टेबल से दूसरी टेबल पर घूम रही थी। उसके चकाचौंध करने वाले रंग में उसकी काली साड़ी का कितना योगदान है, यह तुरन्त समझ गया।''[61]

'कब्ज हर' कहानी व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकार को एक साथ उजागर करती है। सच्चिदानन्द सिंह अपने मानसिक विकार को नाक से गोली निकालने की क्रिया द्वारा उजागर करते हैं। कब्ज से परेशान सचिच्दानन्द सिंह निरन्तर कब्ज की दवाओं की खोज किया करते हैं। 'यह भी सही है वह भी सही है' कहानी एक बीमार पिता की कहानी है। ''अंत में कल रात अनिल के पिता की मृत्यु हो ही गई। अंत में इसलिए कहना पड़ा क्योंकि पिछले एक महीने से लगातार ऐसा लगता रहा था कि यह घटना आज, अभी, किसी भी वक्त होने वाली है और ऐसा होना बराबर टलता रहा था।''[62] अनिल के द्वारा अपने पिता का इलाज कराये जाने के उपरान्त भी उनकी मृत्यु हो जाती है। अनिल के पिता की मृत्यु हो जाने के पश्चात् लोगों द्वारा उनके इलाज पर हुए खर्चे का हिसाब-किताब किया जाता है। कुछ के द्वारा उसे संवेदना दी जाती है तो कुछ के द्वारा उसकी मूर्खता को प्रमाणित किया जाता है।

'वाइल्ड फ्लावर हाल' कहानी की शुरुआत पहाड़ो से होती है। ''बाइस मई। वाइल्ड फ्लावर हाल। काटेज नं0-वन। वे तीनो शिमला घूमने गये हैं- यहाँ से तेरह किलोमीटर दूर।"[63] पर्यटन की दृष्टि से शुरू यह कहानी नारी द्वंद पर आकर रुकती है। घूमने के उद्देश्य से गये परिवार में एक स्त्री आनन्ददायक माहौल में भी शान्ति नहीं पाती है। जिस सुखद वातावरण में उसे आनन्द मिलना चाहिये वहाँ भी उसे अपने अन्तः द्वन्द्व से लड़ना पड़ता है।

'मन्नत' कहानी मनुष्य की आस्था का प्रतीक है। हजरत निजामुद्दीन की दरगाह पर माथा टेकने के लिए गई नीलिमा की भावनाओं में किसी एक धर्म से ज्यादा आस्था भाईचारे की भावना के लिए है। हिन्दू, मुस्लिम के नाम पर बँटे मनुष्यों को एकता के सूत्र में बांधने की इच्छा 'मन्नत' कहानी का मूल है।

बचपन की दहलीज को पार करके जब कोई लड़की यौवनावस्था की चौखट पर कदम रखती है तो उसकी उम्र के साथ-साथ उसके लिए असुरक्षा बोध भी बढ़ता जाता है। 'एक और

नमकहराम' कहानी नारी के इस असुरक्षा बोध पर आधारित है। नारी असुरक्षा का भाव जितना नारी के मन में होता है उतना ही उसके परिवार के मन में भी होता है। रजनी के पिता उसका बाहर जाना व रमाकांत के साथ खेलना इसलिए बन्द कर देते हैं क्योंकि पिता का अपनी पुत्री के लिए असुरक्षा का भाव उनके मन में होता है। 'एक और नमकहराम' कहानी नारी के जीवन की विडम्बनाओं के कई पन्नों को खोलने में समर्थ है।

'न्यू ईयर्स ईव' कहानी के मूल में नये वर्ष के प्रारम्भ होने की खुशी में होने वाला समारोह है। प्रबोध न्यू ईयर्स की खुशी में अपने घर में जश्न का आयोजन करता है। ''नये साल के आने में तीन घण्टे बाकी थे। प्रबोध कुमार सुबह से पार्टी की तैयारियाँ करते-करते खुद भी तैयार हुआ था और अब सबके आने का समय हो गया था।''[64] पार्टी की धमाचौकड़ी में आकर्षण का केन्द्र प्रबोध द्वारा की गयी उसके घर की गृहसज्जा होती है।

''विष्णु शर्मा ने साहित्य की दीक्षा के लिए समुत्सुक शिष्य की ओर गौर से देखा। फिर कुछ देर तक सोच कर कहा– "मैं तुम्हें दो कथाएं सुनाऊँगा ताकि तुम उन तरंगो को समझ सको, जो हर बीते हुए आने वाले समयों में बुद्धि प्रवाह को भ्रमित करती रहती है नाम-पात्र-देशकाल बदल जाते हैं। मापदण्ड भी नहीं रहता। पर वे तरंगे सदा रहती हैं।"[65] गुरु शिष्य परम्परा को अपने में संजोये 'कलम-तन्त्र की कथाएँ' कहानी के केन्द्र में दो कथाओं का वर्णन है जो कि विष्णु शर्मा अपने शिष्य को सुनाते हैं। कथाओं को सुनाने का उद्देश्य शिष्य को शिक्षा देना है। ''विष्णु शर्मा ने ये दो कथाएँ सुनाकर शिष्य से कहा अभी ये दो कथाएँ तुम्हारे लिए काफी हैं। तुम इन पर मनन करो। उसके बाद जरूरत होने पर मैं तुम्हें फिर दो कथाएँ सुनाऊँगा।''[66]

'निर्वाण'- ''यह कहानी एक बड़े शहर के एक पार्क में रोज सुबह घूमने वाले एक आदमी और दो औरतों की कहानी है। नहीं, इस कहानी में वैसा कुछ भी नहीं होगा जैसा कि आप सोचने लगे। यहाँ तक इस कहानी के पात्रों के बीच कोई संवाद तक नहीं हुआ। यानी कि उन दो औरतों द्वारा उस आदमी के बीच। हाँ इस कहानी के सभी पात्र युवा हैं- पच्चीस से अट्ठाईस की उम्र के। यह उम्र एक दिलचस्प समय है, इस अर्थ में कि अभी तक आदमी दुनिया को समझ जानकर इतना घाघ नहीं हो लेता कि इस बात को मान ले कि दुनिया होशियारी पर ही टिकी है। अभी तक संसार के बारे में उसका एक कौतूहल सा बना रहता है और एक तरीके की परेशानी भी।"[67] दो औरतों की मित्रता को केन्द्र में रखकर रची गयी कहानी 'निर्वाण' कहानी नारी की नारी के प्रति मनोवृत्ति को उजागर करती है। दोनों औरतें एक-दूसरे की मित्र होने के बावजूद अपने को बेहतर साबित करने की चेष्टा रखती हैं। दोनों एक साथ होकर भी शायद साथ नहीं हैं।

'कनफेशन'- मीरा की कहानी है। ''मीरा ने कालेज मैगजीन के लिए लिखी गई अपनी कहानी के उस वाक्य को फिर से पढ़ा जिसके कारण मिस कपूर ने उस कहानी को यह कहकर लौटा दिया था कि यह कहानी कालेज मैगजीन के लिहाज से कुछ ठीक नहीं।''[68] मीरा मिस कपूर के इन शब्दों से आहत होकर दूसरी कहानी लिखना चाहती है पर अपने घर के वातावरण के अनुकूल न होने के कारण वह कहानी नहीं लिख पाती है। इस कारण वह अपनी पहली लिखी हुई कहानी को फिर इस उद्देश्य से उठा लेती है कि इसमें ही संशोधन करके मिस कपूर को देगी परन्तु मैगजीन उठाते ही उसमें लगी चिट को देखकर वह दंग रह जाती है। ''यह तो पापा की लिखावट है। तो क्या पापा ने उसकी कहानी पढ़ ली? मीरा ने पहले शर्म फिर घबराहट और अन्त में अपने अन्दर उठते गुस्से से लड़ते हुए चिट को पढ़ना शुरू किया-''मैने तुम्हारी कहानी पढ़ी। तुम्हारा एक पाठक होने का मेरा भी अधिकार है, इसलिए शायद मेरा यह व्यवहार तुम्हें बुरा लगे। खैर मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह सच है कि जिन्दगी में बहुत जगह बहुत घिनौनापन है। बुराई है। उसका कनफेशन कराना और करना जरूरी हो सकता है। लेकिन अच्छा होता कि तुम्हारी कहानी उन लोगों पर लिखी जाती जिनका अपराध सिर्फ इतना ही होता है कि वे समाज के दिये हुए माने हुए रिश्तों के बाहर कुछ सुन्दर पा लेते हैं।''[69] मीरा की आँखे पापा की चिट को पढ़कर भर आती हैं। मीरा की कहानी उस चिट के साथ सही होकर पूरी हो जाती है।

5.3 उपन्यासों में नारी चेतना

उपन्यास विधा अलका सरावगी के लेखन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। आधुनिक उपन्यास लेखन में अलका सरावगी का नाम अग्रगण्य है। इन्होंने उपन्यास विधा में अपनी बहुमुखी प्रतिभा का पूर्ण परिचय देकर कथा साहित्य के क्षेत्र में अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। नारी की अस्मिता के लिए आधुनिक सामाजिक परिवेश में जो लेखिकाएँ अपनी कलम से संघर्ष कर रही हैं उनमें अलका सरावगी का नाम अग्रणी है। इनके उपन्यास यथार्थ की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं। उपन्यासों में न केवल नगरीय और महानगरीय जीवन बोध मुखर हुआ है, बल्कि व्यक्ति के अन्दर का वह द्वंद भी सामने आया है जिससे वह दिन रात जूझता है।

5.3.1 'कलि-कथा: वाया बाइपास' में नारी चेतना

इस उपन्यास की कथा किशोर बाबू के जीवन की कथा है। पूरी कथा में उनकी उपस्थिति रही है। अलका सरावगी ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से जो बातें बेबाक कही उनमें नयापन, नये शिल्प के साथ है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों का वर्चस्व सर्वत्र था। घर की चहार-दीवारी के बाहर स्त्रियाँ कदम तक नहीं रखती थी। आजाद भारत में रहने वाले किशोर बाबू जैसे अनेक

लोग लड़कियों को अधिक पढ़ाना बिल्कुल उचित नहीं लगता, उन्हें लड़कियाँ मर्दानी सी लगने लगती है। किशोर बाबू न सिर्फ अपनी पत्नी को चाभी वाली गुड़िया बनाकर रखना चाहा, बल्कि अपनी भाभी और अपनी पाँचों बेटियों को भी कठपुतली की तरह ही नचाकर रखा। उनकी पाँचों बेटियों ने अपने विवाह के पहले कभी खुली हवा में सांस नहीं ली।

''किशोर बाबू की पत्नी ने संतोष के साथ सोचा कि चलो ऐसा ही सही कि बाप एक ध्रुव पर चल रहा है और बेटे-जवाई दूसरे ध्रुव पर, बच्चे लोग कोई देशी चीज इस्तेमाल करना ही नहीं चाहते। गनीमत है कि अब कलकत्ता में थियेटर रोड पर लाकौस्टे, ऐरो, पियरे कार्डिन-सबकी शर्टों की दुकानें खुल गई हैं, वरना पहले बच्चों को पहनने लायक कपड़े खोजने की इतनी सहूलियत कहाँ थी? यों किशोर बाबू की पत्नी को तो समझ में नहीं आता कि इन शर्टों में ऐसा क्या रखा है कि इनके इतने रुपए दिए जाएं, पर बच्चे बिना नामी 'ब्रांड' के कोई चीज खरीदते नहीं। चलो ठीक है! करें सब अपने-अपने मन की। उन्हें क्या पड़ी है कि पति को टोकें या बच्चों को टोंके।''[70]

लेखिका ने इस उपन्यास में सन् 1847 के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर सन् 2000 ई. तक के युग को उपन्यास की कथा का विषय बनाया गया है, जिसमें छह पीढ़ियों की कहानी छिपी हुई है। सभी पीढ़ियों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक परिवेश अलग-अलग होते हैं। अलका सरावगी के उपन्यास 'कलि-कथा: वाया बाईपास' में भारतीय परिवेश के विविध पक्षों की जाँच पड़ताल की गई है। एक पीढ़ी का उसकी अगली पीढ़ी के साथ सामंजस्य बैठाना कितना कठिन होता है, परंतु लेखिका ने यहाँ छहों पीढ़ियों के सामंजस्य को बहुत बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में ब्रिटिश साम्राज्यवाद, स्वतंत्रता आंदोलन, स्वतंत्रता के पहले और बाद के बनते-बिगड़ते जीवन मूल्यों की आस्था से उत्पन्न वैचारिक द्वंद और देश की अनेक जटिल समस्याओं के परिवेश की चर्चा यहाँ की गई है। ''बात कुछ ऐसी है कि कलकत्ता अंग्रेजों द्वारा बसाए जाने के समय से ही उत्तर और दक्षिण या देसी और फिरंगी कलकत्ता में बंटा रहा है। फिरंगियों के अपने देश लौट जाने के बाद कलकत्ता में रहना दिन-ब-दिन हैसियत का माप होता गया। यही कारण था कि किशोर बाबू की लड़कियां उत्तर कलकत्ता में ब्याहा जाना सपने तक में भी नहीं सोच सकती थीं। बड़ा बाजार जाने के नाम पर ही वे नाक-भौं सिकोड़ने लगतीं।''[71]

कथाकथन की नई प्रविधि में कथाओं, वृत्तांतों, इतिहास, त्रासदी, परम्परा, अंधविश्वास आदि की भरपूर सर्जरी की गई है। जाने कितने-कितने पाठ संभव हैं, इस उपन्यास के, इसके

कितने प्रतिशत आख्यान प्रस्तुत है और कितने प्रतिशत बाइपास, कहना मुश्किल है। इस उपन्यास की कथा को सन् 1943 के द ग्रेट कलकत्ता किलिंग तथा सन् 1947 के विभाजन की दास्तान के रूप में पढ़ा जा सकता है, स्वतंत्रता के पश्चात पचास वर्षों में मूल्यों के संक्रमित होने और सुविधा केंद्रित होने की कथा के रूप में पढ़ा जा सकता है, तथा इसे आज के मध्यमवर्गीय मामूली व्यक्ति की जीवन गाथा के रूप में भी पढ़ा जा सकता है, जो जीवन की समस्याओं, दुश्चिंताओं को बाइपास करके हर समय एक सुविधाजनक मार्ग तलाश लेता है और इसी के द्वारा अपना उल्लू सीधा करता है। परमानंद श्रीवास्तव के अनुसार इस उपन्यास को राष्ट्रीय रूपक के रूप में पढ़ा जा सकता है। उपन्यास के फ्लैप पर लिखा है कि- ''बाइपास उपन्यास का शायद बीज शब्द है और वह इंगित करता है- आज के युग धर्म की ओर जो मूल समस्याओं से बचकर बगल से सुविधाजनक रास्ते निकालने का है। उपन्यास इस युग धर्म की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि किशोर बाबू के बाइपास ऑपरेशन के माध्यम से उजागर करता है जो अतंतः उन्हें चीजों की आरे अब तक बाइपास तक ले जाता है, जिन्हें उन्होंने कराया था।''[72]

एक नारी होने के नाते उनकी रचनाओं में प्रमुख रूप से नारी जीवन एवं उनकी समस्याओं का चित्रण हुआ है। समाज और साहित्य का व्रत लेकर अलका सरावगी आज तक कार्यरत तो रही है। लेकिन उनका साहित्य समीक्षकों की दृष्टि से उपेक्षित ही रहा है। वस्तुतः उनका साहित्य विभिन्न् संदर्भों को एक नई दृष्टि से उद्‌घाटित करने हेतु बृहत अनुसंधान की मांग करना है, जिसे वास्तव में लाने का प्रयास किया है। ''टी. वी. में एक लड़की आधी अंग्रेजी आधी हिंदी बोलती हुई दर्शकों को आज के महत्व की प्रतीति कराने के लिए नाटकीय विह्वलता से भरी आवाज में बोल रही थी, जैसे उसके अंदर आंसू जोर मार रहे हों। किशोर बाबू को दर्शकों को भाव-विभोर कराने की चेष्टा इतनी अश्लील लगी कि उन्होंने आँखें फेर लीं, पर वे कुछ बोले नहीं, जड़ भरत की बात उन्हें बहुत जंच गई थी। अब से वे अमोलक को भी कुछ नहीं बोलेंगे। एकदम चुप रहेंगे। कोई जान नहीं सकेगा कि वे क्या सोच रहे हैं।''[73]

आधुनिक युग का मनुष्य बहुत अधिक महत्वाकांक्षी है। वह बहुत कम समय में बिना अधिक परिश्रम किए बहुत कुछ पाना चाहता है। इसलिए दिन-प्रतिदिन उसकी समस्याएँ भी बढ़ती जा रही हैं। उसकी असंतुष्टि और निजी स्वार्थपरता के कारण उसके आपसी संबंध भी बिगड़ते जा रहे हैं। ऐसे में तमाम ऐसी उलझनों का जन्म होता जो मनुष्य की उन्नति में बाधक बनता है। किशोर बाबू की बहू में हमें अधिकांश बहुओं की छवि देखने को मिलती है। आजकल की बहुओं का, अपने पितृवत ससुर और माँ-सी-सास के प्रति, पति के प्रति या अन्य परिवार वालों

के प्रति कैसा रवैया होता है इसका प्रतिरूप हमें किशोर बाबू की बहू में दिखाई पड़ता है। यह एक ऐसा नाजुक रिश्ता है जो निभाया गया तो घर स्वर्ग बन जाता है, अन्यथा घर की स्थिति नरक से भी बदतर हो जाती है। पति से तनाव की स्थिति, बुजुर्गों के मन में असुरक्षा और असम्मान की भावना, आत्महत्या की मनोवृति उत्पन्न हो जाती है। पूरे परिवार का भविष्य अंधकारमय होता है, सिर्फ किसी एक पक्ष की स्वार्थपरता के कारण। अतः इसमें कोई शक नहीं कि वर्तमान युग में संबंधों के मायने, उनके मूल्य धीरे-धीरे निजी स्वार्थपरता, असंतोष और लालच के कारण बदलते जा रहे हैं, जो हमारे समाज को एक अलग अंधकारमय दिशा की ओर ले जा रहे हैं। वास्तव में यह समस्या धीरे-धीरे एक विकराल समस्या का रूप ले रही है। उसने कहा- " 'कॉलेज में पढ़ूंगी।' किशोर बाबू ने हामी भर दी। उसने कहा- 'सलवार-कुरती पहंनूगी। साड़ी में झंझट है।' किशोर बाबू मना नहीं कर सके। अचानक उन्हें पता चला कि बहू ने मांथे पर बिंदिया लगानी छोड़ दी है। यह क्या? यह तो औरतों का सुहाग-चिन्ह है। 'लेकिन आजकल फैशन नहीं है, बिंदी लगाने का।' किशोर बाबू ने समझा कि अब 'लेटेस्ट' फैशन वे नहीं जान सकते। क्लबों में देर रात तक डांस करना भी इसी तरह की चीज है।"[74]

किशोर बाबू को आधुनिक समाज के अनुसार नारी की दशा में अत्यधिक परिवर्तन देखने को मिला है दरअसल उपन्यास की कथा मारवाड़ी समाज पर आधारित है। जो कि भले ही तरक्की के मामले में दिनों-दिन तरक्की कर ली हो किंतु कहीं न कहीं रूढ़ीगत विचारों में फँसा है। इस उपन्यास में स्त्रियों की मनोदशा उनके अस्तित्व की पहचान के संदर्भ में अनेको स्थान पर लेखिका ने प्रकाश डालना चाहा है। इस उपन्यास में अधिकांश ऐसी स्त्री पात्र हैं जो वैधव्यता का जीवन-काट रही हैं। वे अपनी मनोव्यथा को किसी के समक्ष प्रकट नहीं करसकती। बस किसी तरह मृत्यु की प्रतीक्षा में एक-एक दिन काट देती है, किशोर बाबू की माँ, उनकी शांता भाभी इस तथ्य की प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। किशोर बाबू की बड़ी मामी अपने पति के जीवित होते हुए भी नितांत अकेली थी, क्योंकि वे अपने पति को बहू बाजार की वैश्याओं के पास जाने से रोक नहीं पाई थी। "वे दुनिया में सब कुछ सह सकते थे, पर माँ का रोना नहीं सह सकते थे। एक इसी मामले में वे जीवन को बिलकुल बदल नहीं पाये थे, पर बढ़ती उम्र के साथ माँ में यह नया परिवर्तन आया था। जीवन के सारे दुःख उन्हें उन दिनों रुलाने में कामयाब नहीं हुए थे, पर अब यदि किसी बात पर उनका जी दुख जाता, तो वे कई-कई दिनों तक रोती रहतीं। कहतीं- 'क्या करूं, मुझे अगला-पिछला सब कुछ याद आ जाता है।' बनवारी को लेकर माँ के आंसुओं की ऐसी बाढ़ उमड़ेगी, यह किशोर बाबू ने कभी सोचा नहीं था। देवरानी की आत्मा को लड़के की यह हालत

देख कितना कष्ट होता होगा, यह सोचकर माँ के आँसू थम नहीं रहे थे। वे ऊपर जाकर 'बड़े बाबू' और 'छोटे बाबू' को क्या जवाब देगी कि उनके अपने खून की यह दुर्दशा हो रही है।''[75]

परंपरावादी मारवाड़ी समाज में पुरुषों को जितनी स्वतंत्रता प्राप्त होती है, उतनी स्त्रियों को कदापि नहीं। इस उपन्यास में स्त्रियों को बहुत दबाकर निष्क्रिय रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनका संघर्ष उबर नहीं पाया है, जबकि उपन्यास सन् 1947 से सन् 1997 और आगे इक्कीसवीं सदी तक की कथा को बुनता है। इस विषय में अलका सरावगी ने एक साक्षात्कार में स्वयं कहा है कि- ''मारवाड़ी समाज का आज भी यही यथार्थ है। मेरी माँ छठी या सातवीं तक पढ़ी होगी। उसके बाद उसकी शादी हो गयी। मैं ग्रेजुएट थी, लेकिन शादी के पहले मुझे उसके आगे बिल्कुल पढ़ने नहीं दिया गया, क्योंकि मैं पढ़ती तो मेरे लिए लड़का खोजना मुश्किल होता। यह हमारी रीयल्टी थी, तो आप किस संघर्ष की बात करते हैं? जो नहीं था, उसे देखना चाहते है? जो नहीं है उसके न होने की वजह है।''[76]

आधुनिक नारी अब उस पारम्परिक पत्नी बोध से मुक्त हो गई है जिसमें केवल पतिव्रता धर्म ही उसके जीवन का प्रमुख सार था। ''आधुनिकता कोई निरपेक्ष धारणा या निरंकुश सिद्धांत नहीं है। यह गतिशील आधुनिक स्थिति है, जिसका स्वभाव ठहरना नहीं, निरन्तर बदलना है। काल धारणा से मुक्त यह कोई सनातन क्रिया नहीं, आधुनिक युग की गतिशील प्रक्रिया है। आज के युग में जीवन बदला है जैसे अनेक कालों में बदलता आया है किन्तु आज के जीवन का आधुनिक होना केवल नयी परिस्थितियों और वातावरण में नया होना नहीं है वरन् अनिवार्य भाव में उन अनेक विश्वासों, मूल्यों और भावबोधों को छोड़ना है, जो सामन्तवाद की उपज थे और उस चेतना की स्वीकृति है जो विज्ञान काल की देन है। युग यथार्थ नवीन परिस्थितियों, नवीन समस्याओं, नवीन सम्बन्ध, नवीन विश्वासों के उद्घाटन में भी है और किसी पात्र की विशिष्ट संवेदना को यानी आज की परिस्थितियों में जीते हुए किसी पात्र के लिए हुए अनुभव को उभारने में भी है। किन्तु सामान्यतः युग यथार्थ से जो ध्वनि निकलती है वह आज के जीवन को घेरने वाली नयी परिस्थितियों और उनसे बनने वाले नए सम्बंधों, समस्याओं, सम्बन्धों और बोधों का अर्थ व्यक्त करती है। सच तो यह है कि जीवन का आधुनिक रूप कहानियों में कम उभरा है। कई परिवारों में बदले हुए समय के साथ अपने इतिहास को धोने-पोंछने की एक गहरी इच्छा कुछ उसी तरह पनप जाती है, जिस तरह आधुनिक माताओं में अपने बच्चों को कीटाणु मुक्त रखने की गहरी चिंता। ''किशोर बाबू ने इसे भारतवर्ष के नए अछूतवाद की संज्ञा दी थी, जब उनकी

बड़ी बेटी ने कभी किसी वक्त हुई खांसी के कारण उन्हें अपनी नाती को गोद में नहीं लेने दिया था। बहरहाल, यह एक अवान्तर बात है, प्रसंग इतिहास को धो-पोंछकर साफ करने का था।''[77]

अपने-अपने अनुभवों के आधार पर व्यक्तिवादिता और रुग्णता का बाना पहनना ही आधुनिकता नहीं बल्कि व्यक्ति या व्यक्ति वैशिष्ट्य की चेतना एवं हर व्यक्ति का एहसास आधुनिकता है। आधुनिक दृष्टिबोध में आज की बहुतायत कहानियों में स्पष्ट है। जो इस सन्दर्भ में आधुनिकता दो रूपों में व्यक्त हुई है- एक तो केवल अपने आप को आधुनिक कहलाने की फैशन परस्ती से और दूसरे सार्थक बोध के रूप में। कमलेश्वर के अनुसार- फैशन परस्ती ने आधुनिकता के नाम पर निरर्थक विजातीय संस्कारों को ओढ़ा और इस सार्थक मूल्य को समाज के सन्दर्भ से काटकर नितान्त वैयक्तिक अर्थ के लिए अपनी इस स्वतंत्रता की माँग की, जबकि दूसरी ओर कुछ साहित्यकारों ने आधुनिकता को समाज के नये सन्दर्भों में खोजा और अप्रत्यक्ष रूपसे जीवन के प्रति आस्था की माँग की।

जैसा की हम जानते हैं कि 'कलि-कथा: वाया बाइपास' में वर्तमान युग में जीवन व्यतीत कर रहे किशोरबाबू के अनुग्रह से कथा छह पीढ़ी पहले से शुरू होकर पुनः वर्तमान युग तक आती है। इन छह पीढ़ियों के बीच में एक सौ तिरालीस साल बीतते हैं। बदलते युग के साथ आदमी के सोचने-समझने के तरीके में बहुत अंतर आया है। मनुष्य के जीवन में प्रेम, स्वतंत्रता उसकी अस्मिता, उसकी जीवन शैली, उसके शौक, उसके आचार-विचार, व्यवहार, रहन-सहन, खान-पान, उसकी आदतों में इतना अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है कि जीवन के सभी मापदंड ही बदल गए हैं। अपने उपन्यास में लेखिका ने उन्हीं बदलते मानवीय मूल्यों की खोजकर उनका अर्थ तलाशने की कोशिश की है। इस उपन्यास का एक मूल उद्देश्य यह भी है कि मारवाड़ी समाज पूरी तरह से पुरुष प्रधान समाज है जिसमें पुरुषों के ऊपर तो किसी भी तरह की कोई बंदिश नहीं है, परंतु औरतों को हर एक ढंग से दबाकर रखा जाता है। पुरुष कोई भी मनमानी कर सकता है परंतु औरतों की प्राथमिक इच्छाओं को भी दबा दिया जाता है। मारवाड़ी समाज में व्याप्त तमाम सम-विषम परिस्थितियों को इस उपन्यास के माध्यम से प्रकाश में लाना भी इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य है।

उपन्यास की पूरी कहानी मारवाड़ी जाति के जीवन की सच्चाई को उभारती है कि यह जाति अपने निजी स्वार्थ के लिए किस कदर पैसों के सामने अपने देश की स्वतत्रंता और स्वतत्रंता की लड़ाई को भी तुच्छ मानती है। ''कभी लड़कियों को अपनी सहेलियों के घर नहीं जाने दिया। सहेलियों के साथ सिनेमा नहीं जाने दिया जाता। कई बार लड़कियों ने रोना-धोना किया अपनी

दादी के सामने, पर किशोर बाबू टस-से-मस न हुए। इतनी बड़ी 'रिस्क' वे कैसे ले सकते थे? समाज में एक बार किसी बात की हवा उड़ गई, तो हमेशा के लिए बदनाम हो जाएगें। इतने बरसों का किया-कराया सब धरा रह जाएगा। पिंजरे के पक्षी को जन्म से ही पिंजरे में बंद कर दें, तो वह अपना खाना-पीना छोड़ देता है। आखिर लड़कियों को पराए घर जाना है, घर-गृहस्थी संभालनी है। ज्यादा पर निकाल लिए, तो मुसीबत हो जाएगी।"[78]

यह प्रविधि कथाकथन की नई तरकीब है, कथा को आत्मकथा की तरह लिखना या उसे सुनाना भी उत्तर आधुनिक तकनीक की एक शर्त है। यद्यपि कथा किशोर बाबू की है पर लेखिका की रणनीति उनकी और उनके खानदान की और मारवाड़ी जाति की आत्मकथा बताना है। "किशोर बाबू की पत्नी को जीवन में इतने संतोष का अनुभव कभी नहीं हुआ था- अब कोई इच्छा बाकी नहीं रही। पोते की इच्छा थी, पोता हो गया। सबसे बड़ी बात तो यह है कि किशोर बाबू को पागलखाने नहीं ले जाना पड़ा। बल्कि उनमें इतना साधुपन आ गया जिसकी उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी। जिस आदमी ने किसी की कभी नहीं सुनी, हमेशा अपनी चलाई ,वह सब तरफ से अपने को इतना खींचकर निर्लिप्त हो जाएगा, यह कौन सोच सकता था। सब कृष्ण-कृपा से हुआ है।"[79]

आनेवाली सदी में औरतों के हक में एक ही बात की जाती है, कि विश्व में आज किसी एक सरकार अथवा राजनैतिक विचारधारा के पास युगांतरकारी दबाव लाने का मुद्दा नहीं बचा है। आज सिएटल में अमरीका के अपने ही नागरिक सड़कों पर उतरकर राज-समाज की अत्यधिक पूँजीवादी अवधारणाओं को सरेआम पलीता लगा रहे हैं, और यूरोप के किसान भी बहुराष्ट्रीय कंपनी करगिल द्वारा परखनली में गढ़े गए खतरनाक 'टर्मिनेटर' बीजों को समंदर में फेंक चुके हैं। इस अर्थ में संसार ताकत के वर्तमान समीकरणों में अभी हल्के ही सही, पर बुनियादी बदलावों के पूर्वाभास हमें मिलने लगे हैं। सूचनाओं और साधनों का एक नया अनमोल और सस्ता भंडार भी आज सर्वसुलभ है, जो ताकत के भ्रष्ट और आततायी बनने की खबर समय रहते जनता को दे देता है। आधुनिक युग की दृष्टि से नारीवाद न तो राजनीति की चेली है, न ही उसकी दुश्मन! उसकी चिंता के मूल में वे जीवन मूल्य हैं जो स्त्रियों समेत पूरी मानव जाति के हित में है, जो स्त्रियों और उनके समर्थक सभी गुटों को न सिर्फ राज-समाज की ज्यादती से बल्कि कई बार खुद अपने ही अतिवादी स्वरूपों से भी बच सकते हैं। हम उम्मीद करेंगे कि आनेवाले समय में नारीवाद नकली नाटकीय जुझारूपन के तेवर त्यागकर एक उदार संवेदनशीलता और संतुलित बुद्धि से अपने चारों ओर उस परिवेश का जायजा लेगा, जो आज ज्यादा से ज्यादा पैसा

कमाने की अमानवीय और जीवन विरोधी स्पर्धा में पगलाया हुआ है। इसके लिए जरूरी रहेगा कि नारीवाद सिर्फ राजनीति ही नही, अर्थजगत, तकनीकी विज्ञान और मीडिया सभी के प्रतिनिधियों से जुड़े अपने लिए कुछ झूठे पूर्वग्रहों को साहसपूर्वक त्यागे और पूरी मानवजाति के पक्ष में खड़े होने और विहंगम पड़ताल करने का ठोस आधार बनाए। भारतीय समाज में धीरे-धीरे आधुनिक होते स्त्री जीवन के दृष्टिकोण में अनेक पहलुओं के बदलाव को लेखिका ने उपन्यास में काबिल-ए-तारीफ प्रस्तुति की है। आधुनिक जीवन के बढ़ते हुए संत्रास की समस्या को लेखिका ने अपने लेखन में चित्रित किया है।

5.3.2 'शेष कादम्बरी' में नारी-चेतना

पिछले दो दशकों में हिन्दी साहित्य में एक जबरदस्त बदलाव आया है। साहित्य का केंद्रीय विमर्श विकेंद्रित हुआ है और पुरुष लेखकों की पुरुषवादी दुनिया साहित्य में अब असंगत होती जा रही है। अब साहित्य का मूल्यांकन स्त्रीलिंग, पुल्लिगं के आधार पर होने लगा है। नपुंसक लिंगीय विमर्श अभी साहित्य में आया नहीं है पर शीघ्र ही इसकी दस्तक होने की उम्मीद है। कुछ कहानियाँ लिखी भी गई हैं। इसी प्रकार जाति आधारित विमर्श भी इस नए विमर्श का नया चेहरा है। अब साहित्य की केन्द्रीयता के साथ-साथ उसकी आलोचना के पाठ और औजार में भी बदलाव आया। 'शेष कादम्बरी' के रचना विधान में यह सभी बातें बड़ी शिद्दत से उभरे हैं। उपन्यास की नायिका सत्तर साल की रूबी दी का आख्यान स्त्री विमर्श का एक नया पक्ष है जो स्वानुभूति और सहानुभूति के द्वंद से अपने को बचा नहीं पाया है। यह रचना निश्चित ही सहानुभूति का परिणाम है पर इसका आस्वाद स्वानुभूति का आभास देता है। अलका सरावगी की कुशलता यही है कि बिना भोगे हुए जीवन का यथार्थ इस जादुई तकनिकी के साथ उन्होंने पेश किया है कि वह विश्वसनीयता का आभास तो देता है, पर उसमें संदेह और संभावनाओं के कई-कई छेद है। 'शेष कादम्बरी' उपन्यास की कथा जीवन के सत्तर बसंत देख चुकी एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो उम्र के इस पड़ाव पर भी अपनी अस्मिता और अस्त्वि की पहचान के लिए संघर्षरत है। सत्तर वर्षीय रूबी दी छब्बीस वर्षों से सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में समाज में सताई, असहाय निर्बल, दुखियारी अबलाओं की सहायतार्थ परामर्श नामक संस्था चलाती हैं। इन छब्बीस सालों में वे तरह-तरह की समस्याओं से ग्रसित महिलाओं से मिल चुकी हैं, उनकी समस्याओं का निवारण कर चुकी हैं और आज भी कर रही हैं। इन कई वर्षों में उन्होंने समाज में, देश-दुनिया में बहुत कुछ बदलते देखा है। अपने जीवन के इस पड़ाव में वे आज अपने अतीत की कथा को संस्मरण के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं।

वर्तमान स्थिति को देखते हुए वे कई-कई बार अपने जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों में खो जाती हैं और कहानी फ्लैश-बैक के माध्यम से अतीत में चली जाती है। अलका सरावगी ने 'शेष कादम्बरी' उपन्यास को उपन्यास लेखन की नई शैली प्रदान करते हुए रूबी दी की कथा को कुल छब्बीस शीर्षकों के माध्यम से कहने की नई चेष्टा की है। प्रत्येक शीर्षक अपनी अलग कहानी कहते हुए अपने आप को पिछले और अलग शीर्षकों की कथाओं से जोड़ता है। इन सभी शीर्षकों में रूबी दी के साथ-साथ उनके जीवन में आने वाली सभी स्त्रियों उनकी समस्याओं और उनकी वेदनाओं को उपन्यास की कथा के रूप में शामिल किया गया है। उपन्यास की कथा 'ओ गो आमार एई जीवनेर शेष परिपूर्णता...' से प्रारंभ होती है। रूबी अपने बचपन की रईसी और आज की अमीरी में यही फर्क महसूस करती हैं- ''अब के पैसे वाले तो मुँह खोलते हैं, तो उनके मुँह में पैसे टनटनाते रहते हैं। और किस कदर छोटी-छोटी बातों पर कितनी हू-हा! लड़की सोलह साल की हुई है, क्लब में पार्टी है। लड़का अठारह का हो गया, घर में पार्टी है। लड़के का बोर्ड में नाइंटी परसेंट आया है, होटल में पार्टी है। रूबी गुप्ता भी कलकत्ता यूनिवर्सिटी से अंग्रेजी में गोल्ड-मेडलिस्ट हुई थीं, मिठाई मँगवा ली। घर में नौकर-चाकरों, आए गए मेहमानों सब ने खाली। बस और क्या? उस रईसी का अर्थ तमाम श्रेष्ठतम उपलब्ध चीजों को भोगने की सुविधा और आनंद था। अब के लोगों की तरह दुनिया को दिखाने से आने वाला मजा नही।''[80]

इस उपन्यास में आधुनिक नारी की छवि को इतनी बेहतरी से लेखिका ने प्रस्तुत किया है कि उपन्यास के अध्ययन से यह मालूम होता है कि लेखिका ने अपनी दृष्टि वर्तमान परिवेश के अनुसार अपना लेखन प्रस्तुत किया है। सविता नामक एक लड़की के पिता का एफेडेविट पढ़ रही हैं जिसे वह रूबी दी से यह जाँच करवाने के लिए लेकर आई है कि इसका अनुवाद भली-भाँति हुआ है या नहीं। रूबी दी पढ़ने के बाद सविता को यह बताती हैं कि एफेडेविट का हिन्दी अनुवाद बिल्कुल ठीक से हुआ है। सविता के व्यक्तित्व तथा उसकी अपनी हस्तरेखाओं में डूब जाने की आदत से कई बार रूबी दी को कूढ़न-सी होती है, वे परेशान हो उठती हैं। उनके मन में सविता को लेकर अनेक सवाल उमड़ते हैं और वे उन प्रश्नों का उत्तर सविता से जानना भी चाहती हैं, पर वह उससे नहीं पूछ पाती हैं क्योंकि जिस दुनिया में वे बड़ी हुई थीं, वहाँ इस तरह की कोई निजी बात, जिसको पूछने का कोई विशेष मकसद न हो, किसी से पूछना अमर्यादित व्यवहार था। ''माँ तुमने मुझे पूरे समाज-परिवार के सामने अपनाने की कोई रस्म अदा नहीं की। तुम्हें पता है, पिताजी की वसीयत में इसीलिए मेरे लिए 'पाली हुई लड़की' जैसे अपमानजनक शब्दों का इस्तेमाल वकील ने करवाया। माँ, तुमने मुझे 'गोद' नहीं लिया क्यों? ताकि तुम मेरे बचपन से जवान होने तक जब-तक मामी से कह सको, ''बाई, मैंने बिना आप से पूछे आपका

दूध छुड़वाकर आपके कलेजे का टुकड़ा ले लिया आप सबसे यह बात कहती फिरती हैं। तो अब आप ही रूबी को रख लें..। यहाँ तक कि तुमने मेरी शादी के वक्त भी कन्यादान के हकदार को लेकर झगड़ा होने पर कहा, बाई, रूबी तो आपकी लड़की है। आपकी वारिस कन्यादान। इसे यहाँ से ले जाइये। मुझे इससे कोई मतलब नहीं। माँ, तुमने अपनी ननद और खुद के झगड़े में मुझे मोहरा बनाकर रखा। तुमने कभी सोचा कि इससे मुझ पर क्या बीतती है?''[81]

उक्त उपन्यास-अंश में सविता अपने पिता (पापा) की उस बात को उजागर करती है, जिसे कभी किसी ने न ही सुना और जाना समझा था। शाकाहारी व्यक्ति द्वारा अंधविश्वास में आकर बकरे की बलि दी और उसकी बेटी निरीह होकर उसे देखती रही, तब उस पर क्या गुजरी होगी, यह कल्पना मात्र न होकर एक वास्तविकता है, जहाँ उपकाई आने के साथ उसका कलेजा भी बाहर आने लगता है। इस स्थिति से रूबी दी दंग रह जाती है, कि अंधविश्वास के आवेश में आकर व्यक्ति कभी भी कुछ भी कर सकता है। तब उसकी बुद्धि भी विनाशक हो जाती है।

"वास्तव में आदमी के विनाश के कभी-कभी कुछ क्षण ऐसे भी आ जाते हैं, जब वह चेतना शून्य हो जाता है। तब उसे अपना और पराया, भला-बुरा दिखाई नहीं देता। उसे अगर कुछ दिखाई देता है तो केवल वह, जो भूत उस पर सवार होता है। अलका के उपन्यास साहित्य में कथानक घटनाएँ प्रसंग दृश्य परिस्थितियाँ आदि परस्पर सक्रियता के साथ-साथ समग्र मानव जीवन को प्रभावित करता है। आज के आधुनिक परिवेश में भी धर्म और जाति को लेकर स्त्रियों को किस प्रकार भेद-भाव का सामना करना पड़ता है। यहाँ समाज के आधुनिक वर्ग की विभिन्नता कयामत के आने पर उन बढ़ों के मुर्दे कैसे उठ खड़े होंगे शास्त्रों में लिखा है कि पंचकन्याओं अहिल्या, द्रौपदी, तारा, कुंती, मंदोदरी का रोज स्मरण करने से महापापों का भी नाश होता है।''[82]

'सायरा' एक मुसलमान जाति की लड़की थी। इस अंश में रूबी दी का मुसलमान लड़की को अपने घर में रखना करुणा घोष को बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगा। जिस पर वह अपनी नाराजगी व्यक्त करती है। आज के आधुनिक युग में भी शास्त्रों में जिस मानव धर्म का उल्लेख किया गया है उसका पालन बहुतायत से किया जाता है। आज के परिवेश में उपरोक्त उपन्यास के इस अंश में धर्म के ढोंग का पर्दाफाश किया गया है। पुखराज, मूंगा और गोमेद धारण करने से ही यदि मानव सुखी, स्वस्थ तथा समृद्ध हो जाये, तो फिर कर्म की क्या आवश्यकता है।

'शेष कादम्बरी' अलका सरावगी का दूसरा उपन्यास है जिसमें उन्होंने 'कलि-कथा:वाया बाइपास' की भाँति ही एक नवीन सैद्धांतिकी गढ़ने का प्रयास किया है। उसके साथ-साथ कुछ और विषयों को भी आधार बनाया है। परंतु दोनो उपन्यासों में लेखन विषयवस्तु और प्रविधि की

नवीनता दृष्टित हुई है। जिससे की 'शेष कादम्बरी' ने साहित्य जगत में अपनी एक अलग ही छवि स्थापित की है। एक सत्तर वर्ष की वृद्धा के वैभवपूर्ण अतीत किन्तु निपट एकाकी आरै अर्तंमुखी जीवन का आत्मालाप समाज को सिर्फ अतीत के कुछ खट्टे-मीठे अनुभवों के अतिरिक्त आत्मविश्लेषण संबंधी कथ्य भी घुँधली यादों में रह जाते हैं। अपनी नातिन कादम्बरी की याद आते ही रूबी दी उसे 011-64232345 पर दिल्ली एस.टी.डी. फोन लगाती हैं। दिल्ली में कादम्बरी संचार जगत में जैसे मीडिया, अखबार, टी.वी. आदि में कार्यरत है।

कादम्बरी के माता-पिता विदेश में रहते हैं। उसे को बचपन से उसकी नानी रूबी दी ने बहुत लाड़ से पाला है। उसका कादम्बरी नाम भी उन्हीं के द्वारा दिया गया है। उसकी खोज-खबर भी उनके परिवार की एक सदस्या मात्र कादम्बरी ही रखती है। वह एक फ्रेंच कट दाढ़ी वाले व्यक्ति के साथ वहीं रहती है जहाँ उसका मीडिया सेंटर है। वह आधुनिकता में विश्वास रखने वाली वर्तमान की शिक्षित नारी है, जो कि अपनी नानी को नानी न कहकर उनके नाम से उन्हें 'रूबी दी' के नाम से संबोधित करती है। रूबी दी का जीवन नितांत अकेले ही बीता हैं परिवार में सबकुछ होते हुए भी उनके जीवन में विराट सूनापन झलकता था। उनको जीवन के मीठे और कड़वे अनुभव के पश्चात् एक कश्मकश हमेशा बनी रही जिसके चलते वो कभी किसी से कोई सवाल नहीं कर पाई। आज की इस आधुनिक युग में जब वह अपनी आधुनातन जीवन जीने वाली नातिन से फोन पर बातें करती हैं, तब उनको आज की दुनिया के बारे में कादम्बरी कुछ बातें बताती है। ''उफ् कितनी प्यारी! मेरा दिल इसलिए बड़ा हो गया कादम्बरी, क्योंकि उसमें तुम रहने लगी हो रुबी दी ने कहा। ''ओह माई गॉड" नानी तो फिल्मी डॉयलाग मारने लगी हो, इस उम्र में। आपका हार्ट तो एनालार्ज नही हो गया नानी? कादम्बरी फिर हँस रही थी, आज रुबी दी ने एस.टी.डी. की परवाह छोड़ दी।"[83]

इस उपन्यास का कथ्य यही है कि एक कथा कि जो मुख्य पात्रा है या फिर लेखिका जो कहना चाहती है वह कथा पूरी नहीं हो पाती है। इसे अगर इस तरह से कहा जाय कि इसका पूरा वृत्तांत हिन्दी साहित्य में उत्तर आधुनिकता का नया क्षण है जो इतिहास, कल्पना, रुपक, सैद्धांतिकी, विचारधारा और अस्मिता, संघर्ष आदि का नीरक्षीरवत तरल है। जिसमें अलग-अलग तर्क और तथ्य खोजना न सिर्फ कठिन है वरन् बेमानी है, और वृत्तांत बहुलता तथा बहु-वृत्तांत अलका सरावगी की प्रिय कथा रूढ़िवादी है। नरेटर के रूप में लेखिका ने सत्तर साल की वृद्धा का जो वर्णन किया है वह लेखिका का सच है। उसके देखने का एक तरीका 42 वर्ष की उम्र में लेखिका उन जैविक अनुभवों-शारीरिक और मानसिक-का आख्यान प्रस्तुत करती है जो उसने

सहे ही नहीं और जिनका अनुभव सत्तर वर्ष की कोई वृद्धा ही कर सकती है। प्रश्न उठना स्वाभाविक है- रूबी दी के अलाप या आत्मालय की प्रामाणिकता क्या है? क्या आत्मालाप या आत्मवृतान्त की शैली का प्रयोग किसी रणनीति के तहत लेखिका कर रही है- वह भी नरेटर के रूप में स्त्री विमर्श के प्रचलित चौखटे में भोगे हुए यथार्थ के विपरीत लेखिका एक ऐसे अनुभव जगत का खुलासा करती है- जो उसका अपना नहीं है, औन न ही अपना हो सकता। अतः रूबी गुप्ता के संपूर्ण जीवन की संपूर्ण व्याख्या लेखिका को कटघरे में खड़ा करती है, क्योंकि यह उसकी दृष्टि का सच है। यह एक नए प्रकार के स्त्री विमर्श का प्रस्थान बिन्दु है।

इसे हम इस तरह कहें तो अधिक उपयुक्त होगा, लेखिका का यह नैरेटर उत्तर आधुनिक स्त्री विमर्श की नई रचनाशीलता को आधार प्रदान करता है। उपन्यास में सुधीर रूबी को तीन प्रकार की सम्पन्नता प्रदान करता है। पहला उसके शिक्षित होने, दूसरी अन्यों की तुलना में अलग और तीसरी उसके पैसों का होना। यहाँ आधुनिक युग में नारी के प्रति बदलते पुरुष दृष्टिकोण को लेखिका ने चित्रित किया है। जो आर्थिक मानव मूल्यों को प्रगट करता है। परंतु उसकी सम्पन्नता भी परिवार के प्यार से वंचित रखती है। यह सम्पन्नता उसके लिए न होकर दोष रूप की तरह बन जानती है। ''सुधीर कह रहे थे- ''तुम्हारा पहला दोष यह है कि तुम पढी़ -लिखी हो, औरों की तुलना में तुम अलग हो। दूसरा दोष यह है कि तुम्हारे पास अपना पैसा है, जो और किसी के पास नहीं है। अपना पैसा? अपना? लेकिन वह तो पिताजी का पैसा है। मेरा कहाँ है? रूबी का मन यह सब सुनते-सुनते जैसे भर गया। अफीम के पैसों का क्या सचमुच टिके रहने का समय खत्म हो गया है। तभी क्या माँ अपने बहुत से गहनों की एक बड़ी पोटली बनाकर पिताजी को दे रही थी? अब क्या होगा उन लोगों का? क्या उन्हें भी थियेटर रोड का यह महल बेचकर कानपुर में मामा-मामी के जैसे साधारण घर में रहना होगा, क्या माँ को घर के सारे काम वैसे ही खुद करने होगें जैसे मामी करती है?''[84]

वृत्तांतों की बहुलता इस उपन्यास को स्त्री के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण को सफलता से प्रस्तुत करने में पूर्णतः अभिव्यक्त हुआ है। वर्तमान में वेश्या प्रवृत्ति का चलन समाज में किस प्रकार अपना पैर पसार चुका है। इसका वर्णन इस उपन्यास में पैंतीस वर्षीय माया बोस के माध्यम से दृष्टित हुई है। माया बोस वेश्यावृत्ति करके अपने जीवन के प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी करती हैं। वह दसवीं पास नैहाटी के एक रिटायर्ड स्कूल-मास्टर की लड़की हैं। उसने अपने पिता को यह बताया है कि वह थिएटर रोड के कास्मोपोलिटन नर्सिंग होम में नाइट ड्यूटी करती है। मास्टरजी ने इस मामले में जाँच-पड़ताल करने की कभी विशेष कोशिश नहीं की। माया बोस

इतनी पढ़ी लिखी नहीं कि कोई अच्छी नौकरी कर सके या नर्सिंग की ट्रेनिंग कर सके और न ही इतनी अपढ़ है कि दूसरों के घरों में बर्तन घिसकर अपने हाथों की सुंदरता खराब कर सके। शादी ब्याह की उम्मीद दूर-दूर तक नजर नहीं आती। इसलिए उसके पास मात्र यही उपाय बचता है। वह रूबी दी को बताती है कि यह काम उसकी गरियाहाट में रहने वाली मौसेरी बहन रूपा शौकिया करती है, अपनी हर प्रकार की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए। लेकिन वह अपना, मास्टर जी का पेट भरने के लिए यह काम करती है। वह रूबी दी को बताती है कि वह उनके पास दो साल से यह बताने के लिए आती है कि महज आठ साल की उम्र में उसके जीवन को नष्ट करने वाला और कोई नहीं बल्कि उसका पिता, एक शिक्षक है। उसे उस साँप रूपी पिता ने अपने विष से विष कन्या बना दिया है। अब वह किसी से विवाह करने योग्य नहीं बची। इसलिए उस साँप को पाल रही है, इस नाते कि आखिर उसी ने उसे जन्म दिया है। आज के बाद वह रूबी दी से मिलने कभी नहीं आएगी क्योंकि उसे अंदेशा हो गया है कि रूबी दी को माया बोस जैसी गिरी हुई औरत से मिलना या उसका उनके दफ्तर आना अच्छा नहीं लगता। रूबी दी उसकी बातें सुनकर सन्न-सी रह गई थीं। माया बोस असहाय, दुर्दिन का जीवन काट रही वेश्याओं की गति से, समाज में वेश्याओं के प्रति मनोभाव से नितान्त दुखी रहतीं। अपने मन की इन्हीं वेदनाओं के लिए उनके जीवन को मिट्टी में मिलानेवाला उसका अपना जन्मदाता है, रूबी दी के पास आती हैं। उन्होंने रूबी दी को बताया था कि आज से दस साल पहले, वे लड़कियाँ नामी-गिरामी कॉलेजों के सामने जींस-टी-शर्ट आदि पहन कर खड़ी होती थीं। वहाँ उन्होंने देखा था कि नामी अच्छे-खास घर परिवार की लड़कियाँ आपस में यह कहकर कि वे अपने बॉयफ्रेडं के साथ जा रही हैं, उनके बॉय फ्रेन्ड ने उन्हें यह गिफ्ट दिया है, लड़कों की गाड़ी में बैठकर चली जाती हैं। दुनिया की नजरों में वे सब ठीक हैं तो माया बोस जैसी औरतें गलत क्यों हैं? उम्र के ढलने पर माया बोस बहू बाजार के एक मैडम के घर पर बैठती जो कि वहीं उसके लिए ग्राहक भेजती रही, और धंघे के बाद की कमाई में हिस्सेदार बनती, उसे खिलाती-पिलाती, कर्ज वगैरह भी जरूरत पड़ने पर देती। मास्टर जी यह समझते कि अब उनकी बेटी डे-ड्यूटी करने लगी है। मैडम के घर पर ही माया बोस के एक वकील प्रेमी ने उसे एक दिन शराब चखाया। उनके लाख मना करने पर भी उनका जोर नहीं चल पाया। उस दिन मास्टर जी को माया बोस के काम पर शक हो गया था। 'शेष कादम्बरी' कोई आत्मकथा नहीं है, पर रूबी दी की आधी अधूरी आत्मकथा का वृत्तांत अवश्य है।

कादम्बरी की अत्याधुनिक जीवन शैली, रूबी दी की पारंपरिक रईस जीवन शैली उनके मामा देवीदत्त की विलक्षण जीवन शैली, उनकी पुत्रियों की उनके विरूद्ध जीवन शैली, सविता

और सायरा की पृथक जीवन आदि के सम्मिश्रण द्वारा लेखिका एक नई तकलीफ करती है। जिसमें कुछ भी, संभव हो सकता है। उपन्यास वर्तमान युग की हिंग्लिश बोलने वाली आधुनिक लड़की है- ''ओह, नानी? यू आर सोऽऽऽ...स्वीट।''[85] जो आधुनिकता के साथ-साथ अपने इतिहास को भी लेकर चलती हैं। क्योंकि उसके अनुसार उसकी ईमानदारी इसी में है कि वह इतिहास की स्मृतियों में उतरे और उन्हें बचाकर ही अपने जीवन को बचाए रखे। उसे भी कई बार ऐसा लगता है कि रिफ्यूजी है। दो तीन पीढ़ी पहले उसके पूर्वज कहीं और होंगे। कहीं से आकर यहाँ बस गए। कादम्बरी का पिता स्टीव आधा अंग्रेज-आधा भारतीय है और माँ हिन्दी भाषी। कादम्बरी का मानना है कि एक व्यक्ति के जीवन का सैंपल किसी समय, किसी युग की कहानी नहीं कह सकता। कादम्बरी का दिमाग एक साथ कई दिशाओं में नाचता रहता है और वह सब के साथ तालमेल बैठाकर अपने काम को पूरी गंभीरता और लगन से करती है।

इस प्रकार कादम्बरी उपन्यास में आधुनिक लड़की की भूमिका अदा करती है- सुशिक्षित, समझदार, तार्किक, गंभीर विचारों वाली, शुद्ध हिन्दी भाषी, मृदुभाषी, सांस्कारिक, स्पष्टवक्ता, अध्ययनशील लेखन कला में दक्ष और व्यवहार कुशल लड़की है, उपन्यास में वह रूबी दी की प्रेरणा स्त्रोत भी है, जो अपने नानी से दूर रहकर भी हमेशा उनके करीब रहती है। फोन पर हमेशा नानी को अपनी मौजूदगी दिखाती रहती है। इस तरह उपन्यास में कादम्बरी का व्यक्तित्व सुदृढ़ एवं काफी सशक्त है, जिसे जवाब देने से कई बार रूबी दी भी हिचकती हैं। वह रूबी दी पर पैनी दृष्टि रखती है। जैसे-जैसे समाज आधुनिकता की ओर अग्रसर हुआ, स्त्री चाँद तक पहुँच गई, तब भी स्त्रियों की स्थिति में विशेष सुधार नहीं आया। सुधार हुआ बहुत, मगर एक विशेष वर्ग में ही हुआ। इक्कीसवीं सदी में पहुँचकर भी हम इस क्षेत्र में अधिक विकास नहीं कर पाए। बल्कि हमने जैसे-जैसे आधुनिकता की और कदम बढ़ाया, समाज को विकसित समाज बनाना चाहा, स्त्रियों ने पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर काम करना चाहा तो स्त्रियों के शोषण का मामला और अधिक बढ़ता गया। इस उपन्यास में पिछले कई दशको की स्त्री समस्याओं को लेखिका ने कई पात्रों की कथा की माध्यम से दर्शाया है जिनमें रूबी गुप्ता, सविता, फरहा, सायरा, माया बोस, आभा जैन और रूबी दी की नातिन कादम्बरी वगैरह सभी हैं जिनके कष्ट की कोई सीमा नहीं है लेकिन जीवन तो जीना ही है क्योंकि हर जीवन का कोई न कोई मकसद अवश्य होता है।

अलका सरावगी द्वारा रचित साहित्य चाहे वह कहानी हो या फिर उपन्यास या फिर कोई लेख, सभी साहित्य प्रधान होते हैं। अलका जी का मानना है कि साहित्य समाज के लिए होता है

और समाज की समस्याएँ ही प्रायः साहित्य का रूप ग्रहण करती हैं। अलका सरावगी द्वारा रचित उनका दूसरा उपन्यास 'शेष कादम्बरी' अपने आप में अनगिनत समस्याओं को समेटे हुए है, जिनमें स्त्री समस्या विशेष रूप से मुखरित हुई है। यह उपन्यास भारतीय समाज में जगह-जगह संघर्ष करती स्त्रियों की कष्ट कथा है।

5.3.3 'कोई बात नहीं' में नारी-चेतना

नारियों को सक्रियता, गतिशीलता एवं समकक्षता प्रदान करने के लिए फिलहाल मध्यकाल एवं आधुनिक काल के चिन्तकों ने पर्याप्त चिन्तन किया है। परन्तु केवल सिद्धान्तों और आख्यानों की उद्‌घोषणा नारी के व्यक्तित्व को पूरकता प्रदान नहीं कर सकता था। स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं महात्मा गाँधी के प्रयासों में इतना ही अन्तर है दयानन्द सरस्वती ने सिद्धान्त निरूपित किये जबकि गाँधी जी ने बीसवीं शताब्दी में स्वतंत्रता के आन्दोलन को सफल एवं सशक्त बनाने के लिए नारियों का पुरुष के समान ही आवाहन किया। अलका जी के उपन्यास साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसमें नारी जीवन का चित्रण प्रस्तुत हुआ है, इसलिए यह कहा जाता है कि ये उपन्यास एक दृष्टि से नारी भावना को नई जमीन प्रदान करते हैं। नारी जीवन की अनेक समस्याओं को अलका जी चित्रित करती हैं। उनका कहना यह है कि स्त्री-पुरुष में समानता हो। इसमें स्त्री अधिक मानवीय और अधिकार सम्पन्न हो। ''औरत की जिन्दगी भी क्या सचमुच। बीस साल बाद भी वह पराए घर की ही रहती है। यहाँ तक कि अपने बच्चों की नजर में भी।" माँ की दुखती रग पर उसने हाथ रख दिया है, शशांक ने समझ लिया। ''नो माँ! बिल्कुल नहीं! ऐसी बात नहीं है। बात सिर्फ इतनी है कि मैं और मेरे ख्याल से पापा भी, तुम्हें दुनिया से अलग मानते हैं। इसलिए तुम जब किसी भी आम औरत की तरह पुराने विचारों के लिए अपनी सास की बुराई करती हो, तो हम लोग सह नहीं पाते, तुम्हें 'पेडेस्टल' से उतारना पड़ता है, हमें।"[86]

इस उपन्यास में कलकत्ता के खास दर्शनीय स्थलों की खासियत को उपन्यास में प्रसंगानुरुप सुंदर ढंग से रखा गया है। अलका जी के उपन्यास 'कोई बात नहीं' में आधुनिक जीवन-मूल्य पूर्णतः व्यवहृत होते हैं। उपन्यास का परिवेश वर्तमान युग का शहरी परिवेश है। नई पीढ़ी के सामाजिक जीवन मूल्यों का विकास एवं बदलाव के पक्ष को दृष्टित किया है। दादी हक्की-बक्की सी उसे देख रही थी। ओह, शशांक ने डूबते हुए दिल से सोचा, शायद दादी को उसकी बात अंग्रेजी में कहे जाने के कारण समझ में नहीं आई। वह मरे मरे स्वर में बोला-आर्थर " मुझे अपने बराबर एक आदमी तो समझता है। मैं उससे लड़ाई कर सकता हूँ। उसे मार सकता हूँ,

क्योंकि वह मुझे वापस जरूर मारेगा। यों ही छोड़ नहीं देगा।" इतनी बातें कहकर शशांक ने माँ से आँखेँ चुराते हुए फिर दादी की ओर देखा, तो उसे जो दिखाई दिया, उसे समझना उसके लिए मुमकिन नहीं था।"[87]

उपन्यास के पहले अध्याय में कलकत्ता महानगर से होकर बहती पवित्र गंगा नदी की चर्चा की गई है जिसके इस पार कलकत्ता है तो उस पार हावड़ा, और दोनों किनारों को जोड़ने वाला हावड़ा का पुल अर्थात् रविन्द्र सेतु स्थित है। शशांक की दादी के इकलौते अधपगले, मुँहबोले भाई सुच्चा बाबा उर्फ सत्यप्रकाश उर्फ सत्तू भैया भी इसी घाट पर हर साल आते हैं। शशांक की दादी उनसे यहीं पर मिलती हैं। ''आधुनिक जीवन मूल्य में आधुनिकता जिसे पाश्चात्य सभ्यता की देन ही कहा जाएगा, स्वच्छन्द, स्वतन्त्र, बिना रोक-टोक बन्धन मुक्त जीवन जीने की चाह प्रत्येक वर्ग में देखी जा सकती है। आज वयस्क लड़के लड़कियों में मित्रता होना कोई बुरी बात नहीं, जैसा की... ''गॉर्ड की सीटी के साथ विक्टोरिया मेमोरियल के विशाल मैदान में जगह-जगह कोनों के झुरमुटों में घुसे हुए या पेड़ों की आड़ लेकर बैठे प्रेमी युगल और बेंचों पर बैठे बूढ़े लोग उठ कर सामने के द्वार की ओर धीरे-धीरे खिसकते हुए बढ़ रहे थे।"[88]

नारी को सामाजिक परिवेश में भावात्मक एवं अधिकारिक संन्तुष्टि के लिए लेखकों ने अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वर्तमान जीवन निर्वाह नैतिक मूल्यों एवं पुरातन अवधारणा से सन्तुलित एवं सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक धारा में स्थित सम्बन्धों का विश्लेषण तथा विवेचन लेखिका ने बखूबी प्रस्तुत किया हैं। आधुनिक नारी की बहुत ही सुन्दर द्दष्टि देकर अलका जी ने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में नयी पीढ़ी के लड़के-लड़कियों के बीच की स्वतंत्रता का भेद मिटाने का प्रयास लेखिका ने बखूबी किया हैं। ''नहीं बेटा, मुझे कभी बुरा नहीं लगा। जमाना बहुत बदल गया था, शायद इसीलिए, पहले के लोग बहुत धीरे बदलते थें। क्या करते बेचारे, उन लोगों ने पुराना जीवन देखा था। बुढऊ जी का मतलब मेरे दादा ससुर, जो औरतों पर शक करने की ऐसी आदत थी कि किसी पड़ोस के बच्चे को भी मेरे पास बैठा देख लेते, तो गालियाँ बकने लगते। 'कोठों पर बैठो जाकर', कह देते।"[89]

जैसा कि उक्त कथन में कहा गया है कि नयी पीढ़ी सामाजिक जीवन में रहते हुए, उसके नियमों, परम्पराओं, मर्यादाओं आदि का पालन तो करना चाहती है, परन्तु कुछ युवक ऐसे विचार वाले हैं, जो अपनी स्वतन्त्रता चाहते हैं और इस स्वतन्त्रता का अर्थ लड़के-लड़कियों में भेद-भावना से संकुचित विचारों का त्याग, आपसी मित्रता, प्रेम, सहयोग उन्हें पसन्द है। अलका जी

का वैचारिक प्रतिबद्धता कलागत इकाइयों में रूपान्तरित होता है। उनके लेखन को स्त्री-पुरुष जैसी विभाजक इकाइयों से अलग नहीं किया जा सकता। वे दृष्टि संपन्न लेखन में विश्वास करती हैं। लेखन उनके लिए छटपटाई हुई अभिव्यक्ति का पुरस्कार नहीं है, एक सचेत सामाजिक जिम्मेदारी भी है।

"अरे, हम लोग सब खबर रखते हैं। बताओ, तुम्हारी नानी भीख लेने चंपा को भेजती थी कि नहीं? चाचा का जोश बढ़ता जा रहा है। भीख नहीं, भिक्षा! कुछ जानते-वानते तो हो नहीं। वृंदावन में सारी नौकरानियाँ यह पार्ट-टाईम जॉब करती हैं। खाली वक्त में जाकर मंदिर के बाहर बैठ जाती हैं। कोई नानी को थोड़े ही उसके भिक्षा के पैसों की जरूरत थी। अब चाची के स्वर में हल्की-सी झल्लाहट है। सारे बच्चे और माँ पहले हँसते हैं, फिर जोर-शोर से चाचा का प्रतिवाद करने लगते हैं।"[90]

आज के आधुनिक युग में भी नारी अनेक समस्याओं से जूझ रही है। उनकी कहानियों में इन्हीं समस्याओं का चित्रण मिलता है। समाज में जीते समय नारी कई कठिनाईयों से गुजरती है, कई समस्याएं उसके सामने आती हैं। इन समस्याओं को सहना या इनका विरोध करने के लिए पितृसत्ता समाज के परंपरागत मान्यताओं को तोड़कर निकलना यह दो मार्ग उसके सामने हैं, दोनों रास्तों में कठिनतम समस्याएं, शोषण है। समाज के इन्हीं समस्याओं और शोषण के खिलाफ विद्रोह करती हुई स्त्री उनकी कहानियों में दृष्टिगोचर होती हैं। अपने कहानी साहित्य में अलका सरावगी ने विविध नारी चरित्रों का चित्रण किया है। अपनी स्त्री विषयक मान्यताओं को कहानी साहित्य द्वारा स्थापित किया तथा स्त्री की अस्मिता और सम्मान की तरफ ज्यादा ध्यान दिया। अपनी कहानियों द्वारा सामाजिक व्यवस्था के बदलाव की आवश्यकता महसूस कराई। अपनी कहानी के माध्यम से वह परंपरागत रूढ़ियाँ, नैतिकता तथा मान्यताओं के भार से दबी हुई स्त्री के मौलिक व्यतित्व को पाठकों के सामने रखती हैं।

दादी कहती है कि आदमी के पास जब कमी होती है और आसपास बहुत होता है, तो उसका मन होता है कि वह थोड़ा-सा ले ले। दादी के बचपन में एक बार सब घरवाले समोसे, रसगुल्ले उड़ा रहे थे और वह दो बार वहाँ से गुजरी, पर किसी ने बिना माँ की लड़की से नहीं कहा कि- आओ सीता, तुम भी खा लो। क्या तभी दादी थाली आते ही पहले अन्न देवता को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करती है और तब खाना शुरू करती है? ''पर एक बात तो कहनी पड़ेगी", दादी कहती है, ''मेरी सास ने खाने-पहनने में किसी तरह का भेदभाव नहीं बरता। यह नहीं कि मेरे बच्चे एक कटोरी आमरस पीकर रहे हों और उनके बच्चे दो कटोरी आमरस पीते हों। लेकिन

मेरे पीहर में खाने-पीने में बड़ा फरक किया जाता था।" कहते-कहते दादी कुछ सोचने लगती है। शायद बचपन के और भी भेदभाव किए जाने के किस्से बचे हुए हैं जो कभी और सुनाए जाएँगे।"[91] सन् 1960 के पश्चात् कथा साहित्य में प्रगति हुई। समकालीन हिंदी कथा साहित्य में अनेक लेखिकाओं ने स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलने का प्रयास किया हैं। जीवन की हर परिस्थिति से गुजरने के बाद उन परिस्थितियों से मिले अनुभवों को स्मृति में संजोकर उन्होंने अपने कथा साहित्य में अभिव्यक्त करने में लेखिका बहुत हद तक सफल हुई है। सामाजिक विसंगतियों, कुरीतियों और आधुनिकता के मोहपाश में पड़े मानव की रूग्ण मानसिकताओं का जीवंत चित्रण इनके साहित्य में मिलता हैं, तथा वर्तमान युग में पनपी नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की गिरावट के चित्रण से प्रचलित व्यवस्था का जागरण करने में भी लेखिकाएँ प्रयत्नशील हैं।

अलका जी का यह उपन्यास, दादी के माध्यम से सुनायी गई कथा पर आधारित है। ''मौसी बृहस्पतिवार को कुछ न कुछ लिखती थी। पर वह अपना ताजा लिखा हुआ कभी शशांक को पढ़ने नहीं देती थी। वह अपने कमरे में घुसता, तो मौसी अपने काजगों को पलटकर उलटा रख देती। शशांक को मौसी की यह आदत अजीब लगती थी। जब पूरी कहानी मौसी उसे पढ़ा सकती है, तो अधूरी क्यों नहीं? पर एक दिन अजब तरीके से उसे मौसी का लिखा हुआ ताजा पन्ना मिल गया था और उसने अपने को ऐसा करने के लिए धिक्कारते जाने के बावजूद उसे पूरा पढ़ डाला था।"[92]

'कोई बात नहीं' अपनी प्रस्तुति में कुछ प्रचलित तरीकों का इस्तेमाल करता है तो कुछ नवीन तरीकों का। उत्तर आधुनिक रचनाशीलता के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को लेखिका के अन्य उपन्यासों की भांति इसमें भी स्पर्श किया गया है। इस कृति के प्रकाशन से इतना तो निश्चित हो गया है कि हिन्दी उपन्यास लेखन में उत्तरआधुनिक विमर्श पर भी अब विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। कहना न होगा, किस प्रकार के उपन्यासों की आलोचना के लिए परंपरागत औजार काफी नहीं हैं। हमें इसके लिए नए मानदडं स्थापित करने होंगे, नए औजार खोजने होंगे।

उत्तर आधुनिकता की दृष्टि से हिंदी में अलका सरावगी के उपन्यासों का ऐतिहासिक महत्व है। वस्तुतः यह उपन्यास एक बहुत बड़े जीवन-यथार्थ को चरम-संघर्ष की गाथा में परिवर्तित कर देता है। किसी प्रचलित विमर्श से परे इस रचना का कथ्य और शिल्प नवीन आग्रह लिए हुए है। शिल्प की बारीकियों में लेखिका ने अपने पुराने चौखटों को कुछ तोड़ा है तो कथ्य के क्षेत्र में कुछ नवीन दिशाओं के द्वार भी खोले हैं। इस कृति का उद्देश्य लेखिका की अन्य कृतियों से स्पष्ट और जीवनोन्मुख है, और रचना का अंत 'कोई बात नहीं' जैसे मामूली शब्दों से होता है

कि वास्तव में महत्वपूर्ण है जीवन, जीवनसंघर्ष, उसमें उतार चढ़ाव आते ही रहते हैं- जिनसे हमेशा हमें लड़ते ही रहना है। यह जैसे एक मंत्र है कि- 'तुझसे नाराज नहीं जिंदगी हैरान हूँ मैं' और यह मंत्र जिंदगी से कोई शिकायत नहीं करता है। ''माँ ने जरूरत पड़ने पर नानी को इसी तरह दुनिया को सँभालते देखा है। उसे पता है कि बाकी लोग मुसीबत पड़ने पर इतना घबराते हैं कि साँस भी मुश्किल से खींस पाते हैं, ऐसे लोग फिलहाल उसकी कोई मदद नहीं कर सकते। माँ को जरूरत भी नहीं है, किसी मदद की। वह सिर्फ चाचा, चाची और मौसी पर भरोसा करती है और वे लोग वही करते हैं जो माँ कहती है। यदि वे लोग कोई सलाह दें, तो वह मान भी लेती है। लेकिन इन तीनों के अलावा वह किसी की टोका-टोकी सहन नहीं कर सकती, जब दुनिया उसे चलानी हो।"[93]

उपन्यास में शशांक की दादी सीता पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अपने जीवन के विगत क्षणों का स्मरण करते हुए अपनी कथा के माध्यम से वे संपूर्ण स्त्री जगत का दर्दे-दिल बयान करती हैं। उनके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि अपने जीवन के पहले अट्ठाईस वर्षों को उन्होंने दुखों के विराट बोझ तले बिताया है, जिसमें सुख किस चिड़िया का नाम है, उन्होंने नहीं जाना। अब दादी यह मानती हैं कि दुख से बड़ा कोई गुरू नहीं होता। इस उपन्यास में शशांक के घर के पारिवारिक परिवेश के माध्यम से भारतीय संयुक्त परिवार की गरिमा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है जिसमें सभी लोग कठिन से कठिन वक्त में एक दूसरे के परस्पर सहयोग, त्याग, हिम्मत और प्रेम से हर परिस्थिति का सामना करते हैं। शशांक और उसकी माँ की तकलीफ को उसके चाचा-चाची भी महसूस करते हैं और शशांक की देख-रेख के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

5.3.4 'एक ब्रेक के बाद' में नारी-चेतना

वर्तमान सामाजिक समस्याओं में पिसता हुआ संघर्षरत व्यक्तित्व जब आधुनिकता के नाम पर प्रत्यक्ष विशद असमानता का वातावरण देखता है तो तीव्र आकांक्षा शक्ति एवं भौतिक सुख-सुविधाओं हेतु लालसा की प्राप्ति मानव की मानसिक अभिकृतियों को आत्मसात करता सहज बोधगम्य को दर्शाता है। किंतु लेखिका का सशक्त प्रयास उनकी कृतियों में स्वाभाविक रूप से सशक्तता एवं नैतिकता की छवि को साक्षात्कार प्रस्तुत करता है। दरअसल प्रतिस्पर्धा के इस युग में जीवन मूल्य का आधुनिक होना स्वाभाविक है। उसके लिए सामाज में मानव रूप में सहनशीलता और सत्यवादिता का जो परिचय मिलना या होना चाहिए वह नहीं है। बल्कि प्राचीन मूल्यों का स्थान चापलूसी जैसे आधुनिक मूल्यों ने ले लिया है। जिसका वर्णन पात्रों के माध्यम से

उपन्यास में दृष्टिगत होता है। "के.बी. ने यह समझ लिया कि इण्डिया की 'इकोनोमिक बूम' या आर्थिक उछाल के साथ-साथ इण्डिया में धीरज और सहनशीलता के गुण डूब गए। अब साफगोई का जमाना भी आ गया कि आप किसी चुभते हुए सच को बेझिझक कह डालें वरना तो चार साल पहले चोरड़िया को छोड़ते समय के.बी. ने उसे साफ-साफ कह दिया था- तुम्हारा बेटा है, इसलिए उछल रहा है।"[94]

आधुनिकता के नवीन वर्तमान पद्धति मनुष्य का निर्माण जीवन मूल्यों से होता है। जीवन मूल्य ही उसकी दशा और दिशा निर्धारित करते हैं। वर्तमान समय में प्राचीन तथा आधुनिक जीवन मूल्यों में संघर्ष दिखाई देता है। स्वतनत्रता के पश्चात महिला कथाकारों के साहित्य में यह संघर्ष अपने चरम पर दिखाई देता है। अलका सरावगी का उपन्यास साहित्य भी इस दृष्टि से अछूता नहीं है। इस उपन्यास तथा अन्य उपन्यासों में भी उन्होंने नई सोच तथा आधुनिक विचारों का स्वागत ही नहीं किया बल्कि उसे अपने जीवन में धीरे-धीरे आत्मसात भी किया है। उनकी सोच थी कि पुरानेपन में नयापन आना चाहिये। कॉरपोरेट जगत की सच्चाईयों का वर्णन करता यह उपन्यास मुख्य रूप से आर्थिक मूल्यों पर आधारित है, जहाँ विकास के नाम पर मल्टीनेशनल कम्पनियाँ जनता को मूर्ख बनाकर अपना विकास कर रही हैं।

हालाँकि यह उपन्यास आर्थिक मूल्यों को लेकर चला है, लेकिन स्थान-स्थान पर बदलते सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक मूल्यों की ओर भी अलका जी ने पात्रों के माध्यम से संकेत दिया है। उपभोकतावादी संस्कृति ने न केवल हमारे प्राचीन मूल्यों में बदलाव किया, बल्कि ऐसे आधुनिक मूल्य भी प्रदान किए हैं जिन्होंने विचारों और सोच में भी परिवर्तन कर दिया है। इस उपन्यास में आधुनिक नारी की विशेष छवि प्रस्तुत की है। ''क्या आप रुक्मिणी से मिली है?"- भट्ट ने पूछा था। कहाँ वहशालीनता, सुन्दरता और गरिमा की प्रतिमा और कहाँ यह मामूली औरत। ''नहीं, मिली तो नहीं तस्वीर दिखाई थी गुरु ने" जवाब आया। ''ओह"- भट्ट के मुँह से निकला। क्या बात है। गुरु भी क्या विचित्र आदमी है। हो सकता है कि उसकी सारी प्रेमिकाएँ एक-दूसरे के बारे में जानती हों। अचानक भट्ट को रुक्मिणी के पति की नेपाल में कहीं हुई बात याद आई। सच्चा प्रेम हो तो ईर्ष्या होगी ही नहीं। प्रेम में अहं का विसर्जन हो जाता है। तब इर्ष्या करेगा कौन? भट्ट की इच्छा हुई कि वह अपना सिर पीट ले। नहीं बाबा, वह नहीं सह सकता। बचपन से जो सही-गलत की परिभाषा सीखी है, उसे छोड़ नहीं सकता।"[95]

उनके साहित्य का दायरा विराट है। साहित्य-सृजन की शैली नवीन व उत्कृष्ट है। यह अनेक स्थानों पर इतिहास के मृत्यु की घोषणा करते हुए बीती घटनाओं के आभ्यांतर को नकारती

हैं तथा उनकी क्रमागत प्रस्तुति का विरोध करती हैं। अलका जी की रचनाएँ स्त्री-विमर्श की मीमांसा करती हुई नए विचारों तथा नए प्रतिमानों का उत्पादन करती हैं। अपने लेखन को एक ही विषय तक सीमित न रखकर उन्होंने अपने उपन्यासों में से विविध आयामों पर चिंतन किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री विमर्श के साथ-साथ मध्यमवर्गीय परिवार का आर्थिक विवशताओं से जूझता हुआ अभावपूर्ण जीवन भी नजर आता है। आज स्त्री विमर्श की जो अवधारणाएँ हैं, वे स्त्री को स्वतत्रं रूप से स्थापित करना चाहती है। स्त्री लेखिकाओं ने भी स्त्री विमर्श को अपने साहित्य में से अपने-अपने ढगं से प्रस्तुत किया है।

ऐसी ही कुछ प्रमुख लेखिकाओं की स्त्री विमर्श पर आधारित अवधारणाओं का अनुशीलन करते हुए स्त्री विमर्श का सही अर्थ समझने की कोशिश इस शोध प्रबंध में की है। "पत्नी की बेड-टी और के.वी. की मार्निंग-टी एक साथ होती है। के.वी. का चेहरा निर्विकार रहता है। उनकी पत्नी को कोई अंदाजा नहीं होता कि के.वी. उनकी इन आदतों से उतना ही आज भी चिढ़ते हैं जितना पहले दिन चिढ़ते थे। उनकी पत्नी सोचती हैं कि के.वी. ने उनकी आदतों के साथ जीने की आदत डालली है जिस तरह उन्होंने के. वी. की तमाम गुत्थियों और ग्ररंथियों के साथ जीना सीख लिया है। कई बार वे के.वी. से पूछती हैं कि वे सरल क्यों नहीं हो सकते? के.वी. कभी इस प्रश्न को समझ नहीं पाते। ...के..वी. आधुनिकता के खुद सबसे बड़े मुरीद थे, पर हर चीज का यह घटियाकरण, जो यह मानकर चलता था कि संगीत, खेल, पुस्तकें सभी को फास्ट फ्रूड की तरह फास्ट और चटपटा होना चाहिए, उन्हें रास नहीं आता था।"[96]

समाज में आधुनिक नारी का स्वरूप अत्यधिक संवेदनशीलता एवं कर्तव्यनिष्ठ होने का प्रमाण आधुनिक नारी लेखन उद्देश्य को प्रमाणित करता है। स्त्री की स्वतंत्रता समाज के प्रत्येक वर्ग के साथ-साथ उपभोक्तावादी संस्कृति को भी प्रभावित करने में सक्षम है। नारी स्वातंत्रय जैसे आधुनिक जीवन मूल्य का चित्रण भी इस उपन्यास में बहुलता से किया गया है। इस उपन्यास में पुरुष मानसिकता को भी नारी के प्रति एक नवीन रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय लेखिका को जाता है। आप" गुरु को कब से जानती है? कहाँ मिली थीं उससे?" -भट्ट ने पूछ डाला। "हमेशा से"- इस छोटे जवाब से भट्ट निराश नहीं हुआ। "मतलब बचपन से?" उसने पूछा, यह सोचते हुए कि वह खुद गुरु के बचपन के बारे में ज्यादा कहाँ जानता है। "यही समझ लीजिए" औरत ने कहा। उसकी आवाज से यह साफ जाहिर था कि वह और प्रश्न सुनना नहीं चाहती थी। भट्ट ने आज तक किसी व्यक्ति के एकान्त पर, उसकी प्राइवेसी पर इस तरह हमला नहीं किया था। वह ऐसे लोगों से बुरी तरह चिढ़ता था जो दूसरों के जीवन में ताक-झाँक करते हैं।"[97]

हमारे समाज में सदियों से स्त्री का दमन और शोषण होता रहा है। इस दमन और शोषण के खिलाफ आधुनिक नारी जागृत हुई, उसी ने स्त्री विमर्श को जन्म दिया। स्त्री की अपनी आत्मचेतना जागृत होते ही वह आत्मसम्मान, आत्मगौरव, समानता जैसे अपने हक प्राप्त करना चाहती है और अपना हक पाने के लिए संघर्ष तो उसे करना ही पड़ता है। नारी स्वातंत्र्य आज के समय की माँग है और यह आधुनिक सामाजिक मूल्यों में प्रमुख भी है, क्योंकि इससे न केवल समाज बल्कि परिवार के मूल्यों में भी परिवर्तन हुआ है। आज हिंदी कथा साहित्य के क्षेत्र में नारी जीवन से संबंधित स्थितियों और परिस्थितियों को रचनाकारों ने आधुनिकता की परिसीमा के संदर्भ में अपनी कलम चलाई है। आधुनिक युग में हिंदी कथा साहित्य की महान लेखिका अलका सरावगी राष्ट्रीय स्तर पर अपनी सृजनात्मक ऊर्जा को प्रदर्शित करते हुए अत्यंत कुशल लेखन किया है।

उपन्यास में भट्ट की पत्नी के माध्यम से इस जीवन मूल्य पर प्रकाश डाला गया है- ''भट्ट की पत्नी अपने लिए अपनी दुनिया बनाने की जगह चाहती थी, ऐसी जगह जिसमें भट्ट का दखल क्या, उसके बेटे की भी आवाज न हो। भट्ट को उस घड़ी बिल्कुल साफ दिखाई पड़ा कि भट्ट की पत्नी को विवेक देवराय या उसके परिवार की रत्ती भर भी परवाह नहीं थी। बस अपनी एक निजी 'स्पेश' बनाने के लिए उसे उन लोगों की जरूरत थी। वह एक ऐसी दुनिया चाहती थी जिसमें उसका प्रवेश किसी उपाधि के कारण, यानि कि माँ या पत्नी होने के कारण नहीं था, बल्कि इसलिए था, क्योंकि लोग उसे एक हाड़-माँस के व्यक्ति के रूप में देखते थे जो अपनी मर्जी से चलता-फिरता या हँसता-रोता है। यहाँ उसका अपना लेन-देन था, जिसका भट्ट या किसी और से कोई वास्ता नहीं था।''[98]

अस्थिरता भी आज आधुनिक जीवन मूल्यों में शामिल हो गयी है। आज का व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में स्थित है, उसे किसी एक जगह टिककर रहना अच्छा नहीं लगता दूसरे शब्दों में यदि कहा जाए तो आज का व्यक्ति किसी भी चीज से बोर जल्दी हो जाता है। अस्थिरता से तनाव होगा ही इसलिए आधुनिक सामाजिक मूल्यों में तनाव ने भी अपनी जगह बना लिया है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की इच्छाओं की पूर्ति के कारण तनावग्रस्त है इसलिए तनाव से समाज का प्रत्येक वर्ग प्रभावित है। आधुनिक शिक्षा-दीक्षा के कारण स्त्री अपने व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग होते जा रहे हैं। पुरुष स्त्री के व्यक्तित्व पर हावी होना चाहता है और स्त्री कठपुतली की हद तक समर्पित नहीं होना चाहती है। पुरुष चाहता है कि उसके मनोनुकूल स्त्री जिए और यही उम्मीद स्त्री भी करती है। दोनों के सजक व्यक्तित्व जब एक-दूसरे से टकराते हैं

तब तनाव की स्थिति उभरती है। ''उसका मन उड़ान भरते-भरते जैसे पथरीली जमीन से टकरा गया था। उसकी पत्नी दौड़ती हुई आई और भट्ट की ओर एक गुस्से-भरी नजर फेंक कर फोन उठा लिया। भट्ट पत्नी को गौर से देखता रहा। अब रुक्मिणी के बारे में सोचने से लग रहा था जैसे वह कोई हवाई कल्पना हो या किसी कहानी या फिल्म में देखा हुआ कोई चरित्र हो। रुक्मिणी एकदम धुन्धली पड़ गई और पत्नी पूरी तरह फोकस में आ गई। पत्नी के चेहरे पर लज्जा, खुशी और अभिमान एक-एक करके अलग रंग पैदा कर रहे थे। आदमी को भाव मिलता है, तो उसकी रंगत ही कुछ और हो जाती है, भट्ट ने कुछ चिढ़कर सोचा। फिर उसे गुरु की एक बात याद आ गई। वह हँस पड़ा। पत्नी ने अचानक उसे चौंककर देखा और तुरन्त उसका चेहरा बदल गया।''[99]

वर्तमान समय में अंतर्जातीय विवाह के बढ़ते रिवाज के साथ-साथ स्त्री-पुरुष के बीच बढ़ते अवैध संबंधों के मुद्दे को भी उपन्यास में विस्तृत रूप से उठाया गया है। उपन्यास में पहाड़ी क्षेत्रों के सौंदर्य तथा उसके यात्रा वृत्तांत की चर्चा भी बखूबी किया गया है। उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक परिवेशों को वर्तमान जगत के परिप्रेक्ष्य में दर्शाया गया है तथा इस बात पर विशेष बल डाला है कि इस संसार में परिवर्तन को छोड़कर सब कुछ परिवर्तनशील है। समय के साथ-साथ परिवेश भी बदलते रहते हैं। आधुनिक युग में नारी की दृष्टि ने इस बात को भरपूर प्रधानता दी है कि जीवन संबंधी सभी पहलू अर्थ पर आधारित होने के कारण जीवन के मूल्यों में तेजी से परिवर्तन होते हुए देखा भी जा सकता है और समझा भी जा सकता है। अर्थप्रधानता के कारण आडम्बर प्रियता एवं दिखावे की दुनिया का प्रचलन हो गया है। मानव की स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण सभी क्षेत्रों में बहुतायत से देखी जा सकती है।

''प्रतिभाशाली तमिल ब्राह्मण की यह छवि उनमें किस बड़े वैज्ञानिक, लेखक, अफसर या मंत्री के कारण बनी है, यह तो ठीक-ठाक पता नहीं। पर के.वी. उस छवि को अपनी चश्मे रहित पैनी आँखों और मोटे होंठो वाली खुली मुस्कान से तोड़ देते हैं। उनकी जुबान की धार हर किसी को काट सकती है। ब्राह्मण यों भी चारों वर्णों में सबसे ऊपर रहता आया है। अगर के.वी. ने अपने जनेऊ को उतार कर खूँटी पर हमेशा के लिए टांग दिया है, तो इसका अर्थ यह तो नहीं है कि सबसे ऊपर रहने वालों के बराबर रहने की इच्छा भी उन्होंने जनेऊ के साथ ताक पर रख दी है। कोई यदि कहे कि ऊपरवालों को ही इक्कीसवीं सदी में इंडिया की उन्नति की सारी क्रीम खाने को मिल रही है, तो के.वी. अंग्रेजी के 'ट्रिकल-डाऊन इफेक्ट' का भारतीय अनुवाद करके तुरन्त कहते हैं- अरे पानी तो पहाड़ से नीचे ही बहता है। गंगा क्या एकदम नीचे उत्तरकर समुद्र तक नहीं आती?''[100]

आधुनिक दुनिया की नारी ने प्रत्येक वर्ग विकास पर आगे बढ़ने का मार्ग एवं मानवता जैसे आधुनिक मूल्यों की अराजगता से लड़ने का आज की नारी ने मार्ग प्रशस्त किया है। वास्तव में नारी की स्थिति समाज के विकास का मापदंड कही जा सकती है। आधुनिक मान्यताओं के अनुरूप ही स्त्री दृष्टि में परिवर्तन आया है। उसका कारण यह है कि प्रत्येक युग में व्यवस्थाकारों ने युग के अनुसार ही नियमों का नियमन भी किया है। देशकाल एवं स्वभाव के अनुरूप नारियाँ विभिन्न प्रवृत्तियों में संलग्न रहकर महिलाओं ने समाज में अपना वर्चस्व स्थापित किया है। मानव जगत का प्रायः आधा नारी जाति का है। संख्या के लिहाज से भी नारी जाति का महत्व है। समाज की संरचना स्त्री और पुरुष के समन्वय से हुयी है। इनमें से एक के भी अभाव में दूसरे का काम नहीं चल सकता है। पुरुष के लिये स्त्री की आवश्यकता है, और स्त्री के लिए पुरुष की। इस प्रकार दोनों परस्पर सम्बद्ध है।

5.3.5 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' में नारी चेतना

अलका सरावगी की रचनाएँ समाज के अंतर्गत और बाह्य जगत की सच्ची घटनाओं का लेखा-जोखा है। उनकी रचनाओं में सच इस तरह प्रस्तुत होता है कि वह जीवन के हर सरोकार से जुड़कर उसकी सच्चाई का पर्दाफाश करता है। अपनी रचनाओं में उन्होंने प्रगतिवादी और आधुनिक दृष्टिकोण अपनाते हुए रूढ़िगत परंपराओं पर प्रहार किया है। अलका सरावगी ने अपने कथा साहित्य में अपने अनुभवों को बेबाक तरीके से अभिव्यक्त किया है। वेश्या बस्ती की सड़ती गलियों से महानगर के खोये हुए रिश्तों तक, नकक्सलवादी आंदोलन जो दहला देने वाले विवरण से धार्मिक आडम्बरों पर कटाक्ष करते हुए उनके कथा साहित्य में कुछ भी वर्जित नहीं है। उनका साहित्य परम्परागत मान्यताओं की पड़ताल करने के साथ-साथ, आधुनिकता के आवरण में लिपटे जीवन-मूल्यों की भी पड़ताल करता है। हमारे समाज में प्रचलित परम्पराओं और रूढ़ियों के चलते स्त्री स्वतंत्रता पर सवाल किया जाता है। आज की आधुनिक स्त्री में अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का दृढ़ निश्चय है।

स्त्री स्वतंत्रता के अवधारणा ने ही स्त्री को स्वतत्रं निर्णय लेने की क्षमता प्रदान की है। ''माँ दुनिया की तमाम माँओं की तरह अपना वश चलते अपनी किसी सन्तान को अपनी निगाहों के बाहर नहीं देखना चाहती थी। हर लड़की को ब्याहने के बाद वे ईश्वर को रात-दिन रो-रोकर कोसतीं कि उसने क्यों लड़की की जात बनाई। जब बड़ा बेटा तीन बच्चे होने के बाद जगह की कमी के कारण कलकत्ता के बेलिया घाटा इलाके में चला गया था, तो माँ को एडवोकेट बाबू पर बेहद गुस्सा आया था। मान ली होती सेठ जानकीदास की बात, तो क्या यह दिन देखना

पड़ता।"[101] उसकी अभिव्यक्ति लेखिका के उपन्यास में मिलती है। उनके अनुसार स्त्री अगर अपना व्यक्ति स्वातंत्र्य पा लेती है, तो वह स्वयं को सार्थक अनुभव कराती है। आज की स्त्री अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करना चाहती है।

बींसवी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश भारत में स्त्री-जागृति की एक नई लहर वैचारिक धरातल पर भी उठी और आन्दोलनात्मक धरातल पर भी। स्वाभाविक तौर पर बहस का माहौल भी काफी उग्र था और विभ्रम भी पर्याप्त मौजूद थे। कमोबेश यही स्थिति आज भी है। भारतीय नारी-आन्दोलन आज परिपक्वता के दौर में प्रविष्ट हो चुका है, लेकिन इसका वैचारिक आधार अब कमजोर है। स्त्री-मुक्ति के प्रश्न पर चिन्तन और वैचारिक संघर्षों की शुरुआत, दो शताब्दियों से भी कुछ अधिक समय पहले, अमेरिकी और यूरोपीय बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियों की पूर्व वेला में हुई थी, जब प्रबोधन कालीन आदर्शों से प्रभावित और जनान्दोलनों में सक्रियजागरुक स्त्रियों ने मनुष्य के 'प्राकृतिक' अधिकार और 'स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व' की घोषणाओं को स्त्रियों के लिए भी लागू करने की माँग उठाई। तब से लेकर आज तक, विश्व के प्रायः सभी हिस्सो में, स्त्री-आन्दोलनों का, स्त्री-पुरुष समानता एवं स्त्री-अधिकारों के विविध पक्षों को लेकर चली बहसों का और स्त्री-प्रश्न परचिन्तन का, सुदीर्घ इतिहास हमारे पीछे पसरा पड़ा है। जनवादी क्रांतियों, सर्वहारा क्रांतियों, राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्षों में स्त्रियों की भागीदारी और विभिन्न सामाजिक क्रान्तियों के बाद स्त्रियों की स्थिति में आए परिवर्तन तथा स्त्री-प्रश्न के नये-नये आयामों का उद्घाटन भी इतिहास का सच है।

अलका सरावगी के उपन्यास 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' में स्त्री जाति की आधुनिक जीवन मूल्यों की विविधता - त्याग, बलिदान, आर्थिक स्वावलंबन आदि का चित्रण किया गया है। लेखिका ने प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री जाति के समस्त मूल्यों को आधुनिक स्तर की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। "जाने क्यों जयदीप के साथ रिश्तों में हमेशा ऐसा होता था कि उसे अपनी बात आगे पहुँचाने के लिए किसी-न-किसी औरत की जरूरत होती थी। पहले बहनें- भाभियाँ, यूनिवर्सिटी में मिशेल और बाद में बच्चों से बात करने के लिए दीपा। एडवोकेट बाबू कितना भी कम बोलें, अपने पाँच बच्चों की माँ से तो रात में बातें करते ही होंगे। लेकिन माँ से कलकत्ते में बात करना अब उतना ही मुश्किल हो गया था, जितना सात समन्दर पार से था।"[102] उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी भारतीय समाज जीवन के दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में भारतीय समाज जीवन में एक नए पर्व की शुरुआत हुई, और बीसवीं सदी में स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद आए हुए परिवर्तन से इस पर्व को पूर्णता प्राप्त हुई।

''एक उसका कमरा है इस जानकीदास तेजपाल मैनशन में, जहाँ वह वैसे ही रह, बोल और सोच सकता है, जैसा वह है या रहना चाहता है। जयदीप के सामने अपना कमरा घूम गया। सफेद स्प्रे पेंट का फर्नीचर। अलमारियों के बीच सीलिंग तक किताबों से भरा बुक-शेल्फ, स्टडी टेबल, दीपा ने जब पहली बार मकान की अंधेरी, गन्दी सीढ़ियाँ चढ़कर चौक के गलियारे से जाने कितनी जोड़ी आँखों की निगहबानी से होते हुए इस कमरे में कदम रखा था, तो वह निहाल हो गई थी। उसे न सिर्फ सपनों का राजकुमार मिल गया था, बल्कि उसके सपनों का कमरा भी मिल गया था। इंजीनियरिंग की पढ़ाई करते हुए उसने कभी 'मिल्स एंड बून' के रोमांटिक नॉवल पढ़ना नहीं छोड़ा था। उस कमरे में रहते हुए तीसों साल बाद भी नहीं छोड़ पाई। ....दीपा ने कहा था। ''हाँ, यहाँ हम वैसे ही रह सकते हैं जैसे हम रहना चाहते हैं। बाहर की दुनिया कैसी भी हो, वह बाहर है। उससे हमें क्या?'' जयदीप ने उनके रिश्ते का सूत्र उसे थमा दिया था।''[103]

वर्तमान की युगीन परिस्थितियों पर विचार करते हुए आधुनिक सभ्यता की जकड़न से व्यक्ति की मानसिक पीड़ा बढ़ती जा रही है, नीरस जीवन जीने को विवश नारी सामाजिक बंधन में फिर एक बार सोचती क्या और कैसे के बीच आर्थिक रूप से नारी कमजोर है। जिसके कारण वह सुविधा की जगह दुविधा में जी रही हैं। एक अंश भी जीवन जीने का जो संकेत है, उसमें वह जीना चाहती है। इस तथ्य को बहुत ही कुशलता के साथ लेखिका ने इस उपन्यास चित्रण किया है। ''प्रीतम बोलता जा रहा था। प्रीतम की दुबली-पतली पत्नी सचमुच गजब सुन्दरी थी। वह चालीस पार तो जरूर होगी, पर बीस साल से कतई ज्यादा की नहीं लग रही थी। जबकि उसके पति लगभग गंजे हो गए प्रीतम की लड़की समझ सकती थी। उसने सुर्ख लाल रंग की लिपस्टिक लगा रही थी और एक बड़ा-सा पर्स झुला रखा था जिस पर एक बड़ा-सा 'डी' लटक रहा था। 'डियोर-क्रिश्चियन-डियोर' का पर्स होगा-जयगोविंद के मन में खयाल आया। ऐसे लग रहा था जैसे वह किसी खास पार्टी में जाने के लिए तैयार होकर आई हो।''[104]

समाज के मापदंडो को अस्वीकार करती आधुनिक स्त्री ने अपने को स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकार किया। हिंदी लेखन में आधुनिक दृष्टि से नारी का नवीन स्वरूप अधिकतर दिखाई देता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसे तथ्य भारतीय समाज में पहले से मौजूद थे, लेकिन उच्च वर्गों में फैशन के तौर पर अधिक बढ़ रहा है जो स्वाधीनता और स्वतन्त्रता की मनोवांछित व्याख्या प्रस्तुत करता है और जो पश्चिम से आयातित अश्लील साहित्य, मुक्ति भावना पुरुष की दासता से मुक्त होने के नाम पर उसके साथ कोई भी सम्बन्ध न रखने की इच्छा आदि अनेक कारण स्त्रियों को समलैंगिकता की ओर ले जाने वाले कारक है। धीरे-धीरे बुराई मध्यवर्गीय स्त्रियों को भी अपनी

गिरफ्त में ले रही है जो अंतिम महत्त्वाकांक्षा और स्वतन्त्रता की हिमायत कर अराजक और असहज होती जा रही है। कदाचित् यह स्वतंत्रता का ऐसा विकृत रूप है जो सम्बद्ध व्यक्तियों को स्वाभाविक सामाजिकता से काटकर सघन आत्म केन्द्रित प्रवृत्ति की ओर ले जाता है। ऐसे अनेक घटना प्रसंगों का निर्माण व्यक्ति मनोविज्ञान की अनेक परतों को खोजता है। यह स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति के जीवन तथा मूल्य मान्यताओं के गठन में परिवेश इस मनोविज्ञान की भूमिका में महत्त्वपूर्ण होती है।

आधुनिकता के इस दौर में साहित्य की सत्ता में बने रहने का एक महत्वपूर्ण स्तंभ स्त्री एवं दलित विमर्श पर कलम चलाना साहित्यकार के लिए हितकर साबित होता है। स्त्री मुक्ति के सवाल से जुड़े मौजूदा सवालों से निहित लेखिका की आधुनिक दिशा तय करता, स्वच्छंद विचार वर्तमान लेखन के परिप्रेक्ष्य में सदीक्षाओं और मनोकांक्षाओं के अनुरूप स्त्री चिंतन की बुनियादी लेखन की नींव हिंदी साहित्य जगत में अलका सरावगी के उपन्यास साहित्य को अद्वितीय रूप प्रदान करता है।

आधुनिक युग में नारी का घर की दहलीज से बाहर कदम रखना एक साधारण सी बात है। किंतु वह कदम कितने संशय और विडम्बनाओं को जन्म देता है। लेखिका ने अपनी इस रचना में उन विडम्बनाओं का चित्रण भली-भाँति किया है। आधुनिक नारी के स्वच्छंद विचारों को लेखिका ने बड़ी ही कुशलता से प्रस्तुत किया है।

''दुनिया तुम्हें जयदीप से कुछ और बना दे, यह दुनिया की ताकत नहीं। यह तुम्हारी गलती है। मैं सब कुछ सह सकती हूँ, पर तुम कुछ और बन जाओ, यह नहीं सह सकती। यदि तुम्हें जानकीदास तेजपाल मैनशन में ही रहना है या अपने हक की लड़ाई जारी रखनी है, तो मैं तुम्हारे साथ हूँ। हम हर मुसीबत झेलेंगे। देखेगें कि वे हमें कितना डरा सकते हैं। पर तुम मिंटू चौधरी जैसे लोगों के फन्दे में फँसकर कुछ और बन जाओ, यह मैं नहीं सह सकती।''[105]

स्त्री के अनुभव उसके वास्वतिक अन्तर्मन को उद्‌घाटित करते हैं। नारीवादी कथा साहित्य का बुनियादी तत्व अनुभूति की प्रमाणिक अभिव्यक्ति है। इसी कारण नारी साहित्य ने आदर्शवाद को अस्वीकार कर दिया है। अनुभूति के विविध पक्षों को सार्वभौम से जोड़ने से इंकार कर दिया क्योंकि सार्वभाम पुरुषवादी होता है। स्त्री अपने आपको पुरुषवादी सार्वभौम से जोड़ने में असमर्थ पाती है। सार्वभौमिकता से नारीवादी लेखन का पार्थक्य इस तथ्य को पुष्ट करता है कि सार्वभौम पुरुषत्व का सूचक है। नारीवादी लेखन में साधारणीकरण की अपेक्षा विशिष्ट तत्व की बहुलता होती है। स्त्री के लेखन में 'आत्मकथ्य' होता है, वह आत्मकथन के माध्यम से अपने-

आपको अभिव्यक्त करती है। ''मेरी कील निकाल दे बेटा। बहुत गड़ रही है। वह माँ की कील निकालता रहा और माँ उससे बहुत सारी बातें कहती-सुनती रही। माँ अपनी कहानियों का पिटारा खोलकर जाने कितने सौ साल पुरानी और एकदम ताजी गप्पें उसे सुनाए और वह अमेरिका की ऐसी-ऐसी बातें माँ को बता डाले जो उसने किसी को भी न बताई हों। उसने सोच लिया कि वह माँ को बताएगा कि कैसे एक दिन एक लड़की एकदम नंगी होकर कैम्पस में नारे लगाती हुई भरी दोपहर में दौड़ गई थी क्योंकि वह अमेरिका के वियतनाम पर बम फेंकने के खिलाफ थी।''[106]

आधुनिक नारियां मध्ययुगीन सीमा को तोड़कर बाहर आ चुकी हैं। वे हर दृष्टि से स्वतंत्रता चाहती हैं, वे स्वयं को समाज में स्थापित करना चाहती हैं। व्यवस्था द्वारा अपने शोषण को पहचानते हुए वे उसका मुखर विरोध कर रही है। वर्तमान लेखिकाओं में अलका जी ने बदलते आधुनिक परिवेश के साथ मानवीय संबंधों एवं खंडित मूल्यों को महसूस किया है। आधुनिक जीवन स्थिति की तमाम विद्रुपता, स्थिरता एवं शास्वतता दूरियाँ और अलगाव को लेकर सशक्त कथा लेखन किया गया है। सम्पूर्ण विवेचन के साथ इस उपन्यास के माध्यम से यह द्दष्टव्य है कि आधुनिक नारी भरपूर जीवन जीते हुए बहु आयामी द्दष्टिकोण को उपन्यास में संवेदनशीलता को विवेचित किया है। साथ ही स्त्री आजादी का उनका संघर्ष पूरी तरह से जारी है एवं अपने अधिकारों के प्रति वे स्त्री-वर्ग को अपनी रचनाओं के माध्यम से सचेत करने में प्रयासबद्ध हैं। इसीलिए वह किसी बात का दावा नहीं करती, सिर्फ चिन्तन की स्वतन्त्रता को लेकर अपने परिवेश से आए हुए मनुष्य और उसके यथार्थ को यथासंभव प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही है।

5.3.6 'एक सच्ची-झूठी गाथा' में नारी-चेतना

वर्तमान शती के पहले एक दशक से वैश्वीकरण की आंधी जितनी उग्र और प्रबल रूप मे आई है कि उसको वश में करना कठिन है। कठिन क्या, प्रायः असम्भव है। वस्तुतः यह अमेरिकीकरण की आंधी है, उस महाशक्ति की आंधी है जिसमें पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति को अपना वशवर्ती बना लिया है। अपनी बोइंग कम्पनियों, इंटेल, माइक्रोसॉफ्ट, एम.टी.वी., हॉलीवुड फिल्मों, डिस्नेलंडै के स्वप्न-लोक, मैक्डोनल और स्टार चैनल्स, सौन्दर्य प्रतियोगिता की होड़ आदि से उसने अपनी ब्रह्मण्ड विजय की योजना को साकार रूप दे दिया है। भारत, चीन जैसे विशाल राष्ट्रों की युगों-युगों की प्राचीन संस्कृतियों की नींव को भी उसने पूरी तरह हिलाकर रख दिया है, भूटान जैसे अलग-थलग पड़े बन्द समाज के राष्ट्रों तक भी अपनी मैक्डोनल संस्कृति को पहुँचाया है। प्रत्येक देश की संस्कृति, वेशभूषा और जीवन-पद्धति को

आमूल-चूल परिवर्तित कर स्थानिकता परवैश्विकता को हावी कर दिया है। स्त्री-पुरूष संबंध जितने प्राकृतिक हैं, उतने ही सांस्कृतिक और संभवतः उससे भी ज्यादा राजनीतिक। इनके रचाव में जितना सुख है, उतनी ही पीड़ा। इस द्वंदात्मकता का उत्स कहाँ है? क्या यह दो अजनबियों का ऐसा ही नरक है जिसे स्वर्ग में नही बदला जा सकता? या, सुख नैसर्गिक है और दुख संस्कृति द्वारा प्रदत्त? स्त्री की दासता का तंतु कहाँ से शुरू होते हैं और उसकी स्वाधीनता कहाँ तक जा सकती है? इस बारे मे साहित्यिक साक्ष्य क्या कहते हैं? प्रस्तुत उपन्यास 'एक सच्ची-झूठी गाथा' शीर्षस्थ एवं प्रखर लेखकीय विदुषी अलका सरावगी ने यहाँ एक ऐसे विषय पर कलम चलायी है जो कि हिन्दी विषय में अभी इस प्रकार की रचनाओं को नहीं लिखा गया है। जो लिखा गया है, उसको निकृष्ट की कोटि में ही रखा जा सकता है। दिलचस्प यह है कि इस उपन्यास की विवेचना जितना सामाजिक है, उतना ही मर्मिक है तथ्यों और आकड़ों से मुठभेड़ करते हुए लेखिका ने स्त्री-पुरूष संबंधो के उस नितांत भावुक एवं संवेदनशील तथ्य को साहित्य के धरातल पर इस रचना में जीवन व्यवस्था में प्रायः अनकहे पहलुओं को अत्यन्त नजदीकी से स्पर्श करते हुए इस उपन्यास को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सामान्य सरल, प्रांजल और विचारमान भाषा का उद्घाटन कर ओजमय लेखन एवं तर्किकता के साथ भाषा दृष्टि की व्यापकता को प्रदार्शित करती है। विशेष तौर पर, सामाजिक संरचना और स्त्री की स्थिति के बीच के रिश्तों को लेकर तथा वर्ग और पुरूष सत्ता के बीच के रिश्तों को लेकर नारीवाद की विविध रैडिकल बुर्जुआ धाराओं और मार्क्सवाद की विविध धाराओं के बीच तनाव और टकराव लगातार मौजूद रहे हैं।

हमारे सामने बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक प्रयोगो के दौरान स्त्रियों की जीवन-स्थितियों में आए परिवर्तनों के अनुपेक्षणीय तथ्य भी हैं, कुछ अनसुलझे प्रश्न भी हैं, कुछ प्रयोग भी हैं और कुछ फूटती दिशाएँ भी हैं। स्त्री-पुरूष संबंधों के व्याकरण का अध्ययन वास्तव में सभ्यता के व्याकरण का ही अध्ययन है, क्योंकि यह सभ्यता है जो उन्हें एक ओर तो प्रकृति की परवशताओं से आजाद करती है तो दूसरी ओर उनके रिश्तों में तरह-तरह के विकार पैदा करती है। स्त्री पुरूष की सबसे अंतरंग सहचर है और पुरूष स्त्री का सबसे प्यारा दोस्त। लेकिन वे एक-दूसरे के लिए जितना सुख पैदा करते हैं उससे ज्यादा तनाव, तो इसका रहस्य उन अनावश्यक पेचीदगियों में है जो स्त्री-पुरूष संबंध की जड़ों में पिरो दी गयी हैं। ''भरोसा है, तो औकात है। अपनी भी। दूसरों की भी। गाथा पर उसके घरवाले-पति और पिछली-अगली पीढ़ियां-भरोसा करते हैं। इसलिए वह कहीं भी अकेली निकल सकती है। यही भरोसा उसे दूसरों पर करना पड़ता है, नहीं तो पृथ्वी पर रहते हुए भी उसके लिए उनका कोई वजूद नहीं होता। होता भी है,

तो चौरासी लाख यौनियों में रहनेवाले जीव-जन्तु-कीट-पतंगों की तरह। यानी कि बेबस हैं। पर थोड़ा-बहुत भरोसा करते ही वे उसकी अपनी दुनिया के हिस्से बन जाते हैं।"[107]

लेखिका की यह रचना आज के दौर को तथा जिस प्रकार लोग बिना जाने किसी अपरिचित व्यक्ति से फेसबुक, ट्विटर, वाट्सअप्प एकाउन्ट तथा इंटरनेट के अन्य माध्यमों से जुड़कर एक-दूसरे से बातचीत का सिलसिला चलाते हैं और उसके बाद वह बातचीत का सिलसिला अनजाने ही किसी एक या फिर दोनों एक-दूसरे के जीवन की अनन्त गहराईयों तक पहुंच जाते हैं। जिसका प्रभाव जीवन में गाहे-बगाहे पड़ता है, और विशेष तौर पर किसी स्त्री के जीवन पर यह अनचिन्ह रिश्ता बहुत सारी विसंगतियो को जन्म देता है। कुछ इस तरह की ही कथा इस उपन्यास में रचनाकार ने प्रमित सान्याल एवं गाथा के बीच हो रही बातचीत से वर्तमान परिस्थिति से पाठकों को अवगत कराना चाहा है। ''वह कोई है भी या नहीं? उसने भी क्या सेना के इन विमानों को इस तरह दिल, दिमाग, हाथ, पाँव, कान कंपाकर उड़ जाते सुना होगा? या वह इस आवाज को सुनने का आदी होगा? उसने कहा था- ''हमारी शताब्दी एक आत्मघाती शताब्दी है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो देश की सुरक्षा के नाम पर खरीदे जानेवाले बम, जहाज, टैंक, विमान और बन्दूके हैं। कौन सा देश? ग्लोब पर लाइन खींच दी और देश बन गया? तुम जब मलयालम या नागा भाषा में बोला गया एक वाक्य नहीं समझती गाथा, तब बताओ, तुम्हारा और उनका देश एक कैसे है? पागलपन और नॉर्मल होने के बीच की लाइन तुमने कभी देखी है?"[108]

यह बिल्कुल सत्य है और स्वाभाविक भी, कि इक्कीसवीं सदी के इन प्रारम्भिक वर्षों में स्त्री-प्रश्न हमारे सामने उसी रूप में मौजदू नहीं है जैसा कि मैरी वोलस्टोनक्राफ्ट के समय में था। इसकी अन्तर्वस्तु और रूप में अनेक बुनियादी परिवर्तन हुए हैं, लेकिन स्त्री की पराधीनता के बहुतेरे संघटक तत्त्व आज भी ज्यों के त्यों बने हुए हैं। भारत जैसे पिछड़े देश के लिए तो यह बात और अधिक लागू होती है जो मध्यकालीन गतिरोध से निकलकर 'पुनर्जागरण, प्रबोधन, जनवादी क्रान्ति' की नैसर्गिक प्रक्रिया से गुजरने के बजाय दो सौ वर्ष लम्बी औपनिवेशिक गुलामी के गर्त में जा गिरा और फिर जिसे एक ऐसी रूग्ण- विकलांग स्वतंत्रता और ऐसा निर्वीर्य पूंजीवाद मिला जो स्वस्थ सकारात्मक पूंजीवादी जनवादी मूल्यों का सर्जक-संवाहक बन ही नहीं सकता था। यहाँ पूंजीवादी समाज की तमाम नई बुराईयों के साथ-साथ सहस्त्रवादियों शताब्दियों पुरानी बुराइयों का उपभोक्तावाद के अधुनातन रूपों के साथ-साथ पितृसत्तात्मक पूंजीवादी समाज की तमाम बर्बरताओं, निरंकुशताओं का विचित्र किंतु सत्य सहमेल आज भी कायम है। भारत के स्त्री आंदोलन के सामने, भूमण्डलीकरण के इस दौर में लगातार नये-नये प्रश्न और नई-नई चुनौतियाँ

खड़ी हुई है, लेकिन बहुत सारे वैसे प्रश्न भी लगातार अपनी उपस्थिति बनाए हुए हैं, जिनका सामना दो शताब्दियों से भी अधिक पहले, बुर्जुआ जनवादी क्रांतियों के दौर में, संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप में मर्सी वारेन, एबिगेल एडमस, ओलिम्पी द गूजे और मेरी वोल्सटन क्राफ्ट को करना पड़ा था और जो पूरी उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान पश्चिमी स्त्री अधिकार आंदोलन के एजेंडे पर केन्द्रीय स्थान हथियाए हुए है। निःस्सन्देह, भारत में भी बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में, राष्ट्रीय आंदोलन के सरगर्म दिनो में, स्त्रियों की सामाजिक राजनीतिक स्थिति और अधिकारों से जुड़े प्रश्न उठाये गए, लेकिन राष्ट्रीय मुक्ति में उनकी भागीदारी के अतिरिक्त पितृसत्तात्मक सामाजिक तत्रं और मूल्यों से जुड़े प्रश्नों को लगभग हाशिए पर धकेल दिया गया और एक पृथक अस्तित्व के रूप में, एक सामाजिक आंदोलन के तौर पर स्त्री-आंदोलन संगठित ही नहीं हो सका।

''पुराने महाकाव्यों रामायण, महाभारत, इलियड, ओडिसी के तमाम चरित्र इसमें फिर से नई भूमिका आख्यितार करेंगे। उनका वजूद वही नहीं रहेगा। किन्तु तब भी उनमें वे दुख-सुख, घुले-मिले होंगे जो स्मृति की हजार साल की परतों से चले आए हैं। पर ये बिल्कुल नई दुनिया का सपना देख रहे होंगे। वे सपने उन चेहरों को बिना भूले गढ़े जाएंगे, जो हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, नापाम, एटम बम या तेजाब का बल्ब फेंक देने से झुलसे हुए चेहरे और जले या कटे हुए हाथ-पावं-शरीर वाले हैं। उस मूल विचार का सपना होगा कि धरती के नक्शे को और उसके इतिहास को एक बार फिर से मिटाकर लिखा जाय।''[109]

यहाँ सिर्फ सोच की उलझनें और उनकी टकराहट ही नहीं, आत्मीयता की आहट भी है। इक्कीसवीं सदी की यह गाथा एक स्त्री और एक पुरूष के बीच संवाद और आत्मालाप से बुनी गई है। अलबत्ता यह धोखा भी है तो ऐसा, जो एक-दूसरे के जीवन को देखने के नजरिए को उलट-पलट कर रख दें। यहाँ तक कि दो व्यक्ति एक-दूसरे के सपनों में भी आवा-जाही कर लें। किन्तु यह संबंध इंटरनेट की हवाई तरंगों के मार्फत है, जहां किसी का अनदेखा, अनजाना वजूद पूरी तरह एक धोखा भी हो सकता है। भारत की मध्यवर्गीय जीवन में रोमांटिक प्रेम एक नया स्वप्न है। अभी हाल तक पुरूष और स्त्री की दुनियां इतनी अलग-अलग थी कि उनके बीच किसी किस्म के सामंजस्य की जरूरत ही महसूस नहीं होती थी। जिस तरह कुछ मामलों में बायां हाथ नहीं जानता कि दायां हाथ क्या कर रहा है।

उसी तरह घरेलू जीवन और सार्वजनिक जीवन में गहरा अपरिचय और काफी हद तक अंतर्विरोध भी था। जो लोग बाहर आदर्शवादी बनते थे, वे घर में घुसते ही मनुस्मृति के उपासक बन जाते थे। बाहर स्त्री मुक्ति की बात होती थी और घर में ध्यान रखा जाता था कि स्त्री का

आंचल हमेशा सही स्थान पर रहता है या नहीं। फिर भी लोग सुखी थे, क्योंकि सुख की उनकी परिभाषा यह नहीं थी, जो आजकल है। ''हाँ सपने! सपने ही सबसे बड़ा डर था जिन्हें हम लड़कियों को देखने से रोकने की कोशिश में हमारे माँ-बाप ने क्या, पूरी आसपास की दुनिया ने दम लगा रखा था। अब मुझे समझ में आता है कि मेरी माँ मुझे किताबों में जीवन जीते देख क्यों डरती थी। मेरे पापा जो अपनी तरह से एक आधुनिक व्यक्ति थे, मुझे मिशनरी कॉलेज भेजते वक्त क्यों घबराते थे। जाने किन बंगाली, पंजाबी, एंग्लो-इंडियन लड़कियों की तरह मैं सपने देखना सीख जाऊँ और किसी मारवाड़ी परिवार में 'एडजस्ट' करना मेरे लिए मुश्किल हो जाय। या उन लोगों के लिए मुझे रखना मुश्किल हो जाय शायद तुम्हें इन बातो को समझने में दिक्कत हो।''[110]

समाज कें वर्तमान अवस्था में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि सरलतम सच्चाइयों की तलाश के लिए बुनियादी सिद्धान्तों की ओर लौटा जाए और कदम-कदम पर किसी प्रचलित पूर्वाग्रह पर सवाल खड़े किए जाएँ। अपना रास्ता साफ करने के लिए, मुझे कुछ प्रश्न पूछने की अनुमति दी जानी चाहिए और इनके उत्तर कदाचित उतने ही असन्दिग्ध प्रतीत होंगे जितने वे स्वयंसिद्ध तथ्य, जिन पर तर्कणा निर्मित होती है। यह अलग बात है कि वास्तविक कार्यवाही में वे पुरुषों के शब्द अथवा उनका औपचारिक रूप से, खण्डन करते हैं। वर्तमान परिवेश के अनुसार यह उपन्यास बिल्कुल सटीक है।

5.3.7 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' में नारी चेतना

विभाजन और विस्थापन की दर्दनाक अमानवीय परिस्थितियों को दर्शाता हुआ अलका सरावगी का उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' वर्ष 2020 में हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' उपन्यास में भी विधवा अमला के सूने व अकेले जीवन की समस्याओं को देखा जा सकता है। जहाँ मानवीयता के लिए कोई सामने नहीं आता परन्तु उस जवान विधवा स्त्री को सभी अपना शिकार बनाने को तत्पर रहते हैं। जान-बूझकर अकेली और असहाय स्त्री को कमजोर बनाया जाता है, उसे कई क्षेत्रों में, कई तरकीबों से मजबूर किया जाता है ताकि इसी मर्यादा की दुहाई देने वाला पुरुष समाज उसका शोषण कर सके।

अध्याय सारांश

अलका सरावगी ने अपनी रचनाओं में नारी चेतना को स्पष्ट तौर पर व्याख्या करने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि पहले के समय में तो स्त्रियों को और भी कई तरह की समस्याएँ झेलनी पड़ती थी। अपना सबकुछ बचाए रखने की उसकी सबसे बड़ी चिन्ता जिसके

लिए वह दिन-रात प्रयासरत रहती है और डरती रहती है कि उसके हाथों से कुछ छूट न जाए। संयुक्त परिवार में सबको लेकर चलते हुए उसे परम्परागत रूढ़ियों का पालन करना पड़ता है। पहले तो लड़कियों को शिक्षित होने से रोका जाता है, यदि किसी तरह वे शिक्षित हों भी जाए तो विवाहोपरान्त जिम्मेदारियों के नाम पर फिर उसका मानसिक शोषण किया जाता है। कभी वह हिंसा का शिकार होती है तो कभी उसके प्रति समाज द्वारा क्रूरता का व्यवहार किया जाता है। हमारा पुरुष समाज स्वयं एक अलग ही सिद्धांत पर जीता है और स्त्री के लिए कोई दूसरा ही सिद्धांत निर्धारित करता है जैसे यह अधिकार वह जन्म से ही लेकर आया है। एक ओर पुरुषवादी मानसिकता स्त्रियों को सदैव कमतर समझता है, वह स्वयं को श्रेष्ठ और स्त्री को बुद्धिहीन मानता है। प्रायः घरेलू औरतें पुरुषों की इस मानसिकता का शिकार होती है। घर में उन्हें सदैव चुप कराया जाता है, उन्हें विरोध करने की छूट नहीं होती है। उसका त्याग व बलिदान किसी को दिखलाई नहीं देता न ही कोई मूल्य देता है। जबकि उसकी सहनशीलता और अपने स्व को ताक पर रखकर स्वयं को रिश्तों में झोंक देने की तीव्र चेष्टाएँ ही परिवार को बनाए रखने में अहम भूमिका निभाती है जिससे गृहस्थी चल पाए।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. यादव, राजेन्द्र. आदमी की निगाह में औरत. पृ0सं0 14
2. शर्मा, पी0डी0. महिला सशक्तिकरण और नारीवाद. पृ0सं0 23
3. राजशेखर. काव्य मीमाँसा. अध्याय 10
4. त्रिपाठी, रामनरेश. कविता कौमुदी. भूमिका
5. राजे,सुमन. 2022. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली
6. सोशल मीडिया. 2012. 14 नवम्बर.
7. सिन्हा, सावित्री. 1953. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँअनुसंधान परिषद हिन्दी ., दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पृ0सं0 24
8. नारायण, रामेश्वर. साहित्य में नारी के विविध सन्दर्भ. पृ0सं0 45.
9. सिन्हा, सावित्री. 1953. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँहिन्दी अनुसंधान परिषद ., दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पृ0सं0 25
10. राजे,सुमन. 2022. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ0सं0 48

11. राजे,सुमन. 2022. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली. पृ0सं0 142
12. डॉ0 ज्योति, अमर. महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि, पृ0सं0 18
13. शर्मा, पी0डी0. महिला सशक्तिकरण और नारीवाद. पृ0सं0 21
14. डॉ0 सोनटक्के, माधव. हिन्दी साहित्य का इतिहास. पृ0सं 256
15. व्होरा, आशारानी. भारतीय नारी: दशा-दिशा. पृ0सं0 8
16. सिंह, ओमप्रकाश.सम्पादक . 2010. भारतेन्दु हरिश्चंद्र ग्रंथावली. प्रकाशन परिषद. पृ0सं0 504.
17. त्यागी, जगदीश. लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटकों में नारी पात्र. पृ0सं 14
18. डॉ0 नगेन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. पृ0सं0 504
19. डॉ0 नगेन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. पृ0सं0 498.
20. गुप्त, मैथिलीशरण. यशोधरा. पृ0सं0 40
21. गुप्त, मैथिलीशरण. भारत भारती. पृ0सं0 125
22. पंत, सुमित्रानन्दन. युगवाणी. पृ0सं0 95
23. माथुर, गिरिजा कुमार. प्रेम से पहले. पृ0सं0 44
24. शुक्ल, सावित्री. संत साहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि. पृ0सं0 12.
25. पाण्डेय, मैनेजर. भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य. पृ0सं0 72
26. डॉ0 चौहान, सुभद्रा कुमारी. विजयदशमी. भारत दर्शन.
27. माथुर, शकुन्तला. चाँदनी चुनर. पृ0सं0 13
28. आजकल. मार्च 2013. पृ0सं0 20
29. राजे, सुमन. एरका. पृ0सं0 6
30. सरावगी, अलका. .2005कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-11
31. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-14
32. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-20
33. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-31

34. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-40
35. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-49
36. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-50
37. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-61
38. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-89
39. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-95
40. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-97, 98
41. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-102
42. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-104
43. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-10, 11
44. सरावगी, अलका. .2005 कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-112, 113
45. सरावगी, अलका. 2005. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-121
46. सरावगी, अलका. 2005. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-127
47. सरावगी, अलका. 2005. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-128

48. सरावगी, अलका. 2005. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-132
49. सरावगी अलका. 2005. कहानी की तलाश में. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृ0सं0-132
50. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-फ्लैप से
51. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-8
52. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-15
53. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-35
54. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-38
55. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-48
56. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-71
57. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-75
58. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-85
59. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-88
60. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-100
61. सरावगी, अलका 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-101
62. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-112
63. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-132
64. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-141
65. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-149
66. सरावगी, अलका.2018 . दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-161
67. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-162
68. सरावगी, अलका.2018 . दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-170
69. सरावगी, अलका. 2018. दूसरी कहानी. राजकमल प्रकाशन. पृ0सं0-176
70. सरावगी, अलका. 2001. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण. पृष्ठ-211
71. सरावगी, अलका. 2001. कलि-कथा: वाया बाइपास. सामवये र इन द नार्थ, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण. पृष्ठ-8

72. सरावगी, अलका. 2001. कलि-कथा: वाया बाइपास, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण
73. सरावगी, अलका. 2001. कलि-कथा: वाया बाइपास, (आजादी की छांव में: उत्तर-काण्ड) आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण. पृष्ठ-205
74. सरावगी, अलका. 2001. कलि-कथा: वाया बाइपास. (आजादी की छांव में, उत्तर काण्ड), आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण. पृष्ठ-203
75. सरावगी, अलका. 2001. कलि-कथा: वाया बाइपास. आधार प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-88
76. सरावगी, अलका. 2003. आजकल, पत्रिका
77. सरावगी, अलका. कलि-कथा: वाया बाइपास. समवेयर इन द नार्थ, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा. पृष्ठ-7
78. सरावगी, अलका. 2001. कलि-कथा: वाया बाइपास. आजादी की छांव में उत्तर काण्ड. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण. पृष्ठ-202
79. सरावगी, अलका. 2001. कलि-कथा: वाया बाइपास. आजादी की छांव में उत्तर काण्ड. आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण. पृष्ठ-210
80. सरावगी, अलका. 2001. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-81
81. सरावगी, अलका. 2001. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-83
82. सरावगी, अलका. 2001. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-64
83. सरावगी, अलका. 2001. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-169
84. सरावगी, अलका. 2001. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-48
85. सरावगी, अलका. 2001. शेष कादम्बरी. राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-20
86. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-94
87. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण. पृष्ठ-29
88. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-26
89. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. पृष्ठ-61
90. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. पृष्ठ-138
91. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ-78
92. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ-174
93. सरावगी, अलका. 2015. कोई बात नहीं, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ-121

94. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-10
95. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-186
96. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-152
97. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-42
98. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-133
99. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-132
100. सरावगी, अलका. 2010. एक ब्रेक के बाद. राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-9
101. सरावगी, अलका. 2015. जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ-24
102. सरावगी, अलका. 2015. जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ-31
103. सरावगी, अलका. 2015. जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ-62
104. सरावगी, अलका. 2015. जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ-179
105. सरावगी, अलका. 2015. जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ-81
106. सरावगी, अलका. 2015. जानकीदास तेजपाल मैनशन. राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ-28
107. सरावगी, अलका. 2018. एक सच्ची-झूठी गाथा. राजकमल प्रकाशन, पेपर बैक्स में, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-10
108. सरावगी, अलका. 2018. एक सच्ची-झूठी गाथा. राजकमल प्रकाशन, पेपर बैक्स में, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-16

109. सरावगी, अलका. 2018. एक सच्ची-झूठी गाथा. राजकमल प्रकाशन, पेपर बैक्स में, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-50
110. सरावगी, अलका. 2018. एक सच्ची-झूठी गाथा. राजकमल प्रकाशन, पेपर बैक्स में, प्रथम संस्करण, पृष्ठ-24

उपसंहार

प्रस्तुत शोध - प्रबंध पाँच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय 'अलका सरावगी : व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व' से संबंधित है। इस अध्याय में अलका सरावगी के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व के बारे में विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया गया है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक की प्रसिद्ध महिला उपन्यासकार श्रीमती अलका सरावगी का जन्म स्वतंत्र भारत के बंगाल प्रान्त के कोलकाता शहर में एक मध्यम वर्गीय मारवाड़ी व्यापारी परिवार में नवम्बर, सन् 1960 को हुआ था। इसमें कोई दो राय नहीं है कि अलका जी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार है। उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास से ही इस बात को प्रमाणित कर दिया था। 'कलि कथा: वाया बाइपास' उपन्यास को साहित्य अकादमी और श्रीकांत वर्मा पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके बाद आए अपने दूसरे उपन्यास 'शेष कादम्बरी' को भी के.के. बिरला फाउन्डेशन के बिहारी पुरस्कार प्राप्त हुआ। सन् 1998 से लेकर आज तक 20 वर्षों में उनके दो कहानी संग्रह, आठ उपन्यास और अन्य कई लेख लिखे हैं। अपनी विशिष्ट लेखन शैली की वजह से अलका जी ने अपनी एक अलग पहचान हिन्दी साहित्य में बना ली है। अलका जी के व्यक्तित्व में गाँधीवादी विचारों का प्रभाव, ईश्वर के प्रति आस्था, प्रकृति प्रेम, नारी मुक्ति की आकांक्षा, सामाजिक दायित्वता आदि और भी गुण मिलते हैं, जिनका परिचय उनकी समग्र रचनाओं में मिलता है। अलका जी में विविध प्रकार के गुण होकर भी वे अपने जीवन को साधारण और सार्वजनिक मानती है।

द्वितीय अध्याय में 'हिन्दी के महिला रचनाकार एवं अलका सरावगी' के बारे में विस्तृत रूप में वर्णित है। महिला उपन्यासकारों की रचनाओं के मूल में वे जीवन मूल्य हैं जो नारी समेत पूरी मानव जाति के हित में है। उनका लेखन एक उदार संवेदनशील और संतुलित बुद्धि से अपने चारों ओर के उस परिवेश का जायजा लेगा जो उसे प्रगति की राह की ओर ले जाता है। महिला उपन्यासकारों ने सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक बिम्ब में चित्रगुण की प्रधानता होने के कारण चित्रात्मकता अनिवार्य होती है। मानस को झकझोर देने वाला बिम्ब विधान महिला उपन्यासकारों ने प्रयुक्त किया है जो महत्त्वपूर्ण उद्देश्य के रूप में रेखांकित योग्य है।

महिला कथाकारों की कहानियाँ स्त्री विमर्श में निहित 'निजानुभव के वैशिष्ट्य' पर जोर देकर तमाम सार्वकालिक विमर्शों को चुनौती देना चाहती हैं। बदलते युग के बदलते संदर्भो की

दृष्टि से आज कथा साहित्य में एक नया कथ्य जुड़ा है। आज कहानी का केन्द्र बिन्दु नारी है। इन कहानियों के सन्दर्भ स्त्री आन्दोलनों से प्रेरित विभिन्न स्तरों पर किये जाने वाले संघर्षों के बीच उठती हुई आज की नारी के इर्द-गिर्द घूमती है। मुक्ति अस्मिता की तलाश के साथ-साथ नारी जीवन की अनेक समस्याओं को विभिन्न कोणों से उठाती है। विद्रोह शब्द को बड़ी बारीकी से समझती है तथा विद्रोह, त्याग, विश्वास, जैसी मान्यताओं को विशिष्टता प्रदान करती हैं।

हिन्दी साहित्य में जब महिला लेखन का प्रचलन हुआ तो लेखन दो खेमों अर्थात महिला और पुरुष में बँट गया। महिलाओं की अनुभूतियाँ भी पुरुषों के समान ही है इसलिए उनके लेखन को भिन्न न मानकर साहित्य में देखा परखा जाना उचित है। आज महिला लेखिकाएँ पुरुषों के घेरे बन्दी को नकार कर साहित्य में अपना स्थान बना चुकी है। आज की कहानी साहित्य में उनका उतना ही योगदान है जितना कि पुरुष लेखकों का है।

शोध के तृतीय अध्याय में 'अलका सरावगी की रचनाएँ - तात्त्विक विवेचन' के बारे में उल्लेख किया गया है। वर्तमान समय में कहानी की बदलती प्रवृति और नयेपन के संदर्भ में बड़ी गंभीरता से विश्लेषण किया जा रहा है। यह नयापन व्यक्ति की बदलती चेतना और परिस्थितियों के दबाव से आया है। परिणामस्वरूप रचनाकार की एक नई जीवन-दृष्टि और विचाराधारा विकसित हुई जो कहानी में कथ्य और शिल्प के विविध स्तर पर दिखाई देती है। युवा पीढ़ी की बहुचर्चित लेखिका अलका सरावगी की कहानियों में बदलाव का यह नयापन स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस उत्तर-आधुनिक समय में बदलते सामाजिक मूल्य व अछूते यथार्थ को उद्‌घाटित करने के लिए वे अपनी रचना-धर्मिता में कथ्य एवं शिल्प के अनके नवीन प्रयोग किए हैं।

अलका सरावगी की कहानियों का कथ्य वैविध्य से भरपूर और व्यापक फलक वाला है, जिसमें उन्होंने वर्तमान समय की नई संवेदना व मानवीय चेतना को अनेक रूपों में रूपायित किया है। अपने कहानी-कथ्य में लेखिका अछूते यथार्थ, नये मानव मूल्य, नये परिवेश तथा नैतिक प्रतिमानों की स्थापना करती हैं।

अलका सरावगी की कहानियों में समकालीन जीवन की विसंगतियों और अछूते सामाजिक यथार्थ का चित्रण सफलता के साथ हुआ है। अपनी कहानियों में लेखिका ने सामाजिक जीवन की स्थूल घटनाओं के साथ वर्तमान समय के अनकहे, अनदेखे क्षणों और पहलुओं को

उजागर किया है। 'बहुत दूर है आसमान', 'टिफिन', 'आक एगारसी', 'आपकी हंसी' और 'एक और नमकहराम' आदि कहानियों में अपने समय का सही तथ्यान्वेषी यथार्थपरक अन्वेषण किया है। इन कहानियों में लेखिका ने जो समस्याएँ उठाई हैं उनका संबंध आज की परिस्थितियों से है।

अलका सरावगी अपनी कहानियों की रचना-प्रक्रिया में प्रतीकों का सफल प्रयोग कर जीवन के आंतरिक सत्यों व अछूते यथार्थ को उजागर करती है। अलका सरावगी ने अपने उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया में पारंपरिक कथा-शिल्प को तोड़ते हुए अनेक प्रकार की नवीन शिल्प प्रविधियों का प्रयोग किया है, जिससे उनके उपन्यासों में शिल्पगत वैशिष्ट्य देखने को मिलता है।

शोध की अगली कड़ी में चतुर्थ अध्याय इस प्रकार हैः 'अलका सरावगी की रचनाओं में चरित्र चित्रण'। अलका सरावगी ने अपनी रचनाओं में पात्रों के चरित्र का चित्रण बखूबी ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अलका सरावगी ने कहानी एवं उपन्यासों में नारी एवं पुरूषों के चरित्र का चित्रण अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। आज औरतों की प्राथमिकताओं में बदलाव आया है। यह बदलाव उनके कार्य क्षेत्र व लेखन में भी देखा जा सकता है। नारी पराधीनता के प्रश्नों को लेकर साहित्यकारों के तेवर बड़े तीखे हैं। समाज को बदलने की प्रक्रिया में वे औरत की भूमिका को सामने रखते हैं। भारतीय समाज की संरचना में मौजूद अर्थ और वर्ण व्यवस्था जैसी तमाम विसंगतियों के चलते पुरुष सत्ता की गुलामी का शिकार स्त्रियों की अंतहीन यातनाएँ जहाँ-तहाँ बिखरी पड़ी हैं। इस समाज में स्त्री का स्थान विशेष तो है लेकिन उसकी सामाजिक हैसियत 'वस्तु' से अधिक कुछ नहीं है इसलिए यह तय करना है कि नारी की आजादी के लिए सामंती सोच को बदलना निहायत जरूरी है।

शोध का पंचम अध्याय 'अलका सरावगी की रचनाओं में नारी चेतना' है, जिसमें नारी चेतना के बारे में विस्तार से विवेचना की गई है। हिंदी साहित्य में नारी चेतना के विकास की यात्रा प्राचीन काल से ही निरंतर चल रही है। प्राचीन काल से ही कवियों ने नारी पर आधारित अनेक रचनाएं की हैं। प्राचीन काल से ही भाट और चारण कवि राजाओं को प्रसन्न करने और उनकी उत्तेजक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए नारी के सौंदर्य पर आधारित काव्यों की रचना करते रहे हैं। प्रारंभिक मध्यकाल में नारी का या तो दैवीय रूप देखने को मिलता है या फिर साधना के

मार्ग में बाधा के रूप में। भक्ति काल के सगुण कवियों ने नारी के दैवी रूप को ही अधिकतर स्वीकार किया है, जबकि निर्गुण कवियों में किसी ने नारी को साधना मार्ग में बाधक तो किसी ने सहायक माना है। रीतिकाल का सम्पूर्ण साहित्य नारी विषयक विलासपूर्ण रचनाओं से भरा पड़ा है। देव, बिहारी आदि कवियों ने नारी को कामुक ढंग से चित्रित करने में अपना सारा कौशल लगा दिया है, जबकि रीति मुक्त कवियों द्वारा अपने प्रियतम से वियोग का वर्णन प्रमुख है। किन्तु इनमें से किसी भी नायिका का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखाई देता। नारी चेतना की दृष्टि से सबसे समृद्ध काल आधुनिक काल रहा है। इसमें कवियों द्वारा नारी का कामुक ढंग से किया गया चित्रण कतई अश्लील नहीं था। अधिकांश छायावादी कवियों द्वारा नारी का प्रकृति के रूप में किया गया चित्रण प्रमुख रहा है। इस काल की लेखिकाओं ने नारी चेतना से संबंधित रचनाएँ लिखीं और स्वयं महिला कवियों ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करना शुरू किया, जिससे नारी चेतना का प्रारंभ हुआ।

आधुनिक काल नारी चेतना की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण काल है। इस काल में न केवल पुरुष लेखकों ने नारी चेतना पर अनेक रचनाएँ लिखीं, बल्कि इस काल में स्वयं महिला लेखिकाएँ भी आगे आईं। आधुनिक काल में साहित्य की सभी विधाओं में नारियाँ आगे आती देखी गई हैं तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि पुरुष लेखकों ने भी नारी की स्थिति पर लिखा है, लेकिन नारियों के आगे आने से उनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारियों के साथ हो रहे भेदभाव, अत्याचार आदि को सबके सामने लाने का उनका उद्देश्य पूरा हो रहा है।

हिंदी साहित्य की गद्य लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं में नारी मन की परतों को खोलने का प्रयास किया है। नारियों ने अब अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने अपने साथ हो रहे शोषण और अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाई है। नारियों की भावनाओं को अभिव्यक्ति अब तक पुरुषों ने ही दी है, लेकिन नारियों की भावनाओं को सटीक अभिव्यक्ति स्वयं नारियाँ ही दे सकती हैं।

अलका सरावगी ने अपनी रचनाओं में नारी चेतना को स्पष्ट तौर पर व्याख्या करने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि पहले के समय में तो स्त्रियों को और भी कई तरह की

समस्याएँ झेलनी पड़ती थी। अपना सब कुछ बचाए रखने की उसकी सबसे बड़ी चिन्ता जिसके लिए वह दिन-रात प्रयासरत रहती है और डरती रहती है कि उसके हाथों से कुछ छूट न जाए। संयुक्त परिवार में सबको लेकर चलते हुए उसे परम्परागत रूढ़ियों का पालन करना पड़ता है। पहले तो लड़कियों को शिक्षित होने से रोका जाता है, यदि किसी तरह वे शिक्षित हों भी जाए तो विवाहोपरान्त जिम्मेदारियों के नाम पर फिर उसका मानसिक शोषण किया जाता है। कभी वह हिंसा का शिकार होती है तो कभी उसके प्रति समाज द्वारा क्रूरता का व्यवहार किया जाता है। हमारा पुरुष समाज स्वयं एक अलग ही सिद्धांत पर जीता है और स्त्री के लिए कोई दूसरा ही सिद्धांत निर्धारित करता है जैसे यह अधिकार वह जन्म से ही लेकर आया है। एक ओर पुरुषवादी मानसिकता स्त्रियों को सदैव कमतर समझता है, वह स्वयं को श्रेष्ठ और स्त्री को बुद्धिहीन मानता है। प्रायः घरेलू औरतें पुरुषों की इस मानसिकता का शिकार होती है। घर में उन्हें सदैव चुप कराया जाता है, उन्हें विरोध करने की छूट नहीं होती है। उसका त्याग व बलिदान किसी को दिखलाई नहीं देता न ही कोई मूल्य देता है। जबकि उसकी सहनशीलता और अपने स्व को ताक पर रखकर स्वयं को रिश्तों में झोंक देने की तीव्र चेष्टाएँ ही परिवार को बनाए रखने में अहम भूमिका निभाती है जिससे गृहस्थी चल पाए।

परिशिष्ट

साक्षात्कार

प्रश्न : आपका बचपन कैसा रहा और लिखने से पहले तलक आपकी जिंदगी कैसी रही? इसके बारे में थोड़ा बताइए।

उत्तरः- मुझे लगता है कि हमारा बचपन एक तरह का बंध जीवन था । यानी जो परिवार के और रिश्तेदार थे उनसे ही मिलना जुलना था। घर में मदद के लिए आनेवाले भी सब हमारे जैसे ही लोग थे। मुझे लगता है कि बांग्ला समाज से, बंगाल में रहते हुए भी उनसे संपर्क बहुत कम था। एक कारण यह था स्कूल में भी प्राय मारवाड़ी लड़कियां थी। उनसे भी बहुत अधिक संपर्क नहीं था और एक जो मध्यवर्गीय समाज की आदत होती है क्योंकि हम कई बहनें थी तो वह समाज हमेशा सतर्क रहता है कि उनको एक तरह के कानून में रखा जाए। बाहर की हवा ज्यादा ना लगे या इस तरह की कोई वारदात ना हो जाए तो मुझे लगता है कि एक वह आंख जो समाज की तैयार रहती है जो हमेशा आपको देखती रहती है तो उस तरह का एक बंध जीवन जरूर था लेकिन साथ यह था कि पिताजी को शायरी का, गजलों का, हिंदी कविताओं का बहुत शौक था। मधुशाला कविता उनकी प्रिय थी। तो कभी-कभी कह देते थे कि उन पर फर्ज अदाई कर देती है मधुशाला। हमारी एक ताई थी, मैथिलीशरण गुप्त की साकेत हमेशा उनके पास में रहती थी और उनका साहित्य से लगाव था और मुझे लगता है कुछ शुरुआती दौर की चीज मैंने वहां पढ़ी। हमारे समय के गुलशन नंदा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री और शिवानी के सारे उपन्यास पढ़ती थी। मेरा लिखे हुए शब्दों से एक ऐसा संबंध था कि कुछ भी लिखा हुआ रहता तो मैं वह पढ़ लेती हूं। साथ साथ उस समय मेरा पढ़ाई भी चलती रहती थी और मुझे लगता है कि इस तरह से मां के संपर्क कुछ बंगाली महिलाएं थी स्कूल में कुछ लड़कियां थीं और घर में काम करने वाले जो ताई रहती है वह बंगाली थी। बाकी मुझे लगता है कि बहुत अधिक संपर्क दूसरी तरह की दुनिया से नहीं था।

प्रश्न : आपकी लेखन के प्रति रुचि कब जगी?

उत्तरः- मुझे पढ़ने का बेहद शौक था। इतना शौक की कुछ भी लिखित अक्षर मिल जाए तो मैं उसे पढ़ डालती थी। इस चक्कर में मैंने पिता की जमा की हुई शायरी, गजल, मेरी ताई के साकेत,

यशोधरा आदि किताबें, मां की रानू, गुलशन नंदा, शिवानी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री की किताबें और फिर उसके बाद थोड़े बड़े होते होते घर में तमाम किस्म की अंग्रेजी की किताबें थी जो हर तरह की थी यानी की एडल्ट लिटरेचर भी था तो वो भी मुझे मिलने पर पढ़ डालती थी। स्कूल में पढ़ने में अच्छी थी तो इसलिए सभी शिक्षिकाओं की बहुत प्रिय थी और स्कूल की पढ़ाई में अच्छी होने में लाभ यह होता है कि लाइब्रेरियन पसंद करती है और आपको एक गंभीर विद्यार्थी समझती है। कक्षा आठवीं में आते-आते मैं प्रेमचंद की मानसरोवर पढ़ डाली, जो लेखक हमारे सिलेबस में होते थे अगर लाइब्रेरी में उनकी किताबें मिल जाती तो मैं उनको पढ़ने लग जाती। शब्द से जो लगाव था वह बहुत गहरा था और वह सबको मालूम था। तब से मैंने लेखन कला के ऊपर गंभीरता से अपना काम किया है।

प्रश्न : आपके लगभग सभी उपन्यासों में हम पाते हैं कि इतिहास, स्मृति और वर्तमान का अनूठा मिश्रण है। क्या यह सायास था? क्या इसके लिए आपने सजग प्रयास किया?

उत्तर:- कलि-कथा: वाया बाईपास लिखते हुए अनायास ही ऐसा हुआ कि मेरी कहानी इतिहास के मुकाम पर खड़ी थी जहां पीछे देखे बिना वर्तमान को समझाना मुश्किल था। उसके बाद मुझे लगता है कि आगे की उपन्यासों में भी जहां कोई भी पात्र का एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य होता है तो वही कहानी मेरे जेहन में आने लगते हैं। इस तरह मुझे भी इतिहास को देखने का आनंद, उसे गहराई में जानने का आनंद मिलता था।

प्रश्न : यह स्वाभाविक है कि आपके अधिकांश उपन्यासों में कलकत्ता शहर का जिक्र आता है। अगर आगे कभी आपको लिखना हुआ तो वह कौन सा शहर होगा जिस पर आप लिखना चाहेंगी?

उत्तर:- कथा का जो भूगोल होता है वह बहुत महत्वपूर्ण होता है। खासकर लेखक यदि उस भूगोल से बहुत गहराई से परिचित है तो कथा का एक जो रूप बनता है उसमें उन पात्रों का जीवन, उनका इतिहास, उनका वर्तमान, उनके संघर्ष, सब कुछ उस शहर में गूँथे होते हैं। मुझे लगता है आगे भी मैं अगर लिखूं तो कोलकाता ही होगा।

प्रश्न : हम इक्कीसवीं सदी की बात करते हैं कि इक्कीसवीं सदी में स्त्री बदली है। लेकिन पुरुष में कितना बदलाव आया है?

उत्तर:- जब तक स्त्री और पुरुष एक साथ नहीं बदलते तब तक किसी भी तरह की आजादी का कोई अर्थ नहीं होता इसीलिए ऐसा नहीं है कि पुरुष की संवेदना में बदलाव नहीं आया है। लेकिन जहां एक पितृ सत्तात्मक समाज है उसमें स्त्री को आजाद स्त्री के रूप में देख सके, इज्जत कर सके, पुरुष को उदारता से महसूस करने में मेरे ख्याल से जो कुछ और पीढ़ी का समय लगेगा।

प्रश्न : आपने अपने उपन्यास 'एक सच्ची झूठी गाथा' में एक पंक्ति लिखा है- 'लेखक भी एक तरह का तानाशाह होता है।' आपको क्यों लगता है कि लेखक तानाशाह होता है?

उत्तर:- इसके पीछे यह भावना है कि लेखक अपने सच को पूरा सच मानकर उसे एक किताब में लिखकर दुनिया के ऊपर थोपना चाहता है और पाठक जो जीवन से जुड़ा हुआ संघर्षशील प्राणी है उसको लगता है कि लेखक के विचार जो है वह इस तरह थोपे नहीं जाने चाहिए।

प्रश्न : आपका लेखन किन से प्रभावित रहा है? क्या यह प्रभाव मौलिकता पर असर डालता है?

उत्तर:- हमने जिस स्कूल में पढ़ाई की वह हिंदी भाषा का स्कूल था। वह एक तरह का सेतु होता है जहां आप अपने ही जैसा लोगों से मिलते हैं और उसके बाहर की जो संस्कृति है जिसमें आप हिस्सा बनकर रह रहे हैं। उस रविंद्र संगीत के माध्यम से कुछ फेस्टिवल मनाए जाते हैं। स्कूल में बांग्ला टीचर होते हैं और बंगाल में रहने का जो एहसास है वह उतना भर होता है। लिखना भी एक ऐसा संयोग था कि मैंने बच्चों के कोर्स में काम करना शुरू किया वहां मुझे अशोक जी मिले जो एक पत्रकार और कहानीकार रह चुके थे । अशोक जी में एक ऐसा आवेग था कि वह सब को एक लेखक बनाने की तीव्र इच्छा रखते थे। जो भी उनके पास आता था वह उनसे कोई भी बात कर पता था। मैं कभी उन्हें ऐसी ही बता देती थी कॉलेज की बातें, घर परिवार की बातें, वह कहते थे कि उसे लिख दीजिए। तो मुझे लगा कि इसमें लिखने की बात क्या है। इसी तरह करते-करते मैंने कई एकाध फिचर्स लिखे, डॉक्टर पर आर्टिकल्स लिखे, उनके चिकित्सा प्रणाली पर लिखा। यह करते-करते एक कहानी मैंने लिख डाली। मैंने अपने को एक पत्रकार के रूप में देख लिया और मैं पत्रकार का एक डिप्लोमा कोर्स भी कर डाला। मुझे ऐसा लग रहा था कि जो

भी हम दुनिया में आसपास में देख रहे हैं उसको एक पत्रकारिता के जरिए बातों को देखा जा सकता है, सुलझाया जा सकता है। यह करते-करते मैं एक कहानी लिख डाली। यह भी एक कारण है कि हम जिस दुनिया में पले-बढ़े वह अर्थ प्रधान दुनिया तो नहीं होगी लेकिन वह मध्यवर्गीय दुनिया थी। तब मुझे जो सेंसटिविटी तैयार हुई और कहीं ना कहीं अशोक जी से मिलने के बाद भी मुझे ऐसा लगा जैसे कौआ के बीच हंस रहा। अशोक जी भी बिल्कुल फकीराना अंदाज में रहते थे और दरी-बड़ी बड़ी बड़ी होती थी। जो पहले कहानी मैंने लिखी तो वह भी इसी सेंसिटिविटी की कहानी है कि एक धनी परिवार में हम जाते हैं और वहाँ देखते है कि एक आदमी है जो मालिक का एक रिश्तेदार ही था लेकिन काम सारे नौकर का करता है। हमारे जो समाज होते हैं और जिसमें सब लोगों की जगह तय होती है लेकिन उस आदमी के लिए कोई जगह तय नहीं है। ना वह नौकर होता है ना मालिक। कहीं ना कहीं वह जो हाशिए पर बैठा हुआ आदमी है वह मेरे दिल में, दिमाग में, कब्जा किए रहा और समाज को भी एक अलग निगाह से देखने की दृष्टि मेरी वहीं से विकसित हुई।

प्रश्न : आपने अपने लेखन में किसी भी विषय को दोहराया नहीं है। आपने स्त्री-लेखन के सीमित दायरे को तोड़ा है। आपने नए-नए विषयों को खोजा है। क्या कोई व्यापक दृष्टि (vision) था जिसकी वजह से ऐसा हुआ या कोई और कारण है?

उत्तरः- जी मुझे ऐसा सब जगह सुनने को मिला। सबसे पहले तो राजेंद्र यादव की बात करिए तो उन्होंने कहा यह तो थे फेमिनिज्म का उदाहरण है, माना ये औरत जो है अपने फेमिनिटी को दबाकर के एक पुरुष पात्र लेकर उस पुरुष के बारे में लिख दिया। इसमें अलका सरावगी कहां है ? तो मेरे लिए यह बहुत ही अचम्भे में डालने वाली बात थी। मैंने कभी इस तरफ लिखते समय सोचा ही नहीं था क्योंकि देखिए जब आप बहुत सारी बातों को लेकर लिखते हैं तो अगर आप ऐसा लिखते हैं तो उसमें आपका अगर स्त्री पात्र लिखेंगे तो हिस्ट्री अपनी ही बात कहेगी। मुझे लगा कि इस तरह का गेटवे स्टेशन तो नहीं है कि स्त्रियों को कहा जा रहा है तुम अपने अनुभव लिखो,अपनी तरह से लिखो। तो मैं वी. एस. नायपॉल की तरह क्यों नहीं लिख सकती हो। क्योंकि मैं एक स्त्री हूं। वह जो स्त्री के एक स्थिति को देख रहे हैं कलिकथा में वह तो एक रियलिटी है। अगर आप उसको फेमिनिज्म का झंडा हाथ में देकर फहराने को बोले तो वह एक तरह का

बिना मतलब के शोर कर रहे हैं। आप उस तरह की यथार्थ को मॉडिफाई करके क्यों एक नकली यथार्थ पैदा करना चाहते हैं।

प्रश्न : बेशक कोई भी रचना किसी पुरस्कार के लिए नहीं लिखी जाती है। लेकिन जब पहली ही कृति के लिए साहित्य अकादमी जैसा पुरस्कार मिलता है तो जाहिर सी बात है कि लेखक पर अतिरिक्त जिम्मेदारी का बोझ बढ़ जाता है या पाठक के प्रति उसकी अतिरिक्त जवाबदेही बढ़ जाती है। क्या आपने भी ऐसा महसूस किया?

उत्तर:- जब साहित्य अकादमी मिला तब मेरे पति ने कहा कि एक लेखक का कत्ल करना है। आपका लिखना बंद हो जाएगा। अब लिख नहीं सकेंगे। पहले कृति पर कोई इतना बड़ा पुरस्कार देता है क्या? मैं सुनती रही मुझे बहुत खींच भी हुई कि यह फिर चालू हो गए। अब मिल गया पुरस्कार तो और लोग है। योगिन दा है उसने कहा कि यह पुरस्कार की संस्कृति बहुत खराब है। अब मना कर दीजिए। तो मुझे लगा कि अगर पुरस्कार नहीं लूंगी तब आगे लिखना और भी कठिन हो जाएगा। कम से कम दुनिया को तो लगे यह जो कर रहा है इसमें कुछ मिलता भी है। फिर मैं लिखती रही और अशोक जी को भी लगा कि एक पुरस्कार ने मुझे नष्ट नहीं किया। तो यह इस तरह चलती रही यात्रा लेखन की।

प्रश्न : आपके लिए लिखने के मायने क्या है?

उत्तर:- लिखना जीवन को अर्थ देता है और आत्म संतुष्टि भी क्योंकि जो आसपास का जीवन है उसमें कोई बहुत प्रेरणादायक या कुछ जीने के लिए संभाल मिले ऐसा कुछ सच नहीं होता और लिखना उन कहानियों में उतरना अपने पत्रों के जीवन में उतरना एक समय को समझना पुराने बीते हुए समय को फिर से जागृत करना तो यह सब कुछ इतना आनंद दायक है कि मुझे लगता है अब मिलने का मैने जीना ही हो गया है।

प्रश्न : 'विस्थापन' भी आपके उपन्यासों में केंद्रीय कथ्य के रूप में उभर कर आता है। इसके बारे में आपकी क्या राय है?

उत्तर:- देखिए सबसे पहले में आपको जानकीदास तेजपाल की बात बताऊंगी। कोलकाता में 1970 के दशक में जब मेट्रो रेल की खुदाई हुई तो कोलकाता का जो सेंट्रल रिवेन्यू था उस पर

आमने सामने के सारे मकान सड़क की तरफ झुक गए। अभी भी बहु बाजार के इलाके में खुदाई हो रही है। तो यह जो चरित्र है जानकीदास तेजपाल का, मुख्य पात्र का नाम जयदीप है। तो वह अमेरिका से कंप्यूटर इंजीनियरिंग पढ़कर आता है और वह उसकी जीत है कि मैं इसी मकान में रहूंगा वह नहीं चाहता है कि वह मकान टूटे। यह जो जीत है वह कोई नहीं समझ पाएगा। तो आप यह देखिए कि मनुष्य की जो अपनी पहचान होती है, उस पर जो जीत होती है वह कहीं ना कहीं उसकी उस पहचान को, स्मृतियों को बचाए रखने की उसकी जो इच्छा है, जो संघर्ष है। हम जो रोज विस्थापन देख रहे हैं इंसान से ज्यादा यह मकान का विस्थापन है। एक शहर का विस्थापन किस तरह से हो रहा है आप अपने इतिहास को तोड़ने को समृद्धि मानेंगे या बचाने को समृद्धि मानेंगे। आपका यह मन है कि आपका घर टूट जाए और उसकी जगह एक नया घर बन जाए या आपको लगे कि यह मेरा स्मृतियों का घर है यह बस रहे यह बाजार ने सिखाया है। मेरी रचना में दो तरह का विस्थापन है जो कलि कथा में है वह विस्थापन पूंजी का किया हुआ विस्थापन है, लेकिन कुलभूषण का विस्थापन वह एक मजबूरी है।

प्रश्न : क्या आप इस बात को मानती हैं कि आपकी कृतियों को विश्व स्तर तक पहुंचाने का श्रेय अनुवादकों को दिया जाना चाहिए? हिंदी की और भी बेहतरीन कृतियां इस वजह से बड़े स्तर पर अलक्षित रह गईं कि उनके हिस्से में कोई बेहतरीन अनुवादक नहीं आ पाया?

उत्तर:- जैसे कलिकथा का फ्रेंच में अनुवाद हुआ या इटालियन में अनुवाद हुआ तो अनुवादक का इतना महत्व है कि लेखक से ज्यादा इंपॉर्टेंस दी जाती है। भारत में इस तरह से हमको जिन चीजों को जैसा महत्व देना चाहिए जो लोगों को इस पर ध्यान देना चाहिए उन्होंने दिया नहीं है। वहां पर एक दूसरी तरह की ईमानदारी भी बहुत काम करती है। लेखक जब किसी चीज का अनुवाद करता है तो एक तरह से वह वापस अपने अंदर में उसे उतार कर उसको वापस लिखता है। इसीलिए उसका महत्व तो बहुत ज्यादा है बिना अनुवाद के आप सोचिए आज रशियन लिटरेचर जो हमने पढ़ा वह बिना अनुवाद से कहां से पढ़े। मेरे साथ तो यह हुआ कि मैंने अनुवाद सिर्फ लॉकडाउन में किया क्योंकि उसका कारण यह था कि मैं हमेशा आगे लिखती रहती हूं। मेरे पास बहुत कम समय होता है किसी काम के लिए। लॉकडाउन में अजीब समय था सारी

दुनिया बैठी थी और किसी ने कहा कि यह कर तो मुझे लगा कि चलो कुछ कर लेते हैं। तो उसे समय मैं बांग्ला किताबें भी बहुत पढ़ रही थी। अनुवाद हमको बहुत कुछ सीखाता है।

प्रश्न : अगर किसी रचनाकार से यह कहा जाए कि वह अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति का चयन करे तो आप अपनी किस रचना को चुनेंगी?

उत्तर:- मैं कलि-कथा: वाया बाइपास का ही नाम लूंगी क्योंकि बाकी लोगों की यही सहमति है और इससे मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

प्रश्न : वर्तमान परिवेश में अनेक महिला कथा साहित्यकार उभर कर आई हैं। आपके लेखन और उनके लेखन में एक फांक नजर आती है। क्या आप भी ऐसा ही महसूस करती हैं?

उत्तर:-अन्य स्त्री लेखिकाओं से मेरे लेखन में यदि कोई अंतर नजर आता है तो वह इसीलिए है कि मैं सिर्फ एक स्त्री के अनुभव नहीं देखना चाहती हू बल्कि मेरा कैनवस बड़ा व्यापक स्तर का होता है जिसमें बहुत सारी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तमाम प्रश्नों के साथ स्त्री की स्थिति भी आती है लेकिन फोकस उस पर नहीं होता।

प्रश्न : आप लगातार लिख रही हैं। यह अपने आप में आने वाली पीढ़ियों लिए प्रेरणा का स्रोत है। फिलहाल क्या आप कुछ लिख रही हैं? क्या आप इसके बारे में कुछ साझा करना चाहेंगी?

उत्तर:- अभी मैं वैसे भी खाली हूं। लेकिन उसका कारण यह नहीं है कि कहानियों का अनुवाद भी इतना मुश्किल काम नहीं होता है। लेकिन उसके बाद मैंने गांधी पर एक उपन्यास लिखा है। जो कि मैने अभी-अभी पूरा किया है।तो अभी मैं उस किताब को रख के, बंद करके और खाली रहना चाहती हूँ। जब वापस उस पर लौटूँ तब उसको देख सकूं कि मैं क्या लिख पाई।

प्रश्न : वर्तमान भारतीय समाज को आप किस तरह से देखती हैं और युवा पीढ़ी को लेकर आपकी क्या राय है?

उत्तर:- वर्तमान भारतीय समाज बहुत सारे संघर्षों में लगा हुआ है और उसमें कई में लगातार पिछड़ता हुआ भी दिखाई देता है। यानी प्रजातंत्र का प्रश्न लेकर, स्त्री मुक्ति के प्रश्नों को लेकर यह तमाम बातें जो   समय के साथ टेक्नोलॉजी और इंटरनेट इतना सब कुछ बदला है, उसके साथ

मनुष्य की सोच भी इतना उन्नत हो गया हो ऐसा नहीं है। युवा पीढ़ी के बारे में मेरी सोच है कि युवा पीढ़ी अपने तरीके से चीजों को देखती हैं लेकिन इंटरनेट उस पर भी बहुत हावी है। जो वर्चुअल रियलिटी है उसमें से निकालकर समाज के जो असली संघर्ष है, उनके साथ युवा पीढ़ी को जोड़ना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ सूची

कहानी संग्रह

सरावगी, अलका . 2003 . दूसरी कहानी . राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली . द्वितीय संस्करण

सरावगी, अलका . 2005 . कहानी की तलाश में . राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली . पहली आवृति

उपन्यास

सरावगी, अलका . 2015 . कलि-कथाः वाया बाइपास . आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा) . छठा संस्करण

सरावगी, अलका . 2016 . शेष कादम्बरी . राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . दूसरा संस्करण

सरावगी, अलका . 2015 . कोई बात नहीं . राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . पहला संस्करण

सरावगी, अलका . 2010 . एक ब्रेक के बाद . राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . पहला संस्करण

सरावगी, अलका . 2015 . जानकीदास तेजपाल मैनशन . राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . दूसरा संस्करण

सरावगी, अलका . 2018 . एक सच्ची-झूठी गाथा . राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . दूसरा संस्करण

सहायक ग्रन्थ

अग्रवाल, पुरुषोत्तम . 2000 . विचार का अनंत . राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

पाण्डेय, मेनेजर . 2008 . आलोचना की सामाजिकता . वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . द्वितीय संस्करण

कृष्ण कान्त, सुमन . 2001 . इक्कीसवीं सदी का ओर . राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

यादव, राजेन्द्र . 2007 . आदमी की निगाह में औरत . राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली . दूसरा परिवर्द्धित संस्करण

जोशी, राजेश . 2004 . एक कवि की नोट बुक . राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

पाण्डेय, मृणाल . 2008 . स्त्रीः देह की राजनीति से देश की राजनीति तक . राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली . पहली आवृति

कस्तवार, रेखा . 2006 . स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ . राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली . प्रथम संस्करण

पाण्डेय, मृणाल . 2004 . बन्द गलियों के विरूद्ध . राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पटना . पहली आवृत्ति

खेतान, प्रभा . 2004 . उपनिवेश में स्त्रीः मुक्ति-कामना की दस वार्ताएँ . राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली . प्रथम आवृत्ति

श्रीवास्तव, किरण . 2009 . सामाजिक संदर्भों के नये प्रतिमान . अयन प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

शर्मा, नासिरा . 1994 . शाल्मली . किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

शर्मा, नासिरा . 2003 . औरत के लिए औरत . सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

नवीन, देवी शंकर . उत्तर आधुनिकता कुछ विचार . वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

शर्मा, क्षमा . 2008 . स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य . राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली . पहली आवृति

कुमार, राधा . 2005 . स्त्री संघर्ष का इतिहास (1800-1990) . वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . द्वितीय संस्करण

राजकिशोर . 2000 . स्त्री के लिए जगह . वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . द्वितीय संस्करण

महेश्वरी, सरला . 2007 . नारी प्रश्न . राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली . पहली आवृति

सिंधवी, कमला . नारी भीतर और बाहर . नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली . द्वितीय संस्करण

मुद्गल, चित्रा . 2008 . आवां . सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली . द्वितीय संस्करण

जलील, वी. के. अब्दुल . 2006 . समकालीन हिन्दी उपन्यास समय और संवेदना . वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली . प्रथम संस्करण

यादव, राजेन्द्र . 2003 . पितृसत्ता के नए रुप . राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली . प्रथम संस्करण

ग्रीयर, जर्मेन . 2005 . बधिया स्त्री . राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

वोउवार, सीमोन द (अनुवाद-प्रभा खेतान) . 1989 . स्त्री उपेक्षिता . हिन्द पाकेट बुक . प्रथम संस्करण

प्रसाद, दुर्गेश, नंदिनी . स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासो में पुरूष पात्र . गीता प्रकाशन (हिन्द बुक सेंटर) हैदराबाद . प्रथम संस्करण

प्रसाद, शंकर . 1978 . सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान . अनुपम प्रकाशन, पटना . प्रथम संस्करण

रावत, ज्ञानेंद्र . 2007 . कंस समाज में औरत . कान्ती बुक सेन्टर, दिल्ली . प्रथम संस्करण

रामदोनी, रेशमी . 2001 . समकालीन हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों में अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह स्वराज प्रकाशन, दिल्ली . प्रथम संस्करण

कृष्ण, कुमार . 2005 . कहानी के नये प्रतिमान . वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

यादव, राजेन्द्र . कहानीः अनुभव और अभिव्यक्ति . वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . द्वितीय संस्करण

गर्ग, भैरूलाल . 1983 . आज की हिन्दी कहानी . चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद . प्रथम संस्करण

वोहरा, आशारानी . 2006 . औरत कल, आज और कल . कल्याणी शिक्षा परिषद, जखाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

कालेलकर, काका साहब . साहित्यः एक समग्र जीवन दर्शन . प्रथम संस्करण

वात्स्यायन, सच्चिदानन्द . 1986 . सामाजिक यथार्थ और कथा भाषा . नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

चौहान, विजेंद्र सिंह . 2005 . मीडिया व स्त्री एक उत्तर विमर्श . साहित्य भारतीय प्रकाशन, कृष्ण नगर, दिल्ली . प्रथम संस्करण

झुनझुनवाला, मधु भरत . 1999 . महिला आरक्षण . जनवाणी प्रकाशन, विश्वासनगर, दिल्ली . प्रथम

संस्करण

आर्य, साधना . 2001 . नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे . हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय . प्रथम संस्करण

मिल, जॉन स्टुअर्ट . 2003 . स्त्रियों की पराधीनता . राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली . द्वितीय आवृति

जोशी, गोपा . 2006 . भारत में स्त्री असमानता एक विमर्श . हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली

विश्वविद्यालय . प्रथम संस्करण

शुक्ल, शिव प्रसाद . 2010 . वैश्वीकरण और हिन्दी गद्य साहित्य . अभय प्रकाशन, हंसपुरम, कानपुर . प्रथम संस्करण

धर्मवीर . 2007 . मातृसत्ता, पितृसत्ता और जारसत्ता (खण्ड दो) तीन द्विज हिन्दू स्त्रीलिंगो का चिंतन . वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

मेघवाल, कुसुम . 1991 . हिन्दी उपन्यास और दलित नारी . संघी प्रकाशन, महावीर मार्ग, मालवीय नगर, जयपुर . प्रथम संस्करण

जमाली, सतीश . 1988 . समकालीन साहित्यः नया परिदृश्य . नई कहानी प्रकाशन, अलोपीबाग, इलाहाबाद . प्रथम संस्करण

सिन्हा, मृदुल . 2009 . बिटिया है विशेष . सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली . प्रथम संस्करण

पत्र-पत्रिकाएँ

आजकल	मार्च, 2007
तद्भव	अप्रैल, 2003
तद्भव	अगस्त, 2004
वसुधा	जनवरी-मार्च, 2006
कथादेश	अगस्त, 2008
वागर्थ	फरवरी, 2008
वसुधा	अप्रैल-जून, 2007
बया	जून, 2007
पहल	अकुटुबर-नवम्बर-दिसम्बर, 2005
हंस	अगस्त, 2002

आलोचना	जुलाई-सितम्बर, 2003
प्रेरणा	जुलाई-दिसम्बर, 2010
समय के साखी	अगस्त, 2010
बहुवचन	अप्रैल-जून, 2010
हंस	नवम्बर-दिसम्बर, 1994
हंस	सितम्बर,1996
उदभावना, जन भावनाओं का साझा मंच	सितम्बर, 2 010
आलोचना	अक्टूबर-दिसम्बर, 2004, जनवरी-मार्च, 2005

समाचार पत्र

दैनिक जागरण	लखनऊ,11 मार्च, 2007
हिन्दुस्तान	21 सितम्बर, 2008
वीर बैसवारा, हिन्दी साप्ताहिक	11 दिसम्बर, 2010
वीर बैसवारा, हिन्दी साप्ताहिक	1 जनवरी, 2011
वीर बैसवारा, हिन्दी साप्ताहिक	15 जनवरी, 2011
राष्ट्रीय सहारा	21 सितम्बर, 2003

इंटरनेट सामग्री/बेव/ओपेक

https://www.facebook.com/share/C9nWWYkASfQh6grd/?
https://www.facebook.com/share/am1okZFt6ERD43ND/
https://www.facebook.com/share/cx9dSpwH6KxoJACh/
https://www.facebook.com/share/MaSXAniCSFfD6P9C/
https://www.facebook.com/share/BNYoSjEhoveZsgGJ/
https://www.facebook.com/share/AuUWPJGdZRfzcoy2/
https://www.facebook.com/share/AuUWPJGdZRfzcoy2/
https://youtu.be/Dse80qY5_ng?si=7gRVZIx1bP5NIDqd